प्रकाशक—
नागरीप्रचारिणी सभा,
काशी।

मुद्रक—
श्रीरामेश्वर पाठ
तारा यंत्रालय,
काशी।

मनोरंजन पुस्तकमाला—१२

संपादक

श्यामसुंदरदास, बी० ए०

प्रकाशक

[काशी-नागरीप्रचारिणी सभा]

विषय-सूची

द्वितीय खंड—शब्दावली

मुखबंध

परिचय

कबीर साहब एक पंथ के प्रवर्त्तक थे। उनकी बहुत सी साखियाँ और भजन इस प्रांत के लोगों को स्मरण हैं। साखियाँ प्रायः कहावतों का काम देती हैं; भजन मंदिरों, समाजों और सत्संगों के अवसरों पर गाए जाकर लोगों को परमार्थ का पाठ पढ़ाते हैं; इसलिये उनसे कौन परिचित नहीं है? सभी उनको जानते हैं। किंतु जानना भी कई प्रकार का होता है। वे संत थे, उन्होंने अच्छे अच्छे भजन कहे, कबीर पंथ को चलाया, एक जानना यह है; और एक जानना यह है कि उनकी विचार-परंपरा क्या थी, वह कैसे उत्पन्न हुई, किन सांसारिक घटनाओं और कार्य्य-कलापों में पड़कर वह पल्लवित हुई, किन संसर्गों और महान् वचनों के प्रभावों से विकसित बनी। इन बातों का ज्ञान जितना हृदयग्राही और मनोरम होगा, उतना ही वह अनेक कुसंस्कारों और निर्मूल विचारों के निराकरण का हेतु भी होगा। अतएव पहली अभिज्ञता से इस दूसरी अभिज्ञता का महत्त्व कितना अधिक होगा, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। इस ग्रंथ में संगृहीत पदों और साखियों में आप जिन विचारों को पढ़ेंगे, जिन सिद्धांतों का निरूपण देखेंगे, उनके तत्त्वों को उस समय और भी उत्तमता से समझ सकेंगे, जब आप यह जानते होंगे कि उनका रचयिता कैसा हृदय रखता था, और किन सामयिक घटनाओं के घात-प्रतिघात में पड़कर उसका जीवनस्रोत

प्रवाहित हुआ था। कविता या रचना कवि-हृदय का प्रतिबिंब मात्र है। उसमें वह अपने मुख्य रूप में प्रतिबिंबित रहता है; इसलिये कविता का यथातथ्य मर्म्म समझने के लिये रचयिता के हृदय-संगठन का इतिहास-पाठ बहुत उपयोगी होता है। हृदय-संगठन का इतिहास जीवन-घटना से संबद्ध है अतएव यह बहुत उपयुक्त होगा, यदि मैं इन समस्त बातों का निरूपण इस ग्रंथ के आदि में किसी प्रबंध द्वारा करूँ। निदान अब मैं इसी कार्य्य में प्रवृत्त होता हूँ।

जन्म और बाल्य-काल

रेवरंड जी. एच. वेसूकट, एम. ए., वर्तमान प्रिंसिपल कानपुर क्रिश्चियन कालेज ने "कबीर ऐंड दी कबीरपंथ" नाम की एक पुस्तक अँगरेजी भाषा में लिखी है। यह पुस्तक बड़ी योग्यता से लिखी गई है और अभिज्ञताओं एवं विवेचनाओं का आगार है। उक्त सज्जन इस ग्रंथ के पृष्ठ ३ में लिखते हैं—"यदि हम केवल उन्हीं कहानियों पर ध्यान देते हैं, जिनमें ऐतिहासिक सचाई है, तो हमपर ये सब बातें स्पष्टतया प्रकट नहीं होतीं कि कबीर का जन्मस्थान कहाँ है, वे किस समय उत्पन्न हुए, उनका नाम क्या था, बचपन में वे कौन धर्मावलंबी थे, किस दशा में थे, उनका विवाह हुआ था या वे अविवाहित थे और कितने समय तक कहाँ कहाँ रहे। यह सत्य है कि उनके नाम पर बहुत सी कथा-वार्त्ताएँ कही जाती हैं। परंतु चाहे वे कितनी ही मन बहलानेवाली क्यों न हों, उन लोगों की आवश्यकताओं को कदापि पूरा नहीं कर सकतीं, जो वास्तविक समाचार जानने के इच्छुक हैं।"

श्रीयुत बाबू मन्मथनाथ दत्त, एम. ए. कलकत्ता-निवासी

ने अँगरेजी में "प्राफेट्स आफ इंडिया" नाम का एक सुंदर ग्रंथ लिखा है। उसका उर्दू अनुवाद बाबू नारायणप्रसाद वर्मा ने "रहनुमायाने हिंद" के नाम से किया है। ग्रंथ के पृष्ठ २२३ के निम्नलिखित वाक्य में भी हम ऊपर के अवतरण की ही प्रतिध्वनि सुनते हैं—"उनकी सवानेह उमरी एक मुखफी इसरार है। हम उनके दौराने जिंदगी के हालात से बिल्कुल वाकिफ नहीं हैं।"

परंतु मेरी इन सज्जनों के साथ एकवाक्यता नहीं है; क्योंकि प्रथम तो आगे चलकर श्रीयुत वेसूकट महोदय स्वयं निम्नांकित वाक्य लिखते हैं, जिसका दूसरा टुकड़ा उनके प्रथम विचार का कियदंश में बाधक है—"आजतक जितनी कहानियाँ कही गई हैं, उनसे ज्ञात होता है कि कबीर काशी के रहनेवाले थे। यह बात स्वाभाविक है कि उनके हिंदू शिष्य जहाँ तक हो सके, उनका अपने पवित्र नगर से संबंध दिखलाने की इच्छा करें। परंतु दोनों बीजक और आदि ग्रंथ से यह बात स्पष्ट है कि उन्होंने कम से कम अपना सारा जीवन काशी ही में नहीं व्यतीत किया।"

क. ए. क. पृष्ठ १८, १९

दूसरे, जिस बात को कबीर साहब स्वयं स्वीकार करते हैं, उसमें तर्क-वितर्क की आवश्यकता क्या? उनके निम्नलिखित पद उनका काशी-निवासी होना स्पष्ट सिद्ध करते हैं—

'तू बाम्हन मैं काशी का जुलाहा बूझहु मोर गियाना'।

आदि ग्रंथ, पृ० २६२

'सकल जनम, शिवपुरी गँवाया। मरति बार मगहर उठि धाया'।

आदि ग्रंथ, पृ० १७७

'काशी में हम प्रगट भये हैं रामानंद चेताये'।

कबीर शब्दावली, द्वितीय भाग पृ० ६१

मैं समझता हूँ कि यह बात निश्चित सी है कि पुनीत काशीधाम कबीर साहब का जन्मस्थान, उनकी माता का नाम नीमा और पिता का नाम नीरू था। दोनों जाति के जोलाहे थे। कहा जाता है कि वे इनके औरस नहीं पोष्य पुत्र थे। नीरू जब अपनी युवती प्रिया का द्विरागमन कराकर गृह को लौट रहा था, तो मार्ग में उसको काशी अंकस्थित लहरतारा के तालाब पर एक नवजात सुंदर बालक पड़ा हुआ दृष्टिगत हुआ। नीमा के कलंक-भय से भीत हो मना करने पर भी नीरू ने उस नवजात शिशु को ग्रहण किया और वह उसे घर लाया। वही बालक पीछे इन दयामय दंपति द्वारा परिपालित होकर संसार में कबीर नाम से प्रसिद्ध हुआ।

यह किसका बालक था, लहरतारा के तालाब पर कैसे आया, इन कतिपय पंक्तियों को पढ़कर स्वभावतः यह प्रश्न हृदय में उदय होता है। इसका उत्तर कबीर पंथ के भावुक विश्वासी विद्वान् इस प्रकार देते हैं कि संवत् १४५५ की ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को जब कि मेघमाला से गगनतल समाच्छन्न था, बिजली कौंध रही थी, कमल खिले थे, कलियों पर भ्रमर गूँज रहे थे, मोर, मराल, चकोर कलरव करके किसी के स्वागत की बधाई गा रहे थे, उसी समय पुनीत काशीधाम के तरंगायमान लहर तालाब पर एक अलौकिक घटना हुई; और वह अलौकिक घटना इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं थी कि उक्त तालाब के अंक में विकसे हुए एक सुंदर कमल पर आकाश-मंडल से एक महापुरुष उतरा। महापुरुष वही कबीर बालक था, जिसने कुछ घड़ियां पीछे पुण्यवती नीमा की गोद और भाग्यवान् नीरू का सदन समलंकृत किया।

उक्त प्रश्न का एक और उत्तर दिया जाता है, किंतु वह

बहुत ही हृदयद्रावक है। वह अधःपतित हिंदू समाज से उत्पीड़ित, भयातुरा एक दुःखमयी विधवा की व्यथामयी कथा है। वह उस खिन्नमना, भग्नहृदया, अभागिनी, ब्राह्मण बाला की वार्त्ता है, जिसके उपयोगी अंक से कबीर जैसा लाल गिरकर एक ऐसे स्थान में जा पड़ा कि जहाँ से उसकी परम हृदयोल्लासिनी ज्योतिर्माला फिर उसकी आँखों तक न पहुँची। तब भी मैं उसे एक प्रकार से भाग्यवती ही कहूँगा, क्योंकि उसका लाल किसी प्रकार सुरक्षित तो रहा। परम भाग्यहीना है वह हिंदू जाति और नितांत ही कुत्सित-कपाला है वह आर्य्य बाला, जिसके न जाने कितने एक से एक सुंदर लाल कुप्रथा के कुचक्र में पड़कर अकाल ही इस धराधाम से लुप्त हो जाते हैं और अपनी उस गमनीय आलोकमाला के विकीर्ण करने का अवसर नहीं पाते, जो पतनशील हिंदू समाज का न जाने कितना अंधकार शमन करने में समर्थ होती। आह! कहते हृदय दग्ध होता है कि तो भी हिंदू जाति वैसी ही निश्चल, निस्पंद है, वैसी ही विवेकशून्य और किं-कर्तव्य-विमूढ़ है; आज पाँच शतक बीत जाने पर भी उसकी मोह निद्रा वैसी ही प्रगाढ़ है। कब उसकी यह समाजध्वंसिनी मोहनिद्रा विदूरित होगी, ईश्वर ही जाने।

कहते हैं कि स्वामी रामानंद जी की सेवा में एक दिन उनका अनुरक्त एक ब्राह्मण उपस्थित हुआ। उसके साथ उसकी विधवा पुत्री भी थी। जिस समय इस संकोचमयी विधवा ने विनीत होकर उक्त महात्मा के श्री-चरण-कमलों में प्रणाम किया, उस समय अचानक उनके श्रीमुख से निकला— पुत्रवती भव। काल पाकर यह आशीर्वचन सफल हुआ और विधवा ने एक पुत्र जना। परंतु लोकलज्जावश, हिंदू

समाज की रोमांचकारी कुप्रथा के निंदनीय आतंकवश, यह सशंकिता विधवा अपने कलेजे पर पत्थर रखकर अपनी इस प्यारी संतान को त्याग देने के लिये वाध्य हुई। कुछ घड़ी पीछे लहर तालाब की हरी शांतिमयी भूमि में इसे जोलाहा दंपति ने पाया, यह प्रसंग भी आप लोगों को अविदित नहीं है।

इन दो उत्तरों में से मुझे दूसरा उत्तर युक्तिसंगत और प्रामाणिक ज्ञात होता है। पहले उत्तर को श्रद्धा, विश्वास-वाले कबीरपंथी ही या उन्हीं के से विचार के कुछ लोग मान सकते हैं; परंतु दूसरा उत्तर सर्वमान्य और ऐतिहासिक है। उसको विजातीय और विधर्म्मी भी स्वीकार कर सकता है। यह कोई नहीं कहता कि कबीर साहब नीमा और नीरू के औरस पुत्र थे; और जब वे इनके औरस पुत्र नहीं माने जाते, तो यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि किसी अन्य की संतान थे। और जब उनका अन्य की संतान होना निश्चित है, तो हम को बिना किसी आपत्ति के दूसरा उत्तर ही स्वीकार करना पड़ेगा। कहा जा सकता है कि दूसरे उत्तर में भी स्वामीजी की आशीर्वाद की एक अस्वाभाविक वार्ता सम्मिलन है; किंतु इस अंश का मुख्य घटना के साथ कोई विशेष संबंध नहीं है। यह अंश निकाल देने पर भी वास्तविक घटना की स्वाभाविकता में अंतर नहीं आता। मुझे ज्ञात होता है कि ब्राह्मण-विधवा के कलंक-भंजन अथवा कबीर साहब की जन्मकथा को गौरवमयी बनाने के लिये ही स्वामी जी की आशीर्वाद-संबंधिनी वार्त्ता का इस घटना के साथ संयोग किया गया है।

कबीर साहब के बाल्यकाल की बातें किसी ग्रंथ में कुछ लिखी नहीं मिलतीं। कबीरपंथियों के ग्रंथों में इतना लिखा अवश्य मिलता है कि वे बाल्यकाल ही से धर्म्मपरायण और

उपदेशनिरत थे। जन-साधारण के सम्मुख वे मुझे उस स
दिखलाई पड़ते हैं, जब उनको सुध बुध हो गई थी और
वे तिलक इत्यादि लगाकर राम नाम जपने में लीन हो
थे। यह भी लिखा मिलता है कि इसी समय उनसे कहा
कि तुम निगुरे हो; इसलिये जब तक तुम कोई गुरु न
लोगे, तब तक तिलक मुद्रा देने अथवा राम राम जपं
पूरे फल की प्राप्ति न होगी। यह एक हिंदू विचार है। इ
एक अच्छे पथ-प्रदर्शक से अभिलषित मार्ग में सहायता :
करने के सिद्धांत की ओर संकेत है। कथन है कि क
साहब पर लोगों के इस कहने का प्रभाव पड़ा और
गुरु करने की आवश्यकता समझ पड़ी। ये बातें भी
प्रकट करती हैं कि जिस काल की ये घटनाएँ हैं,
समय कबीर सुबोध हो चुके थे और बाल्यावस्था उ
हो गई थी।

मंत्र-ग्रहण

कबीर साहब हिंदू थे या मुसल्मान, वे स्वामी रा
जी के शिष्य वैष्णव थे, या किसी मुसल्मान फ़कीर के
सूफी, इस विषय में "कबीर ऐंड दी कबीर पंथ" के
अध्याय में उसके विद्वान् रचयिता ने एक अच्छी विवेचन
है। मैं उनके कुल विचारों को यहाँ नहीं उठा सकता;
उनके मुख्य स्थानों को उठाऊँगा और इस बात की मी
करूँगा कि उनके विचार कहाँ तक युक्तिसंगत हैं।

उक्त ग्रंथ के २५-२६ पृष्ठ में एक स्थान पर उन्होंने लिख
"खजीनतुल असूफ़िया"[1] में कहा गया है कि "शेख

१—यह पुस्तक मौलवी गुलाम सरवर की बनाई हुई
१८६८ ई० में लाहौर में छपी थी।

जोलाहा, शेख तकी के उत्तराधिकारी और चेले थे। वह अपने समय के महापुरुष और ईश्वर-वादियों के नेता थे। उन्होंने सूफियों के विसाल (ईश्वरमिलन) नामक सिद्धांत की शिक्षा दी और फिराक (वियोग) के संबंध में चुप रहे। यह भी कहा जाता है कि वे पहले मनुष्य हैं जिन्होंने परमेश्वर और उसकी सत्ता के विषय में हिंदी में लिखा। वे बहुत सी हिंदी कविताओं के रचयिता हैं। धार्मिक सहनशीलता के कारण हिंदू और मुसलमान दोनों ही ने उन्हें अपना नेता माना। हिंदुओं ने उन्हें भगत कबीर और मुसलमानों ने पीर कबीर कहा।"

इसके आगे चलकर उनका दूसरा अध्याय प्रारंभ होता है। उसमें उन्होंने इस ऊपर लिखे विचार की ही पुष्टि की है। पहले वे कहते हैं—

"संस्कृत के नामी विद्वान् विलसन साहब, जिनकी खोज के लिये प्रत्येक भारतवर्षीय धार्मिक विचारों का जिज्ञासु अँगरेज धन्यवाद रूपी ऋण से दबा है, लिखते हैं कि यह बात विचारविरुद्ध है कि कबीर एक मुसलमान थे, यद्यपि यह असंभव नहीं है। मैलकम साहब की इस अनुमति का कि वे सूफियों में से थे, विलसन साहब अधिक आदर नहीं करते। बाद के लेखकगण एक ऐसे विद्वान् पुरुष की सम्मति मान लेने में ही संतुष्ट रहे हैं और इनकी निष्पत्ति को उन्होंने निश्चित की हुई सत्य बात की भाँति स्वीकार कर लिया है।" क० ए० फ०, पृष्ठ २९.

इसके अनंतर नाभा जी के प्रसिद्ध छप्पय इत्यादि का अनुवाद देकर, जिसमें यह कहा गया है कि "कबीर साहब ने वर्णाश्रम धर्म्म और षट् दर्शन की कानि नहीं मानी" उन्होंने यह बतलाया है कि कबीर साहब ने किस प्रकार भाँसी

निवासी शेख तकी का शिष्यत्व स्वीकृत किया। तदुपरांत वे यह कहते हैं—

"हमने संभवतः पूरी तौर पर इस बात को सिद्ध कर दिया है कि यह असंभव नहीं है कि कबीर मुसल्मान और सूफी दोनों रहे हों।....मगहर में उनकी कब्र है जो मुसल्मानों के संरक्षण में रहती आई है। किंतु यह बात आश्चर्यजनक है कि एक मुसल्मान हिंदी साहित्य का जन्मदाता हो। परंतु इसको भी नहीं भूलना चाहिए कि हिंदुओं ने भी फारसी कविता लिखने में प्रतिष्ठा पाई है। फिर, कबीर साधारण योग्यता और निश्चय के मनुष्य नहीं थे। उनके जीवन का उद्देश्य यह था कि अपनी शिक्षाओं को उन लोगों से स्वीकृत करावें, जो हिंदी भाषा द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सकते थे।"

कबीर ऐंड कबीर पंथ, पृ० ४४

कबीर साहब का मुसल्मान होना निश्चित है। उन्होंने स्वयं स्थान स्थान पर जोलाहा कहकर अपना परिचय दिया है। जब जन्मकाल ही से वे जोलाहे के घर में पले थे, तो उनका दूसरा संस्कार हो नहीं सकता था; उनके जी में यह बात समा भी नहीं सकती थी कि मैं हिंदू संतान हूँ। नीचे के पदों को देखिए। इनमें किस स्वाभाविकता के साथ वे अपने को जोलाहा स्वीकार करते हैं—

छाँड़े लोक अमृत की काया जग में जोलह कहाया।

कबीर बीजक, पृष्ठ ६०५

कहैं कबीर राम रस माते जोलहा दास कबीरा हो।

प्रथम ककहरा, चरण १५

जाति जुलाहा क्या करै हिरदे बसे गोपाल।
कबिर रमैया कंठ मिलु चुकै सरब जंजाल॥

आदि ग्रंथ, पृष्ठ ७३७, साखी ८२

किंतु वे सूफी और शेख तकी के चेले थे, यह बात निश्चित-रूप से स्वीकृत नहीं की जा सकती। श्रीयुत वेस्कट ने अपने ग्रंथ में जितने प्रमाण दिखलाए हैं वे सब बाहरी हैं। कबीर साहब के वचनों अथवा उनके ग्रंथों से उन्होंने कोई प्रमाण ऐसा नहीं दिया जो उनके सिद्धांत को पुष्ट करे। बाहरी प्रमाणों की अपेक्षा ऐसे प्रमाण कितने मान्य और विश्वसनीय हैं, यह बतलाना व्यर्थ है। कबीर साहब कहते हैं—

भक्ती लायर ऊपजी, लाये रामानंद।
परगट करी कबीर ने, सात दीप नौ खंड॥

चौरासी अंग की साखी, भक्ति का अंग।

काशी में हम प्रगट भये हैं रामानंद चेताये।

कबीर शब्दावली, द्वितीय भाग, पृष्ठ ६१

काशी में कीरति सुन आई, कबीर मोहि कथा सुभाई।
गुरु रामानंद चरण कमल पर धोविन[1] डीनी वार॥

कबीर-कसौटी, पृष्ठ ५

कबीर साहब के ये वचन ही पर्य्याप्त हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि वे स्वामी रामानंद के शिष्य थे। तथापि मैं कुछ बाहरी प्रमाण भी दूँगा।

धर्म्मदास जी कबीर साहब के प्रधान शिष्य थे। वे कबीर पंथ की एक शाखा के आचार्य्य भी हैं। वे कहते हैं—

काशी में प्रगटे दास कहाये नीरू के गृह आये।
रामानँद के शिष्य भये, भवसागर पंथ चलाये॥

कबीर-कसौटी, पृष्ठ ३३

फारसी की एक तवारीख दबिस्ताँ में मुहसिनफानी कश्मीर-वाला, जो अकबर के समय में हुआ है, लिखता है—

"कबीर जोलाहे और एकेश्वरवादी थे। कोई आध्यात्मिक

1—धोविन अर्थात् माया।

पथ-दर्शक मिले, इस इच्छा से वे हिंदू साधुओं एवं मुसलमान फकीरों दोनों के पास गए ; और अंत में जैसा कहा गया है, रामानंद के शिष्य हुए ।" —कबीर एंड कबीर पंथ, पृष्ठ ३७

इन बातों के अतिरिक्त यदि कबीर साहब की रचनाओं को पढ़िए, तो वे इतनी हिंदू-भावापन्न मिलेंगी, कि उन्हें पढ़कर आप यह स्वीकार करने के लिये विवश होंगे कि उनपर परम शास्त्रपारंगत किसी महापुरुष का प्रभाव पड़ा था। कबीर साहब अशिक्षित थे, यह बात उनके समस्त जीवनी-लेखक स्वीकार करते हैं। अतएव उनके लिये ज्ञानार्जन का मार्ग सत्संग के अतिरिक्त और कुछ न था। यदि वे मुसलमान धर्म्माचार्य्यों द्वारा प्रभावित होते, तो उनकी रचनाओं में अहिंसावाद और जन्मांतरवाद का लेश भी न होता। जो हिंसावाद मुसलमानी धर्म्म का प्रधान अंग है, उस हिंसावाद के विरुद्ध जब वे कहने लगते हैं, तब ऐसी कड़वी और अनुचित बातें कह जाते हैं जो एक धर्मोपदेशक के मुख से अच्छी नहीं लगतीं। क्या हिंसावाद का उन्हें इतना विरोधी बनानेवाला मुसलमानी धर्म्म या सूफी संप्रदाय हो सकता है? उनका सृष्टिवाद देखिए। यह वही है जो पुराणों में वर्णित है। उनकी रचनाओं में हिंदू शास्त्रों और पौराणिक कथाओं एवं घटनाओं के परिज्ञान का जितना पता चलता है, उसका शतांश भी मुसलमानी धर्म्म-संबंधी उनका ज्ञान नहीं पाया जाता। जब वे किसी अवसर पर मुसलमान धर्म्म पर आक्रमण करते हैं, तब उन्हीं ऊपरी बातों को कहते हैं जिनको एक साधारण हिंदू भी जानता है। किंतु हिंदू-धर्म्म-विवेचन के समय उनके मुख से वे बातें निकलती हैं, जिन्हें शास्त्रज्ञ वद्वानों के अतिरिक्त दूसरा कदाचित् ही जानता हो। इन बातों से क्या सिद्ध होता है? यही कि उन्होंने किसी परम

विद्वान् हिंदू महात्मा के सत्संग द्वारा ज्ञानार्जन किया था; और स्वामी रामानंद के अतिरिक्त उस समय ऐसा महात्मा कोई दूसरा नहीं था।

एक बात और है। वह यह कि हम उनके प्रामाणिक ग्रंथों में कहीं कहीं ऐसा वाक्य पाते हैं, जो उनको हिंदुओं का पक्षपाती बताते हैं या मुसलमान जाति पर उनकी घृणा प्रकट करते हैं, और जिन्हें मुसलमान धर्म्माचार्य्य का शिष्य कभी नहीं कह सकता। नीचे के पदों को पढ़िए—

"सुनत कराय तुरुक जो होना, औरत को का कहिए।
अरध शरीरी नारि बखाने, ताते हिंदू रहिए॥"

कबीर बीजक, पृष्ठ ३६३, शब्द ८४

किते मनावें पायँ परि, किते मनावें रोइ।
हिंदू पूजें देवता तुरुक न काहुक होइ॥

कबीर बीजक, साखी १८७, पृष्ठ ५०३

मैंने अब तक जो कुछ कहा, उससे इसी सिद्धांत पर उपनीत होना पड़ता है कि कबीर साहब स्वामी रामानंद के शिष्य थे; किंतु उनके मंत्रग्रहण की वार्त्ता से मैं सहमत नहीं हूँ। भक्तमाल और उसी के अनुसार दूसरे ग्रंथों में लिखा हुआ है कि गुरु करने की इच्छा उदित होने पर कबीर साहब ने स्वामी रामानंद को गुरु करना विचारा; किंतु यवन होने के कारण वे स्वामी रामानंद जी तक नहीं पहुँच सकते थे; अतएव उनसे मंत्र ग्रहण करने के लिये उन्होंने दूसरी युक्ति निकाली। स्वामी रामानंद शेष रात्रि में गंगा स्नान के लिये नित्य मणिकर्णिका घाट पर जाया करते थे। एक दिन उसी समय कबीर साहब घाट की सीढ़ियों में जाकर पड़ रहे। जब स्वामी जी आए, तब सीढ़ियों से उतरते समय उनका पाँव कबीर साहब पर पड़ा। वे कुलबुलाए। स्वामी जी ने जाना

कि मनुष्य के ऊपर पाँव पड़ा, इसलिये वे बोल उठे "राम ! राम !!" कबीर साहब ने इसी राम शब्द को मंत्र स्वरूप ग्रहण किया ; और उसी दिन से काशी में अपने को स्वामी रामानंद का शिष्य प्रकट किया ।

बतलाया गया है कि उनके माता पिता और कुछ लोगों को वंशमर्यादा-प्रतिकूल कबीर साहब की यह क्रिया अच्छी न लगी ; इसलिये उन लोगों ने जाकर स्वामी जी को उलाहना दिया । स्वामी जी ने उनको बुलवाया और पूछा—कबीर ! हमने तुझे मंत्र कब दिया ? कबीर साहब ने कहा—और लोग तो कान में मंत्र देते हैं ; परंतु आपने तो सिर पर पाँव रखकर मुझे राम नाम का उपदेश दिया । स्वामी जी को बात याद आ गई, उठकर हृदय से लगा लिया, और कहा कि निस्संदेह तू इसका पात्र है । गुरु शिष्य का यह भाव देखकर लोगों को फिर और कुछ कहने का साहस नहीं हुआ ।

स्वामी रामानंद असाधारण आध्यात्मिक शक्ति संपन्न महापुरुष थे । जो रामावत संप्रदाय इस समय उत्तरीय भारत का प्रधान धर्म्म है, वह उन्हीं की लोकोत्तर मेधा का अलौकिक फल है । उस राम मंत्र से सर्व साधारण को परिचित करानेवाले यही महोदय हैं, जो हिंदू जाति के मोक्ष-पथ का अभूतपूर्व संबल हैं, जिनके सुयश गान से कबीर साहब के सांप्रदायिक ग्रंथ मुखरित हैं, गुरु नानक का विशाल आदि ग्रंथ गौरवान्वित है, दादू ग्रंथावली पवित्रीकृत है, और अन्य कितनी ही सांप्रदायिक पुस्तकमालाएँ प्रशंसित और सम्मानित हैं । कुछ लोग ऊँचे उठे, बहुत कुछ चिंताशीलता का परिचय दिया, तनधारी राम से संबंध तोड़ा, किंतु वे इस राम शब्द की ममता न छोड़ सके । इस महात्मा के आध्यात्मिक विकास की वहाँ पराकाष्ठा होती है; जहाँ वे

सोचते हैं, (प्रवहमान मरुत्, सुशीतल जल, और सूर्य्यदेव की ज्योतिर्माला तुल्य भगवद्भक्ति पर प्रत्येक मानव का समान अधिकार है)। भारतवर्ष के उत्तर काल में वे पहले महात्मा हैं, जो नितांत उदार हृदय लेकर सामने आते हैं और उसी सहृदयता से जाट, नाई, जोलाहे और चमार को अंक में ग्रहण करते हैं, जिस प्यार से किसी सजातीय ब्राह्मण बालक को वे हृदय से लगाते हैं। आँख उठाकर देखिए, किसकी शिष्यमंडली में एक साथ इतने महात्मा और मतप्रवर्त्तक हुए जितने कि इस महानुभाव के सदुपदेश-आलोक से आलोकित सत्पुरुषों में पाए जाते हैं। जब इस महात्मा की पूत कार्य्यावली पर दृष्टि डालते हैं, और फिर सुनते हैं कि उनके सन्निकट कोई मनुष्य जोलाहा होने के कारण नहीं पहुँच सका, तो हृदय को बड़ी व्यथा होती है। यदि रैदास चमार उनके द्वारा अंगीकृत हुआ तो कबीर जोलाहा कैसे तिरस्कृत हो सकता था? वास्तविक बात यह है कि इन कथाओं के गढ़नेवाले संकुचित विचार के कतिपय वे ही अदूरदर्शी जन हैं, जिनके अविवेक से प्रति दिन हिंदू समाज का ह्रास हो रहा है। मुझे इन कथाओं का स्वीकार करना युक्तिसंगत नहीं ज्ञात होता। मैं मद्दस्जिन फर्नी के इस विचार से सहमत हूँ कि "आध्यात्मिक पथप्रदर्शक मिले, इस इच्छा से कबीर साहब हिंदू साधुओं एवं मुसलमान फकीरों दोनों के पास गए और अंत में स्वामी रामानंद के शिष्य हुए।"

जो लोग मणिकर्णिकाघाट की घटना ही को सत्य मानते हैं, उनसे मैं कोई विवाद नहीं करना चाहता; किंतु इतनी विनीत प्रार्थना अवश्य करता हूँ कि इस घटना को सत्य कर जो मर्म्मी [illegible] में "पुनंतु मां ब्राह्मण-पादरेणवः" वाक्य पर गर्व करते हैं, उनकी मर्म्मज्ञता केवल गर्व करने में ही पर्य्य-

वसित होती है, अथवा वे इस वाक्य के मर्म्म-ग्रहण की भी कुछ चेष्टा करते हैं। प्रति वर्ष सहस्रों हिंदू हमारे समाज अंक को शून्य करके अन्य धर्म्म की शरण ले रहे हैं। प्रति दिन हिंदू धर्म्म माननेवालों की संख्या क्षीण होती जा रही है। क्या उनके विषय में उनका कुछ कर्तव्य नहीं है? क्या, स्नान, ध्यान, पूजा, पाठ, व्रत, उपवास करने में ही पुण्य है? क्या धर्म्म से च्युत होते हुए प्राणियों की संरक्षा में पुण्य नहीं है? क्या कुल गौरव, मान-मर्य्यादा, वर्णाश्रम धर्म्म का संरक्षण ही सत्कर्म्म है? क्या नित्य स्वधर्म-परित्याग-परायण अधःपतित जातियों का समुद्धार सत्कर्म्म नहीं है? यदि है तो कितने महोदय ऐसे हैं जिन्होंने आत्मत्यागपूर्वक निर्भीक चित्त से इस मार्ग में पद-विन्यास किया है? पदरेणु की बात जाने दीजिए, मैं पूछता हूँ कि कितने लोगों का हृदय इतना पुनीत है, शरीर इतना पुण्य-मय है, स्वयं आत्मा इतनी पवित्रीभूता है कि जिनके संस्पर्श से अपावन भी पावन हो जाता है? जब हम स्वयं अपावन को छूकर आज अपवित्र होते हैं, तो हमको "पुनंतु मां ब्राह्मण-पादरेणवः" वाक्य मुख पर लाते हुए लज्जित होना चाहिए। यदि नहीं, तो एक आत्मोत्सर्गी महापुरुष की भाँति कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण होना चाहिए और यह दिखला देना चाहिए कि स्वामी रामानंद का आध्यात्मिक बल अब भी भारतवासियों में शेष है, अब भी अपावन को पावन बनाने की बलवती शक्ति उनमें विद्यमान है, भारत वसुंधरा अभी ऐसे अलौकिक रत्नों से शून्य नहीं हुई है।

संसार-यात्रा

कबीर साहब अपने जीवन का निर्वाह अपना पैतृक व्यय-साय करके ही करते थे, यह बात उनके सभी जीवनी लेखकों ने स्वीकार की है। उनके शब्दों में भी ऐसे वाक्य बहुत

मिलते हैं कि 'हम घर सूत तनहिं नित ताना' इत्यादि जिनसे उनका यही व्यवसाय करके अपना जीवन विताना सिद्ध होता है। इस विषय में उनका एक बड़ा सुंदर शब्द है; उसे नीचे लिखता हूँ—

मुसि मुसि रोवै कबीर की माय,
ए बालक कैसे जीवहिं रघुराय।
तनना बुनना सब तज्यो है कबीर,
हरि का नाम लिखि लियो शरीर।
जब लग तागा बाहउँ बेही,
तब लग बिसरै राम सनेही।
ओछी मति मेरी जात जुलाहा,
हरि का नाम लह्यों मैं लाहा।
कहत कबीर सुनहु मेरी माई,
हमारा इनका दाता एक रघुराई।

आदि ग्रंथ, पृष्ठ ५२४

किंतु इनके विवाह और संतानोत्पत्ति के विषय में मतांतर है। कबीरपंथ के विद्वान् कहते हैं कि लोई नाम की स्त्री उनके साथ आजन्म रही, परंतु उनसे उन्होंने विवाह नहीं किया। इसी प्रकार कमाल उनके पुत्र और कमाली उनकी पुत्री के विषय में भी ये लोग विचित्र बातें कहते हैं। उनका कथन है कि ये दोनों अन्य की सन्तान थे, जो मृतक हो जाने के कारण त्याग दिए गए थे; परंतु कबीर साहब ने उनको पुनः जिलाया और पाला; इसी लिये ये दोनों उनकी संतान करके प्रख्यात हुए। यह कदाचित् ये लोग इसलिये कहते हैं कि कबीर साहब ने स्त्री संग को बुरा कहा है। यथा—

नारि नसावै तीन गुन, जो नर पासे होय।
भक्ति मुक्ति निज ध्यान में, पैठि सकै नहिं कोय॥

नारी की झाँई परत, अंधा होत भुजंग ।
कविरा तिनकी कौन गति, नित नारी को संग ॥

चौरासी अंग की साखी, कनक-कामिनी का अंग ।

किंतु कबीर साहब ने अपना विवाह होना स्वयं स्वीकार किया है । यथा—

नारी तो हम भी करी, जाना नाहिं विचार ।
जब जाना तब परिहरी, नारी बड़ा विकार ॥

चौरासी अंग की साखी, कनक-कामिनी का अंग ।

भ्रमण करते हुए एक दिन कबीर साहब भगवती भागीरथीकूलस्थित एक वनखंडी वैरागी के स्थानपर पहुँचे । वहाँ एकविंशति वर्षीया युवती ने आपका स्वागत किया । वह निर्जन स्थान था ; परंतु कुछ काल ही में वहाँ कुछ साधु और आए । युवती ने साधुओं को अतिथि समझा, उनका शिष्टाचार करना चाहा, अतएव वह एक पात्र में दूध लाई । साधुओं ने उस दूध को सात पनवाड़ों में बाँटा । पाँच उन लोगों ने स्वयं लिया, एक कबीर साहब को और एक युवती को दिया । कबीर साहब ने अपना भाग लेकर पृथ्वी पर रख दिया, इसलिये युवती ने कुछ संकोच के साथ पूछा—आपने अपना दूध धरती पर क्यों रख दिया ? आप भी और साधुओं की भाँति उसे कृपा करके अंगीकार कीजिए । कबीर साहब ने कहा—देखो, गंगा पार से एक साधु और आ रहा है ; मैंने उसी के लिये इस दूध को रख छोड़ा है । युवती कबीर साहब की यह सज्जनता देखकर मुग्ध हो गई और उसी समय उनके साथ उनके घर चली आई । पश्चात् इसी के साथ कबीर साहब का विवाह हुआ । इसका नाम लोई था । यह वनखंडी वैरागी की प्रतिपालित कन्या थी । इसे वैरागी ने

अचानक एक दिन जाह्नवीकूल पर पड़ा पाया था। कमाली और कमाल इसी की संतान थे।

शील और सदाचार

एक दिन कबीर साहब ने सस्त्रीक एक थान बुनकर प्रस्तुत किया और बेचने की कामना से वे उसे लेकर घर से बाहर निकले। अभी कुछ दूर आगे बढ़े थे कि एक साधु ने सामने आकर कहा—बाबा कुछ दे! कबीर साहब ने आधा थान फाड़ दिया। उसने कहा—बाबा, इतने में मेरा काम न चलेगा। कबीर साहब ने दूसरा आधा भी उसको अर्पण किया और आप प्रसन्न वदन घर लौट आए।

एक दिन कबीर साहब के यहाँ बीस पचीस भूखे फकीर आए। उस दिन उनके पास कुछ न था, इसलिये वे घबराए। लोई ने कहा—यदि आज्ञा हो तो मैं एक साहूकार के बेटे से कुछ रुपए लाऊँ। उन्होंने कहा-कैसे! स्त्री ने कहा-वह मुझ पर मोहित है। मैं पहुँची नहीं कि उसने रुपया दिया नहीं। कबीर साहब ने कहा-किसी तरह काम चलाना चाहिए लोई साहूकार के बेटे के पास पहुँची, रुपया लाई और रात में मिलने का वादा कर आई। दिन खाने खिलाने में बीता, रात हुई, सब ओर अँधेरा छा गया, झड़ बाँधकर मेंह बरसने लगा, रह रहकर हवा के झोंके जी कँपाने लगे। किंतु कबीर साहब को चैन न था, वे सब जान चुके थे। उन्होंने सोचा—जिसकी बात गई, उसका सब गया; इसलिये वे पानी और हवा से न डरे। कम्मल ओढ़ाकर उन्होंने स्त्री को कंधे पर लिया और साहूकार के घर पहुँचे। साहूकार का लड़का तड़प रहा था। उसको आया देख वह खिल उठा। किंतु जब उसने देखा कि न तो उसके पाँव कीचड़ से भरे हैं और न

कपड़ा भींगा है, तो चकित हो गया और बोला—तुम कैसे आई ? लोई ने कहा—मेरे पति मुझे अपने कंधे पर चढ़ाकर लाए हैं। यह सुनकर साहूकार के लड़के के जी में बिजली कौंध गई, उजाले के सामने अँधियारा न ठहर सका। वह लोई के पाँवों पर गिर पड़ा और बोला—आप मेरी माँ हैं। कबीर साहब ने मेरी आँख खोलने के लिये ही इस कठिनाई का सामना किया है। इतना कहकर वह घर से बाहर निकल आया और कबीर साहब के पाँवों से लिपट गया तथा उसी दिन से उनका सच्चा सेवक बन गया।

श्रीमान् वेसूकट लिखते हैं कि "कबीर साहब के वर्णित जीवन चरित में एक प्रकार का काव्य का सा सौंदर्य्य पाया जाता है"[1]। यह बात सत्य है, कि मेरी प्रवृत्ति इन दो प्रसंगों के अतिरिक्त किसी दूसरे प्रसंग को लिखने को नहीं होती। आप लोग इन दो कथानकों से ही उनके शील और सदाचार के विषय में बहुत कुछ अवगत हो सकते हैं।

धर्मप्रचार

भागीरथी के तट की बातें लिखकर "रहनुमायाने हिंद" के रचयिता लिखते हैं—"रामानंद कबीर के बशरे से कुछ आसारे सआदत देखकर उन्हें अपने मठ में ले आए और वह उसी रोज बाजाब्ता रामानंद के मजहब में दाखिल हो गए। मगर हम यह नहीं बता सकते, कि वह कब तक अपने गरोह की इताअत व पैरवी में साबित-कदम रहे। गालिबन् मुरशिद की वफात के बाद उन्होंने अपने मजहब का वाज व तलकीन शुरू की"। मेरा भी यही विचार है। उनका उपदेश देने का ढंग निराला था। संभव है कि वे कभी कभी यों भी

१—देखो, कबीर एंड द कबीर पंथ, पृष्ठ २९।

लोगों को उपदेश देते रहे हों, किंतु अधिकतर वे अपने विचारों को सीधी सादी बोलचाल की भाषा में भजन बनाकर और उन्हें गाकर प्रकट करते थे। उनके भजनों को देखिए, उनकी रचना अधिकांश प्रचलित गीतों के ढंग की है। वे स्वयं कहते हैं—

बोली हमारी पूर्व की, हमें लखा नहिं कोइ।
हमको तो सोई लखै, घर पूरब का होइ॥
मसि कागद तो छुयो नहिं, कलम गही नहिं हाथ।
चारिहु जुग महात्म्य तेहि, कहि कै जनायो नाथ॥

कबीर बीजक, साखी १७७, १८१

उनके धार्मिक सिद्धांत क्या थे और वे लोगों को किस बात की शिक्षा देते थे, इस बात का वर्णन मैं अंत में करूँगा। यहाँ केवल यह प्रकट करना चाहता हूँ कि संसार में जो लोग मुख्य योग्यता के होते हैं, उनमें कुछ आकर्षिणी शक्ति अवश्य होती है। कबीर साहब में भी यह शक्ति थी। उनके भावमय भजनों को सुनकर और उनके शील और सदाचरण से प्रभावित होकर उनके समय में ही अनेक लोग उनके अनुगत हो गए। इनमें अधिकतर हिंदुओं की ही संख्या है, मुसल्मानों के हृदय पर उनका अधिकार नहीं हुआ। किसी किसी राजा पर भी उनका प्रभाव पड़ा, चाहे यह प्रभाव केवल एक साधु या महात्मा-मूलक हो, या धर्म्म-मूलक।

विरोधी दल

यह सत्य है कि हिंदू और मुसल्मान दोनों धर्म के नेताओं से अंत में उनका विरोध हो गया। क्यों हो गया, इसके कारण स्पष्ट हैं। हिंदू धर्म के नेताओं को एक अहिंदू का हिंदू धर्म्मोपदेशक रूप से कार्य्यक्षेत्र में आना कभी प्रिय नहीं

हो सकता था; इसलिये उन लोगों का कबीर साहब का कट्टर विरोधी हो जाना स्वाभाविक था। हिंदू आचार्य्य का शिष्यत्व ग्रहण करने और मुसलमान होकर हिंदू सिद्धांतों के अनुगत और प्रचारक हो जाने के कारण मुसलमान धर्म्म के नेताओं से भी उनका वैमनस्य हो गया। परिणाम इसका यह हुआ कि उन्होंने दोनों धर्म्मों के नेताओं पर कठोरता के साथ आक्रमण किया और उद्दंड स्वभाव होने के कारण उनपर बड़ी कटूक्तियाँ कीं, उनके धर्म्म-ग्रंथों को भला बुरा कहा। फिर विरोध की आग क्यों न भड़कती। निदान इस विरोध के कारण उनको अनेक यातनाएँ भोगनी पड़ीं। किंतु उनमें वह दृढ़ता मौजूद थी, जो प्रत्येक समय के धर्म्मप्रचारकों में पाई जाती है। इसलिये अनेक कष्ट सहकर भी वे अपने सिद्धांत पर आरूढ़ रहे और उनकी इसी निश्चलता ने उनको सर्व साधारण में समादृत बनाया। उस समय सिकंदर लोदी उत्तरीय भारत में शासन करता था। शेख तकी (जो एक प्रभावशाली और मान्य व्यक्ति थे) और दूसरे मुसल्मानों के शिकायत करने पर बादशाह की क्रोधाग्नि भी भड़की और उन्होंने कबीर साहब को कुछ कष्ट भी दिया; किंतु अंत में उन्हें फकीर होने के कारण छुटकारा मिल गया।

कबीर साहब को धर्म्मप्रचार में जिन आपदाओं का सामना करना पड़ा, उनको उनके अनुयायियों ने बहुत रंजित करके लिखा है। यद्यपि उनका अधिकांश अस्वाभाविक है, परंतु आप लोगों की अभिज्ञता के लिये मैं उनका दिग्दर्शन मात्र कराऊँगा।

कहा जाता है कि शाह सिकंदर ने पहले उनको गंगा में और बाद को अग्नि में डलवा दिया, किंतु वे दोनों स्थानों से जीवित निकल आए। इसके उपरांत उनके ऊपर मस्त हाथी

छोड़ा गया ; परंतु वे उसके सामने शार्दूल होकर प्रगट हुए। मस्त हाथी भागा और उनका बाल भी बाँका न हुआ। कबीर साहब के एक शब्द में भी इसमें की एक घटना का वर्णन है।

गंगा गुसाँइनि गहिर गंभीर, जँजिर बाँध कर खरे कबीर।
मन न डिगै तन काहे को डेराइ, चरन कमल चित रह्यो समाइ।
गंग की लहर मेरी टूटी जँजीर, मृगछाला पर बैठे कबीर।
कह कबीर कोउ संग न साथ, जल थल राखत हैं रघुनाथ।

आदि ग्रंथ, पृष्ठ ६२६

अंतिम काम

कबीर साहब की परलोक-यात्रा के विषय में यह अति प्रसिद्ध बात है कि उस समय वे काशी छोड़कर मगहर चले गए थे। बस्ती के जिले में मगहर एक छोटा सा ग्राम है, जिसमें अब तक उनकी समाधि है। यहाँ वर्ष में एक बार साधारण मेला भी होता है। कबीर पंथ के अनुयायी कुछ मुसल्मान मिलते हैं तो यहीं मिलते हैं। कबीर साहब काशी छोड़कर अंत समय क्यों मगहर चले आए, इसका उत्तर वे स्वयं अपने निम्नलिखित शब्दों में देते हैं—

लोगा तुम ही मति के भोरा।
ज्यों पानी पानी में मिलिगो, त्यों ढुरि मिल्यो कबीरा।
ज्यों मैथिल को सच्चा बास, त्योंहि मरण होय मगहर पास।
मगहर मरै मरन नहिं पावै, अंत मरै तो राम लजावै।
मगहर मरै सो गदहा होई, भल परतीत राम सों खोई॥
क्या काशी क्या ऊसर मगहर, राम हृदय बस मोरा।
जो काशी तन तजै कबीरा, रामै कौन निहोरा॥

कबीर बीजक, शब्द १०३

ज्यों जल छोड़ि बाहर भयो मीना,
पुरुष जन्म हों तप का हीना।
अब कहु राम कवन गति मेरी,
तजिले बनारस मति भई थोरी।
सकल जनम शिवपुरी गँवाया,
मरति बार मगहर उठि धाया।
बहुत बरख तप कीया काशी,
मरन भया मगहर को बासी।
काशी मगहर सम बीचारी,
ओछी भगति कैसे उतरै पारी।
कह गुरु गज शिव सम को जानै,
मुआ कबीर रमत श्री रामै॥

आदि ग्रंथ, पृष्ठ १७७

जहाँ इन शब्दों से कबीर साहब की विचित्र धार्मिक दृढ़ता सूचित होती है, वहा दूसरे शब्द के कतिपय आदिम पदों से उनका दुःखमय आंतरिक क्षोभ भी प्रकट होता है, और उनके संस्कार का भी पता चलता है। मनुष्य जब किसी गूढ़ कारण-वश अपनी अत्यंत प्रिय आंतरिक वासनाओं की पूर्ति में असमर्थ होता है, तो जैसे पहले वह हृदयोद्वेग से विह्वल होकर पीछे दृढ़ता ग्रहण करता और कोई अवलंब ढूँढकर चित्त को बोध देता है, दूसरे शब्द में कबीर साहब के हृदय का भाव ठीक वैसा ही व्यंजित हुआ है। इससे क्या सूचित होता है? यही कि कबीर साहब को किसी घोर धार्मिक विरोधवश काशी छोड़नी पड़ी थी। भक्ति-सुधा-बिंदु-स्वाद नामक ग्रंथ (पृष्ठ ८४०) के इस वाक्य को देखकर कि "श्री कबीर जी संवत् १५४९ में मगहर गए। वहीं से संवत् १५५२ की अगहन सुदी एकादशी को परमधाम पहुँचे" यह विचार और पुष्ट हो जाता

है, क्योंकि यह वाक्य यह नहीं बतलाता कि मरने के केवल कुछ दिन पहले कबीर साहब मगहर में आए।

कबीर साहब मुसलमान के घर पले थे, मुसल्मान फकीरों से व्यवहार रखते थे; इसलिये उनमें मुसल्मानों की ममता होना स्वाभाविक है। वे एक हिंदू आचार्य्य के शिष्य थे, राम नाम के प्रचारक और उपदेशक थे, अतएव हिंदू यदि उन्हें अपना समझें तो आश्चर्य्य क्या? निदान यही करण है कि उनका परलोक हो जाने पर रुधिरपात की संभावना हो गई। काशिराज बीरसिंह उनके शव को दग्ध और बिजलीखाँ पठान समाधिस्थ करना चाहता था, अतएव तलवार चल हो गई थी कि एक समझ काम कर गई। शव की चद्दर उठाई गई तो उसके नीचे फूलों का ढेर छोड़ और कुछ न मिला। हिदुओं ने इसमें से आधा लेकर जलाया और उसकी राख पर समाधि बनाई। यही काशी का कबीरपंथियों का प्रसिद्ध स्थान कबीर चौरा है। मुसल्मानों ने दूसरा आधा लेकर वहीं मगहर में उसी पर कब्र बनाई जो अब तक मौजूद है। कबीर-पंथियों के ये दोनों पवित्र स्थान हैं।

कबीर कसौटी (पृष्ठ ५४) में लिखित मरने के समय के इस वाक्य से कि "कमल के फूल और दो चद्दर मँगवाकर लेट गए" फूल का रहस्य समझ में आता है। कबीर सहब ने जब शव के लिये तलवार चल जाने की संभावना देखी, तो उन्होंने ही अपने बुद्धिमान् शिष्यों द्वारा दूरदर्शिता से ऐसी सुव्यवस्था की कि शरीरांत होने पर शव किसी को न मिला। उसके स्थान पर लोगों ने फूलों का ढेर पाया, जिससे सब झगड़ा अपने आप मिट गया। कहा जाता है कि गुरु नानक के शव के विषय में भी ठीक ऐसी ही घटना हुई थी।

ग्रंथावलि

कबीर साहब ने स्वयं स्वीकार किया है कि "मसि कागद तो छुयो नहिं कलम गही नहिं हाथ। चारिहुँ जुग माहात्म्य तेहि कहिकै जनायो नाथ"। इसलिये यह स्पष्ट है कि कबीर साहब ने न तो कोई पुस्तक लिखी, न उन्होंने कोई धर्म्म-ग्रंथ प्रस्तुत किया। कबीर संप्रदाय के जितने प्रामाणिक ग्रंथ हैं, उनके विषय में कहा जाता है कि उन्हें कबीर साहब के पीछे उनके शिष्यों ने रचा। यह हो सकता है कि जिन शब्दों या भजनों में कबीर नाम आता है, वे कबीर साहब के रचे हुए हों, जो शिष्यों द्वारा पीछे ग्रंथ स्वरूप में संगृहीत हुए हों, परंतु यह बात सत्य ज्ञात होती है कि अधिकांश ग्रंथ कबीर साहब के पीछे उनके शिष्यों द्वारा ही रचे गए हैं। प्रोफेसर वी० वी० राय, जो एक क्रिश्चियन विद्वान् हैं, अपने 'संप्रदाय' नामक उर्दू ग्रंथ के पृष्ठ ६३ में लिखते हैं—

"जहाँ तक मालूम होता है, कबीर ने अपना तालीमी बातों को कलमबंद नहीं किया। उसके बाद उनके चेलों ने बहुत सी किताबें तसनीफ कीं। यह किताबें अकसर गुफ्तगू की सूरत और हिंदी नजम में लिखी गईं। काशी के कबीरचौरे में इस संप्रदाय की मशहूर और पाक किताबों का मजमूआ पाया जाता है, जिसे कबीरपंथी लोग 'खास ग्रंथ' कहते हैं"। प्रसिद्ध बंगाली विद्वान् बाबू अक्षयकुकार दत्त भी अपने "भारतवर्षीय उपासक-संप्रदाय" नामक बँगला ग्रंथ (प्रथम भाग, पृष्ठ ४९) में यही बात कहते हैं—

"ए संप्रदायेर प्रामाणिक ग्रंथ समुदाय कबीरेर शिष्य-दिगेर आर ताहार उत्तर कालवर्त्ती गुरुदिगेर रचित बलिया प्रसिद्ध आछे।"

श्रीमान् वेसूकट कहते हैं—"ज्ञात यह होता है कि कवीर की शिक्षाएँ मौखिक थीं, और वे उनके पीछे लिखी गईं। सब से पुराने ग्रंथ, जिनमें उनकी शिक्षाएँ लिखी गईं, बीजक और आदि ग्रंथ हैं। यह भी संभव है कि इनमें से कोई पुस्तक कवीर के मरने से पचास वर्ष पीछे तक न लिखी गई हो। यह विचारना कठिन है कि वे ठीक उन्हीं शब्दों में लिखी गई हैं, जो कि गुरु के मुख से निकले हैं। और यह वात तो और भी कठिनता से मानी जा सकती है कि उनमें और शब्द नहीं मिला दिए गए हैं।"

कवीर एँड दी कवीर पंथ, पृ० ४६

'खास ग्रंथ' में निम्नलिखित इक्कीस छोटी बड़ी पुस्तकें हैं।

१—सुखनिधान—इस ग्रंथ के रचयिता 'श्रुतगोपालदास' हैं। कवीर पंथ की द्वादश शाखाओं में से कवीरचौरा स्थान की शाखा के ये प्रवर्त्तक हैं। सुखनिधान समस्त ग्रंथों का कुंचिका स्वरूप, बोध-सुलभ और सुप्रसन्न शब्दों में लिखित है। पठद्दशा की चरमावस्था प्राप्त हुए विना किसी को इस ग्रंथ के पढ़ने की व्यवस्था नहीं दी जाती। इस ग्रंथ में ८ अध्याय हैं; और धर्म्मदास और कवीर साहव के प्रश्नोत्तर रूप में ब्रह्म, जीव, माया इत्यादि धार्मिक विषयों का इसमें निरूपण है।

२—गोरखनाथ की गोष्ठी—इस ग्रंथ में महात्मा गोरखनाथ के साथ कवीर साहव का धार्मिक वार्त्तालाप है।

३—कवीर पाँजी, ४—वलख की रमैनी, ५—आनंद राम सागर—ये साधारण ग्रंथ हैं। इनके विषय में कहीं कुछ विशेष लिखा नहीं मिला।

६—रामानंद की गोष्ठी–इस ग्रंथ में स्वामी रामानंद के साथ कवीर साहव का धार्मिक वर्तालाप है।

७—शब्दावली–इसमें एक सहस्र धार्मिक शब्द हैं, किंतु वे क्रमवद्ध नहीं हैं। इसमें छोटी छोटी धार्मिक शिक्षाएँ हैं।

८—मंगल–इसमें एक सौ छोटी कविताएँ हैं।

९—वसंत–इसमें वसंत राग के एक सौ धर्म्म-संगीत हैं।

१०—होला–इसमें होली के दो सौ गीत हैं।

११—रेखता–इसमें एक शत रेखते हैं, किंतु उनमें छंदो-भंग वहुत है।

१२—भूलन–इसमें अनेक धार्मिक विषयों पर पाँच सौ गीत हैं।

१३—कहरा–इसमें कहरा चाल के पाँच सौ भजन हैं।

१४—हिंदोल–इसमें नाना प्रकार के द्वादश भजन हैं, जिनमें नैतिक और धार्किक शिक्षाएँ हैं।

१५—वारहमासा–इसमें वारह महीनों पर धार्मिक संगीत हैं।

१६—चाँचर–इसमें चाँचर चाल के गीतों में नाना प्रकार के भजन और शब्द हैं।

१७—चौंतीसो–इसमें हिंदी भाषा के तेंतीस व्यंजनों और चौंतीसवें ॐकार में से एक एक को प्रत्येक पद्य के आदि में रखकर धार्मिक कविता की गई है। कुल ३४ पद्य हैं।

१८—अलिफनामा–इसमें फारसी अक्षरों की धार्मिक व्याख्या है।

१९—रमैनी—इसमें कबीर पंथ के सिद्धांतों का शब्दों में विस्तृत वर्णन है। स्वधर्म्म-प्रतिपादन और परधर्म्म-खंडन पंथ के सिद्धांतानुसार किया गया है। कूट शब्द भी इसमें पाए जाते हैं।

२०—साखी—इसमें पाँच सहस्र दोहे हैं, जो पंथ में साखी नाम से पुकारे जाते हैं। इन दोहों में अनेक प्रकार की नीति और धर्म्म की शिक्षाएँ हैं। चौरासी अंग की साखी इसी के अंतर्गत है। इस ग्रंथ की कतिपय साखियाँ बड़ी ही सुंदर हैं।

२१—बीजक—इस ग्रंथ में ६५४ अध्याय हैं। इसको कबीर-पंथी लोग बहुत मानते हैं। बीजक दो हैं पर उन दोनों में बहुत अंतर नहीं है। कबीरपंथी कहते हैं कि इनमें जो बड़ा बीजक है, उसे स्वयं कबीर साहब ने काशिराज से कहा था; दूसरे बीजक को भग्गूदास नामक कबीर के एक शिष्य ने संग्रह किया है। यह दूसरा बीजक ही अधिक प्रचलित है। इसमें स्वमत-प्रतिपादन की अपेक्षा अपर धर्म्मों पर आक्रमण और आक्षेप ही अधिक हैं। यह भग्गूदास भी कबीरपंथ की द्वादश शाखाओं में से एक शाखा का प्रवर्त्तक है। इसके परंपरागत शिष्य धनौती नामक ग्राम में रहते हैं।

श्रीमान् वेसकट कहते हैं—"बीजक कबीर साहब की शिक्षा का प्रामाणिक ग्रंथ मान लिया गया है। यह संभवतः १५७० ई० में या सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुन द्वारा नानक की शिक्षा आदि-ग्रंथ में लिखे जाने के बीस वर्ष पहले लिखा गया था। बहुत से वचन जो आदि ग्रंथ में कबीर के कथित माने जाते हैं, बीजक में भी पाए जाते हैं।" क. ऐ. क., पृष्ठ. ७

एक दूसरे बीजक की कई छपी आवृत्तियाँ हैं। उनमें से दो, जो अधिक प्रसिद्ध हैं, सटीक हैं। एक के टीकाकार रीवाँ

के महाराज विश्वनाथसिंह और दूसरे के नागझारी जिला बुरहानपुर निवासी कबीरपंथी साधु पूरनदास हैं, जो सन् १८७० ई० में जीवित थे। वैप्टिस्ट मिशन, मुँगेर के रेवरेंड-प्रेमचंद ने भी इसकी एक आवृत्ति कलकत्ते में सन् १८८० ई० में छपाई थी। इन ग्रंथों के अतिरिक्त आगम और बानी इत्यादि भिन्न भिन्न नामों की कुछ और स्फुट कविताएँ भी पाई जाती हैं।

श्रीमान् वेस्कट ने अपने ग्रंथ में कबीर पंथ के ८४ ग्रंथों के नाम लिखे हैं। इन ग्रंथों में कबीर कसौटी और कबीर मनसूर आदि आधुनिक ग्रंथों के भी नाम हैं, जिनका रचना-काल अर्द्धशताब्दी से कम है। इसके अतिरिक्त उन्होंने तीन सटीक बीजकों को भी पृथक् पृथक् गिना है। चौरासी अंग की साखी जो एक ग्रंथ है, उसके सतसंग का अंग, समदरसी का अंग, आदि बारह अंगों की साखियों को अलग अलग लिखकर उनको बारह पुस्तकें माना है, इसीसे उनकी नामावली लंबी हो गई है। उसमें मूसाबोध, महम्मदबोध, हनुमानबोध आदि कतिपय ऐसे ग्रंथों के नाम हैं, जो सर्वथा कल्पित हैं; क्योंकि उक्त महोदयों और कबीर साहब के समय में कितना अंतर है, यह विद्वानों को अविदित नहीं है। उन्होंने अमरमूल आदि दो एक प्राचीन ग्रंथों का नाम भी अपनी सूची में लिखा है और सुखनिधान आदि कई ऐसे ग्रंथों के नाम भी लिखे हैं, जो उक्त २१ ग्रंथों के अंतर्गत हैं।

प्रोफेसर एच. एच. विलसन ने अपने "रिलिजन आफ दी हिंदूज" नामक ग्रंथ के प्रथम खंड, पृष्ठ ७६-७७ में कबीर साहब के निम्नलिखित ग्रंथों के ही नाम लिखे हैं। यह कहना कि ये ग्रंथ उक्त २१ ग्रंथों के ही अंतःपाती हैं, बाहुल्य मात्र है।

१—आनंद रामसागर, २—बलख की रमैनी, ३—चाँचर,

४—हिंडोला, ५—झूलना, ६—कबीरपाँजी, ७—कहरा, ८—शब्दावली।

प्रशंसित महाराज रीवाँ ने अपनी टीका में कबीर साहब विरचित निम्नलिखित ग्रंथों के नाम लिखे हैं; और इनमें से प्रायः शब्द और साखियों को उद्धृत करके प्रमाण दिया है। किंतु ज्ञात होता है कि इन ग्रंथों की गणना "खास ग्रंथ" में नहीं है; क्योंकि ये उनके अतिरिक्त हैं।

१—निर्भय ज्ञान, २—भेद सार, ३—आदि टकसार, ४—ज्ञान सागर, ५—भवतरण।

मुझे कबीर साहब के मौलिक ग्रंथों में से केवल दो ग्रंथ मिले, एक बीजक और दूसरा चौरासी अंग की साखी। इनके अतिरिक्त बेलवेडियर प्रेस की छपी कबीर शब्दावली, चार भाग, ज्ञानगुदड़ी व रेखते, और साखी संग्रह नाम की पुस्तकें भी हस्तगत हुईं। बेलवेडियर प्रेस के स्वामी 'राधास्वामी मत' के हैं। इस मतवाले कबीर साहब को अपना आदि आचार्य्य मानते हैं; इसलिये इस प्रेस की छपी पुस्तकों के बहुत कुछ प्रामाणिक होने की आशा है। उन्होंने भूमिका में इस बात को प्रकट भी किया है। गुरु नानक संप्रदाय के 'आदि ग्रंथ' में भी कबीर साहब के बहुत से शब्द और साखियाँ संगृहीत हैं। मैंने उक्त दो मौलिक और इन्हीं सब संगृहीत ग्रंथों के आधार पर अपना संग्रह प्रस्तुत किया है।

इन ग्रंथों की अधिकांश कविता साधारण है। सरस पद्य कहीं कहीं मिलते हैं। हाँ, जहाँ कबीर साहब पूरबी बोलचाल और चलते गीतों में अपने विचार प्रकट करते हैं, वहाँ की कविता निस्संदेह अधिक सरस है। किंतु छंदोभंग इन सब में इतना अधिक है कि जी ऊब जाता है। जहाँ तहाँ

कविता में अश्लीलता भी है। कोई कोई कविताएँ तो इतनी अश्लील हैं कि मैं उन्हें यहाँ उठा तक नहीं सकता। यदि आप लोग ऐसी कविताएँ देखना चाहें, तो नमूने के लिये साखीसंग्रह के पृष्ठ १४८ का छठा, पृष्ठ १७५ का २६, २७, २८ और पृष्ठ १८२ का अंतिम दोहा देखिए। उनकी कविता में असंयत-भाषिता भी दृष्टिगत होती है। वे कहते हैं—

बोली एक अमोल है जो कोई बोलै जानि।
हिये तराजू तौलि कै तब मुख बाहर आनि॥

कबीर बीजक, पृष्ठ ६२३

साधु भया तो क्या भया जो नहिं बोल विचार।
हतै पराई आतमा लिये जीभ तलवार॥

कबीर बीजक, पृष्ठ ६३१

साधु लच्छन सुगुनवंत गंभार है वचन लौलीन भाखा सुनावै।
फूहरी पातरी अधम का काम है राँड़ का रोवना भाँड़ गावै॥

ज्ञानगुदड़ी, पृष्ठ ३२

किंतु खेद है कि जब वे विरोध करने पर उतारू होते है, तब इन बातों को भूल जाते हैं। यह दोष उनकी कविता में प्रायः मिलता है। नमूने के लिये साखी संग्रह पृष्ठ १८७ का दोहा १९, २० और ज्ञानगुदड़ी तथा रेखते नामक ग्रंथ का रेखता ६० देखिए। मैंने इस प्रकार की कविताओं से अपने संग्रह को बचाया है; और जहाँ शब्दों के हेर फेर या ह्रस्व दीर्घ करने से काम चल गया, वहाँ छंदोभंग भा नहीं रहने दिया है।

कबीर साहब के ग्रंथों का आदर कविता-दृष्टि से नहीं, विचार-दृष्टि से है। उन्होंने अपने विचार दृढ़ता और कट्टर-पन के साथ प्रकट किए हैं। उनमें स्वाधीनता की मात्रा भी अधिक झलकती है।

इन ग्रंथों में बहुत से कूट शब्द भी हैं। कबीर साहब का उलटा प्रसिद्ध है। चूहा बिल्ली को खा गया, लहर में समुद्र डूब गया, प्रायः ऐसी उलटी बातें आपको इन्हीं शब्दों में मिलेंगी। इन शब्दों का लोगों ने मनमाना अर्थ किया है। ऐसे शब्दों का दूसरा अर्थ हो ही क्या सकता है। प्रायः लोगों को आश्चर्य्य में डालने के लिये ही ऐसे शब्दों की रचना होती है। मैं समझता हूँ कि कबीर साहब का भी यही उद्देश्य था। उन्होंने ऐसे शब्द बनाकर लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया है; क्योंकि धर्म्म का गूढ़ रहस्य जानने के लिये संसार उत्सुक है। ऐसे दो शब्द नीचे लिखे जाते हैं।

देखो लोगो हरि की सगाई, माय धरै पुत धिय संग जाई।
सासु ननद मिल अदल चलाई, मादरिया गृह बेटी जाई॥
हम बहनोई राम मोर सारा, हमहिं बाप हरि पुत्र हमारा।
कहै कबीर हरी के बूता, राम रमें ते कुकुरी के पूता॥

कबीर बीजक, पृष्ठ ३९३

देखि देखि जिय अचरज होई, यह पद बूझै बिरला कोई।
धरती उलटि अकासहिं जाई, चींटा के मुख हस्ति समाई॥
बिन पवनै जहँ पर्वत उड़ै, जीव जंतु सब बिरछा बुड़ै।
सूखे सरवर उठै हिलोल, बिन जल चकवा करै कलोल॥
बैठा पंडित पढ़ै पुरान, बिन देखे का करै बखान।
कह कबीर जो पद को जान, सोई संत सदा परमान॥

कबीर बीजक, पृष्ठ ३९४

विद्वान् मिश्रबंधुओं ने 'मिश्रबंधुविनोद' के प्रथम भाग में कबीर साहब के ग्रंथों और उनकी रचना के विषय में जो कुछ लिखा है, वह नीचे अविकल उद्धृत किया जाता है—

"इस समय तक भाषा और भी परिपक्व हो गई थी। महात्मा कबीरदास ने उसका बहुत बड़ा उपकार किया।

इन्होंने कोई पचास ग्रंथ बनाए, जिनमें से ४६ का पता लग चुका है।"
—पृष्ठ ११३

"कविता की दृष्टि से इनकी उलटवांसी बहुत प्रशंसनीय है। इनकी रचना सेनापति श्रेणी की है। इन्होंने खरी बातें बहुत उत्तम और साफ साफ कही हैं और इनकी कविता में हर जगह सचाई की झलक देख पड़ती है। इनके ऐसे बेधड़क कहनेवाले कवि बहुत कम देखने में आते हैं। कबीर जी का अनुभव खूब बढ़ा चढ़ा था और इनकी दृष्टि अत्यंत पैनी थी। कहीं कहीं उनकी भाषा में कुछ गँवारूपन आ जाता है; पर उसमें उद्दंडता की मात्रा अधिक होती है।

"इनके कथन देखने में तो साधारण समझ पड़ते हैं, परंतु उनमें गूढ़ आशय छिपे रहते हैं। इन्होंने रूपकों, दृष्टांतों, उत्प्रेक्षाओं आदि से धर्म्म-संबंधी ऊँचे विचारों एवं सिद्धांतों को सफलतापूर्वक व्यक्त किया है।"

—पृष्ठ २५२, २५३

कबीर पंथ

इस पंथवाले युक्त प्रांत और मध्य भारत में अपनी संख्या के विचार से अधिक हैं। पंजाब, बिहार और दक्षिण प्रांत में भी कहीं कहीं ये लोग पाए जाते हैं। यद्यपि इनकी संख्या अन्य भारतवर्षीय संप्रदायों की अपेक्षा बहुत थोड़ी है, तथापि इनमें निम्नलिखित द्वादश शाखाएँ हैं—

१—श्रुत गोपालदास—इनके परंपरागत शिष्य काशी के कबीर चौरा, मगहर की समाधि और जगन्नाथ एवं द्वारका के मठों पर अधिकार रखते हैं। यह शाखा अपर शाखाओं की अपेक्षा प्रतिष्ठित मानी जाती है। दूसरी शाखावाले इसको प्रधान मानते हैं।

२—भग्गूदास—इनके परंपरागत शिष्य धनौती नामक गाँव में रहते हैं।

३—नारायणदास। ४—चूड़ामणिदास—ये दोनों धर्म्मदास नामक एक बनिए के बेटे थे, जो कबीर साहब के एक प्रधान शिष्य थे। धर्म्मदास जबलपुर के पास बंधो नामक एक गाँव में रहते थे। बहुत दिनों तक उनके वंश के लोग वहाँ के मठ के महंत होते रहे। परंतु नारायणदास के वंश में अब कोई न रहा। इधर चूड़ामणि-वंश के एक महंत ने एक कुचरित्रा स्त्री रख ली; इसलिये यह वंश भी अब गद्दी से उतार दिया गया।[1]

१—कबीर पंथ की द्वादश शाखाओं के विषय में यहां जो कुछ लिखा गया है, वह बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् अक्षयकुमार दत्त के ग्रंथ भारतवर्षीय उपासक संप्रदाय, (देखो इस ग्रंथ का प्रथम भाग, पृष्ठ ६४, ६९, ६६) और प्रोफेसर बी. बी. राय के ग्रंथ 'संप्रदाय' (देखो पृष्ठ ७४, ७९, ७६) के आधार पर लिखा गया है। इन शाखाओं के विषय में मुझको एक लेख कबीरधर्म्मनगर, जिला रायपुर (मध्य प्रदेश) निवासी कबीरपंथी साधु युगलानंद बिहारी का मिला है। उसको भी मैं नीचे अविकल उद्धृत करता हूँ—

"मध्यप्रदेश, बिहार, युक्तप्रांत, गुजरात और काठियावाड़ में कबीरपंथियों की संख्या विशेष है। हां, पंजाब, महाराष्ट्र, मैसूर, मद्रास इत्यादि प्रांतों में ये लोग थोड़े पाए जाते हैं।

"इसमें अनेक शाखाएँ वर्त्तमान हैं, जिनमें धर्म्मदास के पुत्रों में से—

(१) वचन चूड़ामणि के वंशज की शाखा ही प्रधान है। इस समय इनका मुख्य स्थान कबीरधर्म्मनगर, जिला रायपुर, सी. पी. में है। धर्म्मदास और कबीर के प्रश्नोत्तर में मिले हुए ग्रंथों में कालीधंगी के नाम जिस प्रकार लिखे हैं, उन्हीं नामों से अब तक इस शाखा का क्रम बराबर

५—जग्गूदास—कटक में इनकी गद्दी है और इनके शिष्य उसी ओर हैं।

६—जीवनदास—इन्होंने सत्तनामी संप्रदाय स्थापित किया। कोटवा, जिला गोंड़ा, में इनका स्थान है। इस स्थान के अधिकार में सात-आठ और गद्दियाँ हैं।

७—कमाल—ये बंबई नगर में रहते थे। इनके चेले योगी होते हैं। जनश्रुति है कि कमाल कबीर के पुत्र थे। कबीर साहब का निम्नलिखित दोहा स्वयं इसका प्रमाण है।

बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल।
हरि का सुमिरन छोड़ के घर ले आया माल॥

आदि ग्रंथ, पृष्ठ ७३८

८—टकसाली—यह बड़ौदा के निवासी थे और वहीं इनका मठ है।

९—ज्ञानी—यह सहसराम के निकटवर्ती मझनी ग्राम में रहते थे। इसी के आस पास उनकी कुछ शिष्य-मंडली है।

१०—साहेबदास—ये कटक में रहते थे। इनके चेले

चला आता है। इस समय इस शाखा के तेरहवें आचार्य्य श्री पं० दयानाम साहब गद्दी पर वर्त्तमान हैं।

"इस शाखा में पूर्व निर्मित नियम के अनुसार आचार्य्य के ज्येष्ठ पुत्र के अतिरिक्त कोई दूसरा आचार्य्य पद नहीं पा सकता; इसलिये इसमें सबको एक ही आचार्य्य के अधीन रहना पड़ता है। कबीरपंथियों में इस समय इसी शाखा की प्रधानता है। इसके बराबर उन्नत (इस समय) कोई दूसरी शाखा नहीं है।"

(२) नारायणदास—धर्मदास के बड़े पुत्र थे, गुरु की अवज्ञा करने से पिता के द्वारा त्याज्य हुए थे; तथापि उनका भी पंथ चलता है। पहले

और कबीरपंथियों की अपेक्षा कुछ निराली शिक्षा और विलक्षणता रखते हैं; इसलिये मूलपंथी कहलाते हैं।

११—नित्यानंद, १२—कमलानंद—ये दोनों दक्षिण में जा बसे और उधर ही इन्होंने अपनी शिक्षा का प्रचार किया।

इनके अतिरिक्त हंसकबीर, दानकबीर और मंगलकबीर नामक कबीरपंथियों की और कतिपय शाखाएँ हैं।

१९०१ की जनसंख्या (मर्दुमशुमारी) की रिपोर्ट में कबीर-पंथियों की संख्या ८४३१७१ लिखी गई है। मैं समझता हूँ, कुछ न्यूनाधिक यही संख्या ठीक है। इनमें अधिकांश नीच जाति के हिंदू हैं; उच्च वंश के हिंदू नाम मात्र हैं। गुरु भी इस पंथ के अधिकांश नीच वर्ण के ही हैं। त्यागी और गृहस्थ इन में भी हैं; पर गृहस्थों की ही संख्या अधिक है। ये सब हिंदू धर्म्म के ही शासन में हैं, और उसी की रीति और पद्धति को वर्त्तते हैं; केवल धार्मिक सिद्धांतों में कबीरपंथ का अनुसरण करते हैं; यहाँ तक कि अनेक ऐसे हैं जो हिंदू देवी-देवताओं

ये लोग बांधवगढ़ में रहते थे; किंतु वचन चूड़ामणि के वंशजों के समान विशेष नियम नहीं होने से इनमें कई आचार्य्य हो गए। इस शाखा के लोग परस्पर विरोध के कारण बांधवगढ़ छोड़कर भिन्न भिन्न स्थानों में रहकर गुरुआई करते हैं।

(३) जागू पंथी—इनकी गद्दी विहार प्रांत के मुजफ्फरपुर जिले के नए डिवीजन हाजीपुर के निकट विद्दूपुर नामक ग्राम में है। इस पंथ में यही स्थान प्रधान माना जाता है। यह ओ. टी. रेलवे का स्टेशन है।"

(४) सत्यनामी पंथ—इस नाम के तीन पंथ चलते हैं। १—कोटवा (अवध में), २—फर्रुखाबाद में; ये लोग साधु के नाम से प्रसिद्ध हैं। ३—मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ में भंडारा नामक स्थान में; इसमें प्रायः चमार ही होते हैं।

तक को पूजते हैं। त्यागी निस्संदेह अपने को हिंदू धर्म्म के सिद्धांतों से अलग रखते हैं; और वे हिंदू धर्म्म के क्रिया-कलाप में नहीं फँसना चाहते; किंतु यतः उनका यह संस्कार बना है कि वे हिंदू हैं, इसलिये वे अनेक अवसरों पर हिंदू क्रिया-कलाप में फँसे भी दृष्टिगत होते हैं। परंतु यह सत्य है कि कबीरपंथी साधु हिंदू समाज से एक प्रकार पृथक् से रहते हैं, उसमें उनकी यथेष्ट प्रतिपत्ति नहीं। इनका अपर हिंदू धर्म-संप्रदायों से कुछ वैमनस्य और द्वेष सा रहता है।

धर्मसंकट

कबीर साहब का धर्म्म-सिद्धांत क्या था, मैं समझता हूँ, यह अभ्रांत रीति से नहीं बतलाया जा सकता। मैं इसकी मीमांसा के लिये तत्पर होकर धर्मसंकट में पड़ गया हूँ। उनके सिद्धांतों के जानने के साधन उनकी शब्दावली और साखियाँ हैं; परंतु वे हम लोगों तक वास्तविक रूप में नहीं पहुँचतीं। यह बतलाना भी कठिन है कि कौन शब्द उनका रचा है, कौन नहीं। श्रीमान् वेसकट का निम्नलिखित वाक्य, जिसे मैं ऊपर लिख आया हूँ, आप लोग न भूले होंगे।

"यह विचारना कठिन है कि वे ठीक उन्हीं शब्दों में लिखी गई हैं, जो गुरु के मुख से निकले हैं। और यह बात तो और भी कठिनता से मानी जा सकती है कि उनमें और शब्द नहीं मिला दिए गए हैं।"

एक दूसरे स्थान पर वह कहते हैं—

"कम से कम यह बात मानने के लिये हमको कोई स्वत्व नहीं है कि कबीर की शिक्षा वही शिक्षा है कि जिसको कबीर-पंथ के महंत आजकल देते हैं।"

—कबीर एंड दी कबीर पंथ, पृष्ठ ४६

इन वाक्यों से क्या सिद्ध होता है? यही कि उनकी रचनाओं में बहुत कुछ काट छाँट हुई है और अब तक हो रही है। जो बीजक ग्रंथ आजकल अधिकता से प्रचलित है, और जो कबीरपंथ का सब से प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है, वह भागूदास का प्रस्तुत किया हुआ है। इस भागूदास के विषय में रीवाँ-नरेश महाराज विश्वनाथसिंह लिखते हैं—

"भागूदास बीज़क लै भागे हैं, सो बघेलवंश-विस्तार में कबीर ही जी कहि दियो है,—

भागूदास कि खबरि जनाई। लै चरणामृत साधु पियाई॥
कोउ आव कह कलि जरि गयऊ। बीजक ग्रंथ चोराय लै गयऊ॥
सतगुरु कह वह निगुरा पंथी। कहा भयो लै बाजक ग्रंथी॥
चोरी करि वह चोर कहाई। काह भयो बड़ भक्त कहाई॥"

कबीर बीजक पृष्ट, २६.

जिस भागूदास की यह व्यवस्था है, उसके हाथ में पड़कर बीजक की क्या दशा हुई होगी, इसे ईश्वर ही जाने। आगे चलकर महाराज ने लिखा है कि इसका वास्तव में नाम तो भगवानदास था, पर इस प्रकार पुस्तक लेकर भागने से ही कबीर साहब ने इसका नाम भागूदास रखा। इन बातों से बीजक की प्रामाणिकता में कितना संदेह होता है, इस बात का उल्लेख व्यर्थ है।

प्रायः कबीरपंथियों से सुना जाता है कि कबीर साहब के ग्रंथों में जो वेद-शास्त्र अथवा अवतारों के विरुद्ध बातें पाई जाती हैं, या असंगत भाव से खंडन और आक्षेप देखा जाता है, वास्तव में वह उनके किसी शिष्य की ही करतूत है। जो हो, परंतु भागूदास की कथा इस विचार को दृढ़ करती है। कबीर साहब की परलोकयात्रा के पश्चात् ग्रंथों के

संगृहीत होने से इस प्रकार का अवसर हाथ आना असंभव नहीं। यहाँ तक संदेह होता है कि जब कबीर साहब के समय में ग्रंथ संगृहीत हुए ही नहीं थे, तो भागूदास किस ग्रंथ को ले भागे। परंतु सोचने की बात है कि यदि कुछ शब्द पहले संगृहीत न होते, तो ग्रंथ प्रस्तुत कैसे होते। ज्ञात यह होता है कि कागज के नाना टुकड़ों पर अथवा अशृंखल अवस्था में जो लेख इत्यादि थे, उन्हीं को लेकर भागूदास भागे।

एक कबीरपंथी संत की गुरुभक्ति आपने सुनी। अब एक पूरनदास नामक साधु की लीला देखिए। आपने कबीर बीजक पर टीका लिखी है। इस टीका में आपने कबीर साहब के इस वाक्य को कि "मन मुरीद संसार है गुरु मुरीद कोई साध" सिद्ध कर दिया है। श्रीमान् वेसूकट कहते हैं—"यह बात कि कबीर जोलाहा और एकेश्वर-वादी थे, अबुलफजल ने भी मानी है, कि जिसके प्रतिकूल किसी ने कुछ नहीं कहा"।[1] परंतु कदाचित् उन्हें यह ज्ञात नहीं हुआ कि पूरनदास ने उनके प्रतिकूल कहा है। आपने बीजक की टीका लिखकर और उसके शब्दों का मनमाना अर्थ करके यह प्रतिपादित कर दिया है कि कबीर साहब एकेश्वर-वादी नहीं, किंतु कुछ और थे। कुछ प्रमाण लीजिए—

"साखी—अमृत केरी मोटरी सिर से धरी उतार।
जाहि कहौं मैं एक है सो मोहि कह दुइ चार ॥१२२॥

टीका गुरुमुख—इस संसार ने विचार की मोटरी सिर से उतार धरी, कोई विचार करता नहीं, जाको मैं कहता हूँ कि एक जीव सत्य है, और सब मिथ्या भ्रम है, सो मेरे को

१—देखो कबीर एँड दी कबीर पंथ, पृष्ठ ६८

दुइ चार कहता है—एक ईश्वर, एक जीव, दो ब्रह्मा, विष्णु महेश, और देवी देवता ये बताते हैं।"

—सटीक बीजक पूरनदास, पृष्ठ ५८४

"साखी—पाँच तत्व का पूतरा युक्ति रची मैं कीव।
मैं तोहि पूछों पंडिता शब्द बड़ा की जीव ॥८२॥

टीका मायामुख—पाँच तत्त्व का पूतरा युक्ति से रचि के मैंने पैदा किया, जीव पुतले मैंने पैदा किए, इस प्रकार वेद में माया ने कहा, सोई सब पंडित लोग भी कहते हैं।

गुरुमुख—ताते गुरु पूछते हैं कि पंडित तुमने वेद का शब्द माना, और कहने लगे कि ब्रह्म बड़ा कि ईश्वर बड़ा जाने सब संसार पैदा किया, परंतु अपने हृदय में विचार के देखो कि शब्द बड़ा कि जीव। अरे जो जीव न होता तो वेद आदिक नाना शब्द कौन पैदा करता और ब्रह्म, ईश्वरादि आध्यारोप कौन करता। ताते जीव ही सब ते बड़ा जाने, सब ही को थापा। शब्द, ब्रह्म आदि उपाधि सब मिथ्या जीव की करतूत, जीव सब का करनेवाला आदि।"

—सटीक बीजक पूरनदास, पृष्ठ ८२८

जिस राम शब्द के विषय में श्रीमान् वेस्कट कबीर साहब की यह अनुमति प्रकट करते हैं—

"कबीर साहब का विचार है कि दो अक्षर का शब्द राम इस संसार में उस एक अनिर्वचनीय सत्य का सब से अधिक निकटवर्ती है।

—कबीर एंड दी कबीर पंथ, पृष्ठ ७५

उसके विषय में पूरनदास की कल्पना सुनिए—

काला सर्प सरीर में खाइनि सब जग झारि।
बिरले ते जन बाँचिहैं रामहिं भजैं बिचारि ॥१०१॥

इस साखी के रामहिं भजै विचारि, का अर्थ उन्होंने यह किया है—"इस जगत में जाको विचाररूपी अमृत प्राप्त भया, ते सर्प के जहर से बचे। एक राम ऐसा जो वेद ने अन्वय किया था, सो उससे बचे, भाग के न्यारे हुए।"=सटीक बीजक पूरनदास पृष्ठ ४६८। 'भजै' के वास्तविक अर्थ स्मरण करने या गुणानुवाद गाने के स्थान पर उन्होंने भाजना अर्थात् भागना किया है। काशी छोड़कर मगहर जाने का जो प्रसिद्ध और ऐतिहासिक शब्द कबीर साहब का है, जरा उसके कतिपय शब्दों का अर्थ देखिए। "त्योंहि मरन होय मगहर पास" इसका अर्थ सुनिए। "मग कहिए रास्ता, हर कहिए ज्ञान, सो मगहर ज्ञान मार्गता में मरन होय, लौलीन होय" (पृष्ठ २४५)। "अंते मरै तो राम लजावै" का अर्थ वे यों करते है—"जहाँ से जीव का स्फुरण हुआ सो अधिष्ठान छोड़कै अंते जो नाना प्रकार की स्वर्ग भोगादि वासना अथवा जगत आदि मोहवासना में जो मरा, सो बंधन में परा। राम कहिए जीव और लज्जा कहिए बंधन (पृष्ठ २३५)।" निदान इसी प्रकार उन्होंने समस्त ग्रंथ का अर्थ उलट दिया है। इस प्रसिद्ध गुरुमुख शब्द को उन्होंने मायामुख बना दिया है; अर्थात् गुरु की कही हुई बात को माया का कहा हुआ बतलाया है। यों ही शब्द के चार चरणों में से कहीं यदि एक चरण को मायामुख, बनाया है, तो दूसरे को गुरुमुख, कहीं तीसरे को मायामुख और चैाथे को गुरुमुख। कहीं पूरा शब्द गुरुमुख, कहीं आधा, कहीं तिहाई। कहीं पूरा शब्द मायामुख, कहीं चैाथाई, कहीं केवल एक चरण। मायामुख और गुरुमुख ही नहीं, जीवमुख आदि की कल्पना भी शब्दों में की गई है। उन्हें वाच्यार्थ से, कवि के भाव से, अन्वय से, शब्दों के उचितार्थ से कुछ प्रयोजन नहीं। वे

किसी न किसी प्रकार प्रत्येक शब्द और साखी को अपने विचार के अनुकूल कर लेते हैं, कबीर साहब के लक्ष्य की कुछ परवाह नहीं करते। जहाँ इस प्रकार खींचातानी है, वहाँ कबीर साहब के सिद्धांत का ज्ञान दुरूह क्यों न होगा?

वेलवेडियर प्रेस में मुद्रित 'ज्ञानगुदड़ी व रेख्ता' नाम की पुस्तक की भूमिका के प्रथम पृष्ठ में लिखा गया है—

"पर कितने ही पद पुराने प्रामाणिक हस्तलिखित ग्रंथों से ऐसे भी हैं जिनमें राम नाम की महिमा गाई गई है। इस नाम का मतलब औतारस्वरूप श्रीरामचंद्रजी से नहीं है, बल्कि ब्रह्मांड की चोटी (शून्य) धुन्यात्मक शब्द 'राँ' से है"।

श्रीमान् वेसूकट भी यही लिखते हैं—

"ऐसे वाक्यों के राम शब्द से कबीर का अभिप्राय परब्रह्म से है, न कि विष्णु के अवतार से। क्योंकि वे बीजक में लिखते हैं कि सत्य गुरु ने कभी दशरथ के घर में जन्म नहीं लिया।"[1]

ऐसा विचार होने पर भी हम देखते हैं कि कबीर साहब के शब्दों में से पौराणिक नामों के निकालने की चेष्टा प्रथम से ही होती आई है, और अब भी हो रही है। कुछ प्रमाण भी लीजिए—

गुरु नानक साहब का आदि-ग्रंथ साढ़े तीन सौ वर्ष का प्राचीन है। यह ग्रंथ रामावतों का नहीं है कि उसमें साग्रह राम शब्द रखने की चेष्टा की गई हो, वरन् वाह गुरु जाप करनेवालों का है। वह प्रामाणिक कितना है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। उसमें कबीर साहब के निम्नलिखित दोहों में राम शब्द पाया जाता है—

१—देखो कबीर ऐंड दी कबीर पंथ पृष्ठ ५।

कबीर कसौटी राम का झूठा टिकै न कोय।
राम कसौटी सो सहै जो मर जीवा होय ॥ पृ० ७३५
सपनेहूँ बरड़ाइ कै जेहि मुख निकसै राम।
वाके पग की पानही मेरे तन को चाम ॥ पृ० ७३६
कबीर कूकर राम को मोतिया मेरा नाउँ।
गले हमारे जेवरी जहँ खींचैं तहँ जाउँ ॥

वेलेवेडियर प्रेस में छपी 'साखीसंग्रह' नामक पुस्तक में इन दोहों में राम के स्थान पर 'नाम' पाया जाता है (देखो-पृष्ठ २१ का १२, व ९६ का ३३, व १५८ का १० दोहा)। ऐसे ही उक्त प्रेस की छपी पुस्तकों में प्रायः हरि के स्थान पर गुरू, राजा राम के स्थान पर 'परमपुरुप' इत्यादि नाम पाए जाते हैं। संभव है कि जिस प्रति से उन्होंने अपना संग्रह छापा है, उसी में ऐसा पाठ हो। परंतु ऐसी चेष्टा होती आई है, यही मेरा कथन है। उक्त दोनों में राम शब्द से जो भाव और वाच्यार्थ की सार्थकता एवं सुंदरता है, वह नाम शब्द से नहीं। तथापि राम शब्द रखना उचित नहीं समझा गया, इसका कारण अवतार संबंधी नामों से घृणा छोड़ और क्या हो सकता है।

केवल अवतारों के नामों का ही परिवर्त्तन नहीं मिलता, मुझे वाक्यों, शब्दों और भजनों अथवा साखियों के पदों एवं चरणों में भी न्यूनाधिक्य और अंतर मिला है। एक शब्द को मैं तीन स्थानों से उठाता हूँ। आप उसमें हुए परिवर्त्तनों को देखिए।

गाउ गाउ री दुलिहनी मंगलचारा।
मेरे गृह आये राजाराम भतारा ॥
नाभि कमल में वेदी रच ले ब्रह्मज्ञान उच्चारा।
राम राइ सो दूलह पायो अस बड़ भाग हमारा ॥

सुर नर मुनि जन कौतुक आये कोटि तैंतीसो जाना।
कह कबीर मोहिं ब्याहि चले हैं पुरुष एक भगवाना॥

आदि ग्रंथ, पृष्ठ २६१

दुलहिन गावो मंगलचार। हमरे घर आये राम भतार॥
तन रति कर मैं मन रति करिहौं पाँचो तत्त्व बराती।
रामदेव मोंहि ब्याहन ऐहैं मैं जोवन मदमाती॥
सरिर सरोवर वेदी करिहौं ब्रह्मा वेद उचारा।
रामदेव सँग भाँवरि लैहौं धनि धनि भाग हमारा॥
सुर तैंतीसो कौतुक आये मुनिवर सहस अठासी।
कह कबीर हम ब्याहि चले हैं पुरुख एक अविनासी।

कबीर बीजक, पृष्ठ ४३१

दूलहिन गावो मंगलचार। हम घर आये परमपुरुष भरतार।
तन रति करि मैं मन रति करिहौं पाँचो तत्त्व बराती।
गुरुदेव मेरे पाहुन आये मैं जोवन में माती॥
सरीर सरोवर वेदी करिहौं ब्रह्मा वेद उचार।
गुरुदेव सँग भाँवरि लैहों धन धन भाग हमार॥
सुर तैंतीसो कौतुक आये मुनिवर सहस अठासी।
कह कबीर हम ब्याहि चले हैं पुरुष एक अविनासी॥

कबीर शब्दावली, प्रथम भाग, पृष्ठ ९, १०

इस प्रकार विरुद्धाचरण, शब्द, वाक्य और अर्थों में लौट-फेर, अवतार संबंधी नामों के बहिष्कार इत्यादि का प्रभूत प्रमाण होते हुए भी श्रीमान् वेसकट कहते हैं—

"फिर भी इस बात का विश्वास करने के लिये दलीलें हैं कि कबीर की शिक्षाएँ धीरे धीरे अधिकतर हिंदू आकार में ढल गई हैं"—कबीर एंड दी कबीर पंथ, पृष्ठ ८८

उनका यह कथन कहाँ तक युक्तिसंगत है, इसको विद्वान् लोग स्वयं विचारें।

धर्म्मसिद्धांत

जो हो, चाहे कबीर की शिक्षाएँ अधिकतर हिंदू आकार
में धीरे धीरे ढल गई हों, चाहे अहिंदू भावापन्न हो गई हों,
परंतु प्राप्त रचनाओं को छोड़कर उनके धर्म्म-सिद्धांतों के
निर्णय का दूसरा मार्ग नहीं है। यह सत्य है, जैसा कि
श्रीमान् वेस्कट लिखते हैं कि—

"उनकी शिक्षाओं का स्पष्टीकरण चुनी बातों में से भी
चुनी बातों के आधार पर अवश्य ही सदोष होगा; और यह
भी संभव है कि वह भ्रांत बनावे, यदि वह उनके समस्त
सिद्धांतों की व्याख्या समझी जाय"।

कबीर ऐंड दी कबीर पंथ, पृष्ठ ४७

किंतु यह भी वैसा ही सत्य है कि प्राप्त रचनाओं में से
मौलिक और कृत्रिम रचनाओं का पृथक् करना अत्यंत
दुर्लभ, वरन् असंभव है। उनमें परस्पर विरुद्ध विचार इस
अधिकता से हैं कि उनके द्वारा किसी वास्तविक सिद्धांत
का अभ्रांत रूप से निर्णय हो ही नहीं सकता। हाँ, इस पंथ
का अवलंबन किया जा सकता है कि इन रचनाओं में जो
विचार व्यापक भाव से बारंबार प्रकट और प्रतिपादित
किए गए हैं, उन्हें मुख्य और उसी विषय के दूसरे विचारों
को गौण मान लिया जाय। पक्क और अपक्क अवस्था के
विचारों में अंतर हुआ करता है। अनुभव, ज्ञान-उन्मेष और
वयस मनुष्य के विचारों को बदलते हैं। कबीर साहब इस
व्यापक नियम से बाहर नहीं हो सकते; इसलिये उनके
विचारों में भी अंतर पड़ जाना असंभव नहीं। निदान इसी
सूत्र की सहायता से मैं कबीर साहब के धर्म्मसिद्धांतों के
निरूपण का प्रयत्न करता हूँ।

मेरा विचार है कि कबीर साहब एकेश्वरवाद, साम्यवाद, भक्तिवाद, जन्मांतरवाद, अहिंसावाद और संसार की असारता के प्रतिपादक, एवं मायावाद, अवतारवाद, देववाद, हिंसावाद, मूर्तिपूजा, कर्म्मकांड, व्रत-उपवास, तीर्थयात्रा और वर्णाश्रम धर्म्म के विरोधी हैं। वे हिंदुओं और मुसल्मानों के धर्म्मग्रंथों और धर्म्मनेताओं के कट्टर प्रतिवादी हैं और प्रायः इनके धर्म्मयाजकों पर बुरी तौर से आक्रमण करते हैं। कहीं कहीं इस आक्रमण की मात्रा इतनी कलुषित और अश्लील है, जो समुचित नहीं कही जा सकती।

हमने कबीर साहब को ऊपर 'एकेश्वरवाद' का प्रतिपादक कहा है, किंतु उनका एकेश्वरवाद कुछ भिन्न है। उनका प्रभु विलक्षण है। उनके मुहाविरे के अनुसार एकेश्वर शब्द ठीक नहीं है; क्योंकि उनका प्रभु ईश्वर, ब्रह्म, पारब्रह्म, निर्गुण, सगुण, सब के परे है। इस प्रभु को वे एक स्थान विशेष 'सत्यलोक' का निवासी मानते हैं और उसके लक्षण वे ही बतलाते हैं, जो वैष्णव ग्रंथों में सगुण ब्रह्म के बतलाए गए हैं। वे कहते हैं कि वह सत्य गुरु के प्रसाद से केवल भक्ति द्वारा प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उसकी प्राप्ति का और कोई साधन वे नहीं बतलाते। (देखो, शब्द १६—२४)

वे उसका परिचय प्रायः राम शब्द द्वारा देते हैं; किंतु अपनी रचनाओं में हरि, नारायण, सारंगपानी, समरथ, कर्त्ता, करतार, ब्रह्म, पारब्रह्म, निरच्छर, सत्यनाम, मुरारि इत्यादि शब्दों का प्रयोग भी उसके लिये करते हैं। अपना रक्खा हुआ उसका 'साहब' नाम उन्हें बहुत प्यारा है। इस ग्रंथ के अधिकांश पद्य इसके प्रमाण हैं।

साम्यवाद, अहिंसावाद, जन्मान्तरवाद, भक्तिवाद और संसार की अनित्यता का निरूपण उन्होंने सर्वत्र किया है।

इस ग्रंथ के साम्यवाद, उद्बोधन, उपदेश और चेतावनी, मिथ्याचार और संसार की असारता शीर्षक पद्यों में आप इन सिद्धांतों का उत्तम रीति से प्रतिपादन देखेंगे।

अवतारवाद के विषय में उनकी अनुमति आप इस ग्रंथ में शब्द ४—५ में देखेंगे। और भी स्थानों पर उनको अवतार-वाद का विरोध करते देखा जाता है; तथापि ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जिनमें अवतारवाद का प्रतिपादन है। निम्नलिखित शब्दों को देखिए—

प्रहलाद पठाये पढ़न शाल। संग सखा बहु लिये बाल। मोको कहा पढ़ावसि आल जाल। मेरी पटिया लिख देहु श्री गोपाल। नहिं छोड़ों रे बाबा राम नाम। मोहि और पढ़न सों नहीं काम। काढ़ि खरग कोप्यो रिसाय। तुझ राखनहारा मोहिं बताय। प्रभु थंभ तें निकसे कर बिसथार। हरनाकस छेद्यो नख बिदार। ओइ परम पुरुष देवादि देव। भगत हेत नरसिंघ भेव। कह कबीर को लखै न पार। प्रहलाद उधारे अनिक बार।—आदि ग्रंथ, पृष्ठ ६५२

राजन कौन तुम्हारे आवै। ऐसो भाव बिदुर को देख्यो वह गरीब मोहिं भावै। हस्ती देख भरम ते भूला श्रीभगवान न जाना। तुमरो दूध बिदुर को पानी अमृत कर मैं माना। खीर समान साग मैं पाया गुन गावत रैनि बिहानी। कबीर को ठाकुर अनँद बिनोदी जाति न काहु की मानी।—आदिग्रंथ, पृष्ठ ५९६

दर माँदे ठाढ़े दरबार। तुझ बिन सुरति करै को मेरी दर-सन दीजै खोल किवार। तुम धन धनी उदार तियागी स्रवनन सुनियत सुजस तुम्हार। माँगो काहि रंक सब देखों तुम ही ते मेरो निस्तार। जय देव नामा बिप्र सुदामा तिन कौ किरपा भइ है अपार। कह कबीर तुम समरथ दाते चार पदारथ देत न बार।—आदि ग्रंथ, पृष्ठ ४६२

इसके अतिरिक्त उनके पद्यों में सैकड़ों स्थानों पर रघुनाथ, रघुराय, राजाराम, गोविंद, मुरारि इत्यादि अवतार-संबंधी नामों का प्रयोग उनको अवतारवाद का प्रतिपादक बतलाता है। किंतु जिस दृढ़ता और व्यापक भाव से वे अवतारवाद का विरोध करते हैं, उसे देखकर मैं उनके विरोधमूलक विचार को ही मुख्य और दूसरे विचार को गौण मानता हूँ। एक और प्रकार से समाधान किया जाता है। वह यह कि जब वे परमात्मा का निरूपण करने लगते हैं, तब उस आवेश में अवतारों को साधारण मनुष्य सा वर्णन कर जाते हैं; किंतु जब स्वयं प्रेम में भरकर अवतारों के सामने आते हैं तब उनमें ईश्वर भाव ही प्रकट करते हैं। यह बात स्वीकार भी कर ली जाय, तो भी इस विचार में गौणता ही पाई जाती है।

मायावाद, देववाद, हिंसावाद, मूर्तिपूजा, कर्म्मकांड, व्रत-उपवास, तीर्थयात्रा, वर्णाश्रम धर्म्म के अनुकूल कुछ कहते उनको कदाचित् ही देखा जाता है। वे इन विचारों के विरोधी हैं। इस ग्रंथ की मायाप्रपंच और मिथ्याचार शीर्षक शब्दावली पढ़िए; उस समय आपको ज्ञात होगा कि किस प्रकार वे इन सिद्धांतों की प्रतिकूलता करते हैं।

विचार-परंपरा

श्रीमान् वेस्टकट कहते हैं कि संभवतः कबीर पंथ हमको एक ऐसा धर्म्म मिलता है, जिस पर हिंदू, मुसल्मान और ईसाई इन तीनों धर्म्मों का थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ा है।'

परंतु अब मैं देखता हूँ कि कबीर साहब को ईसाई

१—देखो कबीर एंड दी कबीर पंथ, प्रिफेस, पंक्ति [illegible]।

मजहब का ज्ञान तक नहीं था, तब यह बात कैसे स्वीकार की जा सकती है कि उनके पंथ पर ईसाई मत का भी कुछ प्रभाव पड़ा है। भारत के परम प्रसिद्ध बौद्ध धर्म्म से भी वे कुछ अभिज्ञ नहीं थे ; क्योंकि वे इस धर्म्म का भी किसी स्थान पर कुछ वर्णन नहीं करते हैं। वे जब चर्चा करते हैं, तब दो राहों की चर्चा करते हैं और कहते हैं कि कर्त्ता ने यही दो राहें चलाईं। यदि वे कोई तीसरी राह जानते, तो उसका नाम भी अवश्य लिखते। इसके अतिरिक्त वे और अवसरों पर भी इन्हीं दो राहों को सामने रखकर अपने चित्त का उद्गार निकालते हैं ; अन्य की ओर उनकी दृष्टि भी नहीं जाती। निम्नलिखित वचन इसके प्रमाण हैं—

"करता किरतिम बाजी लाई। हिन्दू तुरुक दुइ राह चलाई"।
—कबीर बीजक, पृष्ठ ३९१

"सन्तो राह दोउ हम डीठा। हिंदू तुरुक हटा नहिं मानै स्वाद सबन को मीठा"।—कबीर बीजक, पृष्ठ २१०

"अरे इन दोहुन राह न पाई। हिंदुअन की हिंदुआई देखी तुरकन की तुरकाई। कहैं कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई॥"—कबीर शब्दावली, प्रथम भाग, पृष्ठ ४८

अब रहे हिंदू और मुसलमान धर्म। पहले मैं यह देखूँगा कि कबीर पंथ, वैष्णवधर्म्म की एक शाखा मात्र है और उसी की विचार परंपरा और विशाल हिंदू धर्म्म के सिद्धांत उसमें ओतप्रोत हैं, या क्या ? तदुपरांत मुसलमान धर्म्म के प्रभाव की भी मीमांसा करूँगा।

१९०८ ईसवी में धर्म्मेतिहास की सार्वजनिक सभा में श्रीमान् ग्रियर्सन साहब ने 'भागवत धर्म्म' पर एक प्रबंध पढ़ा था। उसका सारमर्म्म 'प्रवासी' नामक बँगला पत्र के दशम

भाग, प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या ५३८, ५३९ में प्रकाशित हुआ है। उस सारमर्म्म में 'भागवत धर्म्म' के निम्नलिखित सिद्धांत बतलाए गए हैं—

१—भगवान एक हैं, उन्हीं से विश्व चराचर उत्पन्न हुआ है। अपना विशेष आदेश पालन करने के लिये उन्होंने कतिपय देवताओं को बनाया। किंतु जब इच्छा होती है तो, प्रयोजन होने पर पृथ्वी का पाप मोचन करने के लिये वे स्वयं धरा में अवतीर्ण होते हैं। भगवान को पितृ-रूप में स्वीकार करने के लिये भारतवर्ष भागवतों का ऋणी है।

२—इस धर्म्मवाले एक मात्र उस भगवान की ही भक्ति करते हैं। इस धर्म्म का यही एक विशेषत्व है। इस प्रकार सगुण ईश्वर की उपासना भागवतों से ही भारतवर्ष ने सीखी है।

३—प्रत्येक आत्मा ही परमात्मा से प्रसूत है। जो प्रसूत हुई है, वह अनंत काल तक स्वतंत्र रहेगी और उसका बार बार जन्म होगा। किसी कर्म्म या ज्ञान के द्वारा नहीं, केवल भक्ति के द्वारा जन्मपरिग्रह रुकता है। उस समय मुक्त आत्मा अनंत काल तक भगवान के चरणाश्रय में रहती है। इस प्रकार भारत को भागवतों ने ही आत्मा के अमरत्व की दीक्षा दी है।

४—भगवान के निकट सभी आत्माएँ समान हैं। मुक्ति-लाभ के लिये केवल उच्च जाति या शिक्षित श्रेणी ही विशेष रूप से अधिकारी है, यह ठीक नहीं। समाज के लिये जातिभेद मंगलकारक हो सकता है; परंतु भगवान की दृष्टि सभी पर समान है। भगवान को पिता स्वीकार कर लेने से स्वभावतः समस्त मानवों के प्रति भ्रातृभाव अंगीकृत हुआ। भारत ने इसे भी भागवतों से ही पाया।

अब इन सिद्धांतों के साथ कबीर साहब के एकेश्वरवाद, साम्यवाद, भक्तिवाद, जन्मांतरवाद और अहिंसावाद को मिलाइए, देखिए कहीं कुछ अंतर है। पहले जो मैं कबीर साहब के एकेश्वरवाद की व्याख्या कर आया हूँ, वह दूसरों को कुछ उलझन पैदा कर सकती है। परंतु वैष्णव उस एकेश्वरवाद से भली भाँति परिचित हैं। समस्त रामोपासक वैष्णव रामचंद्र को साकेतलोक का निवासी बतलाते हैं। साकेतलोक और उसके निवासी का वैष्णव वैसा ही वर्णन करते हैं, जैसा कबीर साहब ने सत्यलोक और उसके निवासी का किया है। प्रमाण लीजिए और अद्भुत साम्य अवलोकन कीजिए—

अयोध्या च परब्रह्म सरयू सगुणः पुमान्।
तन्निवासी जगन्नाथः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥ १॥
अयोध्यानगरी नित्या सच्चिदानंदरूपिणी।
यद्दशांशेन गोलोकः वैकुंठस्थः प्रतिष्ठितः॥ २॥

—वसिष्ठसंहिता (कबीर बीजक, पृ० ४)

कबीर पंथ और संत मतवाले अपने 'साहब' को चैतन्य देश का धनी कहते हैं। वशिष्ठसंहिता में भी साकेतलोक का लक्षण यही लिखा है—

यत्र वृक्ष-लता-गुल्म-पत्र-पुष्प-फलादिकं।
यत्किंचित् पक्षिभृंगादि तत्सर्वं भाति चिन्मयम्॥

—कबीर बीजक, पृष्ठ, २८

साकार, निराकार, परब्रह्म के परे रामचंद्र जी को वैष्णव भी मानते हैं। आनंदसंहिता के निम्नलिखित श्लोकों को देखिए—

स्थूलं चाष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम्।
परात्तु द्विभुजं रूपं तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥

आनंदो द्विभुजः प्रोक्तो मूर्त्तश्चामूर्त्त एव च ।
अमूर्त्तस्याश्रयो मूर्त्त परमात्मा नराकृतिः ॥

कबीर बीजक, पृष्ठ ३२

महारामायण में श्रीरामचंद्र को सत्यलोकेश ही लिखा है—

वाङ्मनो गोचरातीतः सत्यलोकेश ईश्वरः ।
तस्य नामादिकं सर्वं रामनाम्ना प्रकाश्यते ॥

—कबीर बीजक, पृष्ठ २४८

एक स्थान पर कबीर साहब ने भी कह दिया है कि उनका स्वामी 'साकेत' निवासी है। नीचे के पदों को देखिए—

जाय जाहूत में खुद खाविंद जहँ वहीं मकान 'साकेत' साजी ।
कहै कबीर हाँ भिश्त दोजख थके वेद कीताब काज़ी ॥

—कबीर बीजक, पृ० २६७

इसलिये जिस प्रभु की कल्पना कबीर साहब ने की है, वह वैष्णव विचार-परंपरा ही से प्रसूत है : वह वैष्णव धर्म्म के एकेश्वरवाद का रूपांतर मात्र है।

जब वैष्णव धर्म्म का यही विशेषत्व है कि वह एक मात्र भगवान् की ही भक्ति करना है (देखो सिद्धांत २) और जब श्रीमद्भागवत को उच्च कंठ से यह कहते सुनते हैं—

वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते ।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः ॥

जब वह यही कहता है कि किसी कर्म्म या ज्ञान के द्वारा नहीं, केवल भक्ति के द्वारा जन्मपरिग्रह सकता है (देखो सिद्धांत ३) और जब भक्ति की महिमा यों गाई जाती है—

हरिभक्तिं विना कर्म्म न स्यान्मोक्षमुक्तिकारणम् ।
न वा सिद्ध्येद् विवेकादि न ज्ञानं नापि मुक्तता ॥

तो मायावाद, शून्यवाद, कर्म्मकांड, तप-उपवास, तीर्थयात्रा आदि आप ही उपेक्षित हो गए। चतुर्थ सिद्धांत के

अनुसार ईश्वर की कृपादृष्टि के सब के समान अधिकारी हो जाने, और एक परमात्मा की संतान होने के कारण सब को भ्राता मान लेने पर, और भागवत के मुख से यह सुनकर कि "विप्राद्द्विषट् गुणयुतारविंदनाभ पादारविंदविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्" वर्णाश्रम धर्म्म भी अप्रधान हो जाता है। अहिंसावाद के विषय में गीता का यह गंभीर नाद श्रुतिगत होता है—'अहिंसा परमो धर्म्मः' अतएव कबीर साहब के सब सिद्धांत लगभग वे ही पाए गए, जो वैष्णव धर्म्म के हैं। निदान इस बात को प्रोफेसर बी. बी. राय भी स्वीकार करते हैं—

"अगर्चे इबादत के बारे में हिंदुओं के और और संप्रदायों के साथ कबीरपंथियों का कुछ भी तअल्लुक नहीं है, ताहम हिंदू मजहब से उनके मजहब के निकलने का काफी सबूत मिलता है। उनकी और पौराणिक वैष्णवों की तालीमात नतीजन् अनकरीब एकसाँ हैं"। (संप्रदाय, पृ० ६९,७०।) कबीर साहब की शिक्षा में दो बातें तो ऐसी हैं जिनका वैष्णव धर्म्म से कोई संबंध नहीं, वरन् उनकी यह शिक्षा उस धर्म्म के प्रतिकूल है। ये दोनों बातें अवतारवाद और मूर्तिपूजा की प्रतिकूलता हैं। अवतारवाद के अनुकूल ही उनकी शिक्षा में कुछ वचन मिलते भी हैं, और इसमें कोई संदेह नहीं कि गौण रूप से वे इसे स्वीकार करते हैं; परंतु मूर्तिपूजा के वे कट्टर विरोधी हैं। मेरा विचार यह है कि उनका यह संस्कार मुसलमान-धर्म्म-मूलक है। वैदिक काल से उपनिषद् और दार्शनिक काल पर्यंत आर्य्य-धर्म में भी कहीं अवतारवाद और मूर्तिपूजा का पता नहीं चलता, पौराणिक काल में ही इन दोनों बातों की नींव पड़ी है। अतएव यदि ऊँचे उठा जाय, तो कहा जा सकता है कि कबीर साहब ने प्राचीन

आर्य्य धर्म का अवलंबन करके ही अवतारवाद और मूर्तिपूजा का विरोध किया है; किंतु यह काम स्वामी दयानंद सरस्वती का था, कबीर साहब का नहीं। अपठित होने के कारण उनको वेदों और उपनिषदों की शिक्षाओं का ज्ञान न था; इसलिये इतनी दूर पहुँचना उनका काम न था। उनके काल में पौराणिक शिक्षा का ही अखंड राज्य था, जो अवतारवाद और मूर्त्तिपूजा की जड़ है। इसलिये यह अवश्य स्वीकार करना पड़ता है कि ये दोनों बातें उनके हृदय में मुसलमान धर्म के प्रभाव से उदित हुईं।

कबीर साहब जन्मकाल से ही मुसलमान के घर में पले थे, अपक्व वय तक उनके हृदय में अनेक मुसलमानी संस्कार परोक्ष एवं प्रत्यक्ष भाव से अंकित होते रहे। वय प्राप्त होने पर वे धर्म्मजिज्ञासु बनकर देश देश फिरे; बलख तक गए। उन्होंने अनेक मुसलमान धर्माचार्य्यों के उपदेश सुने। ऊँजी के पीर और शेख तकी में उनकी श्रद्धा होने का भी पता चलता है। इसलिये स्वामी रामानंद का सत्संग लाभ करने पर भी उनके कुछ पूर्व संस्कारों का न बदलना आश्चर्य्यजनक नहीं। जो संस्कार हृदय में बद्धमूल हो जाते हैं, वे जीवन पर्यंत साथ नहीं छोड़ते। अवतारवाद और मूर्त्तिपूजा का विरोध आदि कबीर साहब के कुछ ऐसे ही संस्कार हैं। स्वामी रामानंद की यह महत्ता अल्प नहीं है कि उन्होंने कबीर साहब के अधिकांश विचारों पर वैष्णव धर्म्म का रंग चढ़ा दिया।

स्वतंत्र पथ

श्रीमान् वेस्कट कहते हैं—"साधारणतः यह बात मान ली गई है कि समस्त बड़े बड़े हिंदू संस्कारों में कबीर

और तुलसीदास का प्रभाव उत्तरी और मध्य हिंदुस्तान की अशिक्षित जातियों में स्थायी रूप से अधिक है। सर विलियम हंटर ने बहुत उचित रीति से कबीरदास को पंद्रहवीं शताब्दी का भारतीय लूथर कहा है।"

—कबीर ऐंड दी कबीर पंथ, पृष्ठ १

यह बात सत्य है। वैष्णव धर्म ही संस्कारमूलक है; अतएव उस धर्म्म में दीक्षित होकर कबीर साहब में संस्कार-प्रवृत्ति का उदय होना आश्चर्यकर नहीं; किंतु उनकी यह प्रवृत्ति और बातों की अपेक्षा हिंदुओं और मुसल्मानों को एक कर देने की ओर विशेष थी; क्योंकि उस समय की हिंदुओं और मुसल्मानों की वर्द्धमान अशांति उन्हें प्रिय नहीं हुई। श्रीमान् वेसूकट लिखते हैं—

"कबीर की शिक्षा में हमको हिंदुओं और मुसल्मानों के बीच की सीमा तोड़ने का यत्न दृष्टिगत होता है।"

—कबीर ऐंड दी कबीर पंथ, प्रीफेस, पंक्ति १६ और १९

"कबीर ने शेख से प्रार्थना की कि वे उनको यह वर दें कि वे हिंदुओं और मुसल्मानों के बीच के उन धार्मिक विरोधों को दूर कर सकें, जो उनको परस्पर अलग करते हैं।"

—कबीर ऐंड दी कबीर पंथ, पृष्ठ ४२

निदान इस प्रवृत्ति के उदित होने पर कबीर साहब ने एक ऐसे धर्म्म की नींव डालनी चाही, जिसे दोनों धर्मों के लोग असंकुचित भाव से स्वीकार कर सकें। ऐसा करने के लिये उनको दो बातों की आवश्यकता दिखलाई पड़ी। एक तो इस बात की कि सब लोग उनको एक बहुत बड़ा अवतार या पैगंबर समझें, जिससे उनकी बातों का उन पर प्रभाव पड़े। दूसरे इस बात की कि वे उन धर्म्मपुस्तकों, धर्म्मनेताओं और

धर्म्म-याजकों की ओर से उन लोगों के हृदय में अश्रद्धा, अविश्वास और घृणा उत्पन्न करें, जिनके शासन में उस काल में वे लोग थे; क्योंकि विना ऐसा हुए उनके उद्देश्य के सफल होने की संभावना नहीं थी।

निदान प्रथम बात पर दृष्टि रखकर अवतारवाद के विरोधी होने पर भी कवीर साहब ने अपने को अवतार और सत्यलोक निवासी प्रभु का दूत बतलाया; और कहा कि जिस पद पर मैं पहुँचा, आज तक कोई वहाँ नहीं पहुँचा। उन्होंने यह दावा भी किया कि केवल हमारी बात मानने से मनुष्य छूट सकता और मुक्ति पा सकता है, अन्यथा नहीं। निम्नलिखित पद्य इसके प्रमाण हैं—

काशी में हम प्रकट भये हैं रामानन्द चेताये।
समरथ का परवाना लाये हंस उबारन आये॥

—कवीर शब्दावली, प्रथम भाग, पृ० ७१

सोरह संख्य के आगे समरथ जिन जग मोहिं पठाया।

—कवीर बीजक, पृ० २०

तेहि पीछे हम आइया सत्य शब्द के हेत।

—कवीर बीजक, पृ० ७

कहते मोहिं भयल जुग चरी। समझत नाहिं मोहिं सुत नारी॥

—कवीर बीजक, पृ० १२५

कह कवीर हम जुग जुग कहा। जब ही चेतो तब ही सही॥

—कवीर बीजक, पृ० ५९२

जो कोइ होइ सत्य का किनका सो हम को पतिआई।
और न मिलै कोटि करि थाकै बहुरि काल घर जाई॥

—कवीर बीजक, पृ० २०

घर घर हम सब सों कही शब्द न सुनै हमार ।
ते भव सागर डूबहीं लख चौरासी धार ॥

—कबीर बीजक, पृ० १९

कहत कबीर पुकार कै सब का उहै हवाल ।
कहा हमर मानै नहीं किमि छूटै भ्रमजाल ॥

—कबीर बीजक, पृ० १३०

जंबूद्वीप के तुम सब हंसा गहिलो शब्द हमार ।
दास कबीरा अबकी दीहल निरगुन कै टकसार ॥

—कबीर शब्दावली, द्वितीय भाग, पृ० ८०

जहिया किरतिम ना हता धरती हता न नीर ।
उतपति परलय ना हती तब की कही कबीर ॥

—कबीर बीजक, पृ० ५९८

ई जग तो जहँड़े गया भया जोग ना भोग ।
तिल तिल झारि कबीर लिय तिलठी झारै लोग ॥

—कबीर बीजक, पृ० ६३२

सुर नर मुनिजन औलिया यह सब उरली तीर ।
अलह राम की गम नहीं तहँ घर किया कबीर ॥

—साखीसंग्रह, पृ० १२५

दूसरी बात पर दृष्टि रखकर उन्होंने हिंदू और मुसल्मान धर्म्म के ग्रंथों की निंदा की, उन्हें धोखा देनेवाला बतलाया और कहा कि माया अथवा निरंजन ने उसकी रचना केवल संसार के लोगों को भ्रम में डालने के लिये कराई । इन बातों के प्रमाण नीचे के वाक्य हैं । इनमें आप उनके धर्म्मनेताओं की भी निंदा देखेंगे ।

जोग जज्ञ जप संयमा तीरथ ब्रत दाना ।
नवधा वेद किताब है झूठे का बाना

—कबीर बीजक, पृ० ४११

हिंदू मुसल्मान दो दीन सरहद बने वेद कत्तेब परपंच साजी ॥

—ज्ञानगुदड़ी, पृ० १६

वेद किताब दोय फंद सँवारा । ते फंदे पर आप विचारा ।

—कबीर बीजक, पृ० २६९

चार वेद षट शास्त्रऊ औ दस अष्ट पुरान ।
आशा दै जग बाँधिया तीनों लोक भुलान ॥

—कबीर बीजक, पृ० १४

औ भूले षट् दरसन भाई । पाखँड भेख रहा लपटाई ।
ताकर हाल होय अधकूचा । छ दरशन में जौन बिगूचा ॥

—कबीर बीजक, पृ० ९७

ब्रह्मा विष्णु महेसर कहिये इन सिर लागी काई ।
इनहिं भरोसे मत कोइ रहियो इनहूँ मुक्ति न पाई ॥

—कबीर शब्दावली, द्वितीय भाग, पृ० १९

सुर नर मुनी निरंजन देवा सब मिली कीन्हा एक बँधाना ।
आप बँधे औरन को बाँधे भवसागर को कीन्ह पयाना ॥

—कबीर शब्दावली, तृतीय भाग, पृ० ३८

माया ते मन ऊपजै मन ते दस अवतार ।
ब्रह्मा विष्णु धोखे गये भरम परा संसार ॥

—कबीर बीजक, पृ० ६५०

चार वेद ब्रह्मा निज ठाना । मुक्ति का मर्म्म उनहुँ नहिं जाना ।
हबीबी और नबी कै कामा । जितने अमल सो सबै हरामा ॥

—कबीर बीजक, पृ० १०४, १२४

परधर्म्म और उसके पवित्र ग्रंथों का खंडन करके निज-धर्म्म-स्थापन और सर्व साधारण में अपने को अवतार या पैगंबर प्रगट करने की प्रथा प्राचीन है; कबीर साहब का यह नया आविष्कार नहीं है । किंतु देखा जाता है कि इस विषय में

उन्होंने स्वतंत्र पथ अवश्य ग्रहण किया। उनकी इस स्वतंत्रता से मुग्ध होकर 'रहनुमायाने हिंद' के रचयिता कहते हैं—

"उनको खुदा का फरजंद कहना बजा है। वह एक कौम या मजहब न रखते थे। उनका घर दुनिया, उनके भाई-बंद बनीनवा इंसान, और उनका बाप खालिके-अर्ज वो समाँ था।"

—पृष्ठ २२९

परंतु हम देखते हैं कि वे ही 'रहनुमायाने हिंद' के विद्वान् रचयिता हिंदू मजहब के विषय में यह कथन करते हैं—

"अगर कोई शख्स हिंदू मजहब को जानना, पढ़ना या हासिल करना चाहे, तो वह बड़े बड़े रहनुमा, रिशी और संतों की तलकीन गौर से पढ़े। यह बुजुर्ग लोग खुदा के अवतार थे, उनके अकवाल वेद मुकद्दस हैं, जो आसमानी वही और रब्बानी इलहाम हैं, जो खुदा ताला ने अपनी इनायत से इंसान को इनायत फरमाये हैं।" —पृष्ठ २८

"यह एक जात या फिरके का मजहब नहीं है, जैसा कि अवामुन्नास का अकीदा है, बल्कि कुल बनीनवा इंसान के लिये बजा किया गया है। जिस वक्त दुखानी जहाज, रेल, तार, तिजारत और फतूहात से कुल दुनिया मिल जुलकर एक हो जायगी, एक और रहनुमा पैदा होकर जाहिर करेगा कि हिंदू मजहब तमाम दुनिया के इंसानों के लिये है।" —पृष्ठ २८

अब आप देखिये, वे जैसे कबीर साहब को किसी क़ौम या मजहब का नहीं कहते, उसी प्रकार हिंदू धर्म्म को किसी जाति या फिरके का नहीं बतलाते। जैसे वे बनीनवा इंसान को कबीर साहब का भाई बंद बतलाते हैं, वैसे ही हिंदू मजहब को बनीनवा इंसान का कहते हैं। जैसे वे कबीर साहब का घर दुनिया सिद्ध करते हैं, वैसे ही हिंदू मजहब को

दुनिया के लिये निश्चित करते हैं, हिंदू धर्म्म और कबीर साहब दोनों का जनक वे ईश्वर को मानते हैं। फिर कबीर साहब हिंदू मजहब के ही तो सिद्ध हुए; अर्थात् कबीर साहब का वही सिद्धांत पाया गया, जो हिंदू धर्म्म का है। वैदिक धर्म्म को ही वे हिंदू मजहब कहते हैं। परंतु कबीर साहब के जो विचार वेदों के विषय में हैं, उनको मैं ऊपर प्रकट कर आया। मैं यह मानूँगा कि कबीर साहब जब चिंताशीलता से काम लेते हैं और ऊँचे उठते हैं, तब सत्य बात कह जाते हैं। एक स्थान पर उन्होंने स्पष्ट कहा है—'वेद कतेब कहो मति झूठे झूठा जो न बिचारै'।[1] किंतु उनका यह एकदेशी विचार है; व्यापक विचार उनका वेद और कुरान की प्रतिकूलता-मूलक है। यद्यपि उन्होंने एक महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिये यह स्वतंत्र पथ (अर्थात् ऐसा पथ जो हिंदू मुसल्मानों से अलग अलग है) ग्रहण किया, किंतु मेरा विचार है कि वह उनके महान् उद्देश के अनुकूल न था, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि हिंदू मुसल्मानों की विभेद सीमा आज भी वैसा ही अचल अटल है। हिंदू मुसल्मानों के लिये मगहर में अलग अलग बनी हुई उनकी दो समाधियाँ भी इस बात का उदाहरण हैं।

विचार मर्यादा-पूर्ण, सहानुभूति-मूलक और परिमित होने से ही समादृत होता है। वह विचार कभी कार्य्यकारी और सुफल-प्रसू नहीं होता, जिसमें यथोचित शालीनता नहीं होती। मनुष्य और कटूक्तियों को किसी प्रकार सहन कर लेता है; परंतु जब उसके ग्रंथों और धर्म्मनेताओं पर आक्रमण होता है, तब उसकी सहनशीलता की प्रायः समाप्ति हो जाती है।

१—देखो आदि ग्रंथ, पृष्ठ ७२७।

उस समय वह बहुत सी सुसंगत और उचित बातों को भी स्वीकार नहीं करता। मिठाई से औषधि की कटुता ही नहीं दब जाती, कितनी अप्रिय बातें भी स्वीकृत हो जाती हैं। ऐसे अवसरों पर प्रायः लोग यह कह उठते हैं कि लोहे का मोरचा उँगलियों से मलकर नहीं दूर किया जा सकता; उसके लिये लोहे की रगड़ ही उपयोगिनी होती है। इसी प्रकार समाज की अनेक बुराइयाँ और धर्म्म के नाम पर किए गए कदाचार केवल प्यारी प्यारी बातों और मधुर उपदेशों से ही दूर नहीं होते। उनके लिये कटूक्तियों की कषा ही उपकारिणी होती है। यदि यह बात स्वीकार भी कर ली जाय, तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि बुराइयों और कदाचार के साथ भलाइयों और सदाचार की पीठ भी कषा-प्रहार से क्षत-विक्षत कर दी जाय। संस्कार का अर्थ संहार नहीं है। जो क्षेत्र-संस्कारक खेत की घासों के साथ अन्न के पौधों को भी उखाड़ देना चाहेगा, वह संस्कारक नाम का अधिकारी नहीं। वेद-शास्त्र या कुरान में कुछ ऐसी बातें हो सकती हैं जो किसी समय के अनुकूल न हों; हिंदू धर्म्म के नेताओं या मुसल्मान धर्म्म के प्रचारकों के कई विचार ऐसे हो सकते हैं, जो सब काल में गृहीत न हो सकें; किंतु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वेद-शास्त्र या कुरान में सत्य और उपकारक बातें नहीं; और हिंदू एवं मुसल्मान धर्म्म के नेताओं ने जो कुछ कहा, वह सब झूठ और अनर्गल कहा; लोगों को धोखे में डाला और उन्हें उन्मार्गगामी बनाया। वेद-शास्त्र या कुरान को धर्म्मपुस्तक न समझा जाय, हिंदू मुसल्मान धर्म्माचार्य्यों को अपना पथप्रदर्शक न बनाया जाय, इसमें कोई आपत्ति नहीं, किंतु उनके विषय में ऐसी बातें कहना, जो अधिकांश में असंगत हों कदापि उचित नहीं।

धर्म्मालोचनाएँ धर्म्मसंगत ही होनी चाहिएँ, उनमें हृदयगत विकारों का विकास न होना चाहिए। वेदशास्त्र के शासन में आज भी बीस करोड़ मनुष्य हैं; कुरान संसार के एक पंचमांश मानव की धर्म्मपुस्तक है। विना उनमें कुछ सद्गुण या विशेषत्त्व हुए उनका इतने हृदयों पर अधिकार होना असंभव था। कबीर साहब ने बड़े गर्व और आवेश से स्थान स्थान पर यह कहा है कि हमारे वचन से ही मानव का उद्धार हो सकता है; हमारे शब्द ही लोगों को मुक्त करेंगे। किंतु जो कुछ वेदशास्त्र या क़ुरान में है, उससे उन्होंने अधिक क्या कहा? कौन सी नई बात बतलाई? वे केवल आध्यात्मिक शिक्षक हैं; किंतु क्या इस पथ में भी वे उतने ही ऊँचे उठे हैं, जितने कि उपनिषद् और दर्शनकार उठ सके? जिस काल संसार में केवल अज्ञान अंधकार था, ज्ञानरवि की एक किरण भी नहीं फूटी थी, उस काल कहाँ से यह मेघ गंभीर ध्वनि हुई—

सत्यं वद, धर्म्मं चर, स्वाध्यायान् मा प्रमदितव्यम्, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य्यदेवो भव, मा हिंस्यात् सर्वभूतानि, ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः,

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्
उतामृतत्वस्ये शानो यदन्ने नातिरोहति
सर्वाशा मम मित्रम् भवंतु।

यदि हमारा हृदय कलुषित नहीं है, यदि हम में सत्यप्रियता है, यदि हम न्याय और विवेक को पददलित नहीं करना चाहते, तो हम मुक्तकंठ से कहेंगे—पवित्र वेदों से। आज इसी ध्वनि की प्रतिध्वनि संसार में हो रही है, आज इसी ध्वनि का मधुर स्वर सांसारिक समस्त धर्म्म-ग्रंथों में गूँज रहा है। स्वयं कबीर साहब के वचनों और शब्दों में उसी की लहर पर लहर आ रही है। किंतु वे ऐसा नहीं समझते,

वरन् रमैनी में कहते हैं कि माया द्वारा त्रिदेव और वेदादि की उत्पत्ति केवल संसार को भ्रांत बनाने के लिये हुई है, सत्य शब्द के लिये हमीं आप हैं (देखो कबीर बीजक, पृ० १३ और १७ के दोहे १५ और २०)। किंतु यह उस मनुष्य के, जिसके हृदय में, मस्तिष्क में, धमनियों में, रक्त की बूँदों में, चैतन्य की कलाएँ प्रति पल दृष्टिगत हो रही हैं, इस कथन के समान है कि चैतन्य से हमारा कोई संपर्क नहीं, क्योंकि हम स्वयं सत्य हैं। कुरान के विषय में भी उनकी उत्तम धारणा नहीं; और यही कारण है कि जो जी में आया, उन्होंने इन ग्रंथों के विषय में लिखा। किंतु शास्त्र कहता है—

धर्म्मः यो वाधते धर्म्मं न स धर्म्मः कुधर्म्म तत्।
धर्म्माविरोधी यो धर्म्मः स धर्म्मः सत्यविक्रमः॥

जो धर्म्म किसी धर्म्म को वाधा पहुँचाता है, वह धर्म्म नहीं है, कुधर्म्म है। जो धर्म्म अपर धर्म्म का अविरोधी है, सत्य पराक्रमशील धर्म्म वही है। आज दिन संसार में शांति फैलाने के कामुक इसी पथ के पथी हैं; थियोसोफिकल सोसाइटी का यही महामंत्र है, अतएव अनेक अंशों से उसको सफलता भी हो रही है। हिंदू धर्म्म स्वयं, इस महामंत्र का ऋषि, और चिरकाल से उसका उपासक है। यही कारण है कि इसके विभिन्न विचारों के नाना संप्रदाय हिंदुत्व के एक सूत्र में आज भी बँधे हैं।

किसी किसी का विचार है कि कबीर साहब अपठित थे, उन्होंने वेद-शास्त्र उपनिषदों को पढ़ा नहीं, कुरान के विषय में भी वे ऐसे ही अनभिज्ञ रहे; इसलिये उन्होंने इन ग्रंथों के माननेवालों के आचार व्यवहार को जैसा देखा, वैसे ही उन के विषय में अनुमति प्रकट की। किंतु मैं इस विचार से सहमत नहीं। कबीर साहब चिंताशील पुरुष थे। वे यह भी

समझ सकते थे कि सब मतों के सर्व साधारण और महान् एवं मान्य पुरुषों के आचार व्यवहार में अंतर हुआ करता है। उनके नेत्र के सामने ही, उसी समय में हिंदुओं में स्वामी रामानंद और मुसलमानों में शेख तकी जैसे महापुरुष मौजूद थे। फिर यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है कि उन्होंने उक्त धर्म्मग्रंथों के माननेवालों के आधार पर ही उन ग्रंथों के प्रतिकूल लिखा। मेरा विचार यह है कि उन्होंने एक नवीन धर्म्म-स्थापना की लालसा से ही ऐसा किया।

स्वाधीन चिंता

यह भी कहा जा सकता है कि कबीर साहब स्वाधीन चिंता के पुरुष थे। उन्होंने समय का प्रवाह देखकर धर्म्म और देश के उपकार के लिये जो बातें उचित और उपयोगिनी समझीं, उनको अपने विचारों पर आरूढ़ होकर निर्भीक चित्त से कहा। उन्होंने अपने विचारों के लिये कोई आधार नहीं ढूँढा, किसी ग्रंथ का प्रमाण नहीं चाहा। उन्होंने सोचा कि जो बात सत्य है, वास्तविक है, उसकी सत्यता और वास्तविकता ही उसका प्रधान आधार है। उसके लिये किसी ग्रंथ विशेष का सहारा क्या? उनके जी में यह बात भी आई कि जिन वेदशास्त्रों और कुरान का आश्रय लेकर हिंदू मुसल्मान धर्म्मयाजक नाना कदाचार कर रहे हैं, उन्हीं को उन कदाचारों का विरोध करने के लिये अवलंब बनाना कदापि युक्ति संगत नहीं; वरन् उनके विरुद्ध आंदोलन मचाना ही उपकारक होगा। निदान उन्होंने ऐसा ही किया। झूठे संस्कारों के वश लोग नाना क्रियाकांड में फँसे हुए थे, आडंबर-मूलक नाना आचार व्यवहार को धर्म्म समझ रहे थे, उनके द्वारा वे साँसत तो भोगते ही थे, वंचित भी हो रहे थे। उनसे यह बात नहीं

देखी गई। उन्होंने उनके विरुद्ध अपना प्रबल स्वर ऊँचा किया ; बड़े साहस के साथ केवल अपने आत्मबल के सहारे उनका सामना किया। उनका सत्य व्यवहार, उनका दृढ़ विचार ही इस मार्ग में उनका सच्चा सहायक था। उनको किसी प्राचीन धर्म्म ग्रंथ की सहायता अभिप्रेत थी ही नहीं। फिर वे क्यों किसी धर्म्म ग्रंथ का मुख देखते ? मीठी बातें तो वह करता है जिसका कुछ स्वार्थ होता है, जो डरता है, जो प्रशंसा अथवा मान का भूखा रहता है। जो इन बातों से कुछ संबंध नहीं रखता, वह ठीक बातें कहेगा, वे चाहे किसी को भली लगें या बुरी, उसको इसकी चिंता ही क्या ? धर्म्मध्वजियों को जो कुछ कहा जाय, सब ठीक है। वे इस योग्य नहीं कि उनसे शिष्टता के साथ बर्ताव किया जाय। अनेक धार्मिक और सामाजिक कुसंस्कार सीधी सादी और प्यार की बातों से दूर नहीं होते। उनके लिये जिह्वा को तलवार बनाना पड़ता है ; क्योंकि बिना ऐसा किये कुसंस्कारों का संहार नहीं होता। ये ऐसी प्रत्यक्ष बातें हैं, जो सर्वसम्मत हैं। इसके लिये किसी धर्म्मग्रंथ का आश्रय अपेक्षित नहीं।

ये बड़ी ही प्यारी और श्रुति मनोहर बातें हैं। प्रायः धर्म्म-संस्कारकों के कार्य्यों का अनुमोदन करने के लिये ऐसी ही बातें कही जाती हैं। मैं भी इनको उचित सीमा तक मानता हूँ, परंतु सर्वांश में नहीं। जो आत्म-निर्भर-शील संस्कारक या महात्मा हैं, उनका पद बहुत ऊँचा है। परंतु उनको यह पद उत्पन्न होते ही नहीं प्राप्त हो जाता। माता, पिता, महात्मा जनों और विद्वानों के संसर्ग, नाना शास्त्रों के अवलोकन और सांसारिक घटनाओं के घात प्रतिघात के निरीक्षण से शनैः शनैः प्राप्त होता है। धर्म्म की लहरें संसार में व्याप्त हैं; परंतु वे किसी आधार से हृदय में प्रवेश करती हैं। प्रकृति

अपरिमित ज्ञान का भंडार है, पत्ते पत्ते में शिक्षापूर्ण पाठ है, परंतु उनसे लाभ उठाने के लिये अनुभव आवश्यक है। अग्नि में दाहिका शक्ति है, पत्थर में हम उसे अविकसित अवस्था में पाते हैं। वह विकसित होती है, किंतु किसी आधार से। धर्म्म की लहरें संसार में व्याप्त हैं; परंतु उनके अंशों के उद्भावनकर्त्ता भी हैं। पृथ्वी आज भी घूमती है, पहले भी घूमती थी, आगे भी घूमती रहेगी। उसमें आकर्षिणी शक्ति पहले भी थी, अब भी है, आगे भी रहेगी। परंतु इन बातों का आविष्कार करके संसार को लाभ पहुँचानेवाले भास्कराचार्य्य इत्यादि आर्य्य विद्वान् अथवा गेलीलियो और न्यूटन हैं। क्या इन आविष्कारकों का संसार को कृतज्ञ न होना चाहिए? जिन आधारों से अग्नि का विकास होता है, क्या वे उसके उपकारक अथवा उपयोगी नहीं? इसी प्रकार वह विचारपरंपरा कि जिससे किसी आत्मनिर्भर-शील महात्मा की आत्मा विकसित होती है, क्या अनादरणीय और अमाननीय है? क्या वे ग्रंथ, जिन्होंने संसार को सब से प्रथम उस विचारपरंपरा से अभिज्ञ किया, इस कारण निंदा के योग्य हैं कि उनके नाम से कई स्वार्थी आत्माएँ कदा-चार और मिथ्याचार में प्रवृत्त रहें? यदि वे निंदा के योग्य हैं, तो सत्य का अपलाप हुआ या नहीं? वास्तविकता उपेक्षित हुई या नहीं? और क्या ऐसा करना किसी महान् आत्मा का कर्त्तव्य है? कोई आत्म-निर्भर-शील महात्मा यदि अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिये ऐसे ग्रंथों की सहायता ग्रहण करे, तो उसका आर्य्यपथ और विस्तृत होगा, उसको सुकरता छोड़ दुरूहता का सामना न करना पड़ेगा। परंतु यदि उस की अप्रवृत्ति हो, तो वह ऐसा नहीं भी कर सकता है। परंतु उसका यह कर्त्तव्य कदापि न होगा कि एक असंगत बात के

आधार पर या यों ही वह उनकी निंदा करने लगे, और उन्हें कुत्सित ठहरावे। आडंबरों के बहाने धर्म्म-त्याग नहीं, आडंबर में पड़े धर्म्म का उद्धार ही सदाशयता है। यदि कोई शस्त्र के सहारे आत्मघात कर ले, तो क्या उससे शस्त्र की उपयोगिता अगृहीत हो जानी चाहिए? यदि नहीं, तो वेद-शास्त्र की निंदा का क्या अर्थ? स्वाधीन चिंता का तो यह दुरुपयोग मात्र है।

झूठे संस्कारों, आडंबर-मूलक आचार-व्यवहारों और प्रवंचना के तो शास्त्र स्वयं विरोधी हैं, किंतु वे समझते हैं कि घाव के लिये मरहम की भी आवश्यकता है। अतएव वे संयत हैं। वे जानते हैं कि वही कठोरता प्रभाव रखती है, जो सहानुभूति-मूलक हो। जहाँ हृदय का ईर्ष्या द्वेष ही कार्य्य करता है, वहाँ अमृत भी विष बन जाता है। अतएव वे गंभीर हैं। कदाचार और अपकर्म्म एक साधारण मनुष्य को भी निंदित बना देते हैं। फिर धर्म्मयाजकों और धर्म्मनेताओं को वे निंदनीय क्यों न बनावेंगे? उनके लिये कदाचारी और कुकर्म्मी होना और भी लज्जा की बात है; क्योंकि जो प्रकाश फैलानेवाला है, यदि वही अँधेरे में ठोकरें खा खाकर गिरे, तो वह दूसरों के लिये उजाला क्या करेगा? शास्त्र भी इसको समझते हैं, इसलिये मुक्तकंठ से कहते हैं—

कर्म्मेंद्रियाणि संयम्य यः आस्ते मनसा स्मरन्।
इंद्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥
न शरीरमलत्यागान्नरो भवति निर्म्मलः।
मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यंतस्सुनिर्मलः॥
सर्वेषामेव शौचानामान्तःशौचं परं स्मृतम्।
योऽन्तःशुचिर्हि स शुचिः नमृद्वारिशुचिः शुचिः॥

नक्तं दिनं निमज्याप्सु कैवर्त्तः किमु पावनः ।
शतशोपि तथा स्नातः न शुद्धः भावदूषितः ॥
पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिंतकाः ।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पंडितः ॥
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रभावदुष्टस्य सिद्धिं गच्छति कर्हिचित् ॥
न गच्छति विना पानं व्याधिरोषधशब्दतः ।
विना परोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैर्न मुच्यते ॥

मनुष्य का जीवन-समय थोड़ा है, संसार के रहस्य नितांत गूढ़ हैं, ज्ञातव्य बातों की सीमा नहीं, मनुष्य केवल अपने अनुभव पर निर्भर रहकर अनेक भूलें कर सकता है; अतएव उसको अपने पूर्वज महानुभावों के अनुभवों से काम लेना पड़ता है, उनके सद्विचारों से लाभ उठाने की आवश्यकता होती है। वेद-शास्त्र इत्यादि ऐसे ही अनुभवों और सद्विचारों के संग्रह तो हैं। यदि उनसे कोई लाभ उठाना चाहे तो लाभ उठा सकता है, न उठावे उसकी इच्छा, इसकी कोई शिकायत नहीं। परंतु उसको यह कहने का अधिकार नहीं कि ये समस्त शास्त्र ही मिथ्याचारों के आधार हैं।

मिष्टभाषण, शिष्टता, मितभाषिता, गंभीरता, शालीनता, ये सद्गुण हैं; इनकी आवश्यकता जितनी अपने लिये है, उतनी औरों के लिये नहीं। मैं यह मानने के लिये प्रस्तुत नहीं कि धर्म्मप्रचारक का धर्म्मप्रचार में कोई स्वार्थ नहीं होता। यह दूसरी बात है कि वह धर्म्मप्रचार और लोकोपकार ही को अपना स्वार्थ मानता है; पर आत्मसंबंधी न होने के कारण उसका यह भाव परमार्थ अवश्य कहलाता है। परंतु स्मरण रहे कि स्वार्थ के लिये मिष्टभाषिता इत्यादि की जितनी आवश्यकता है, उससे कहीं अधिक इनकी आवश्यकता परमार्थ के लिये है।

जहाँ चक्रवर्त्ती नृपाल की शस्त्रधारा कुंठित हो जाती है, वहाँ महापुरुष का एक मधुर वचन ही काम कर जाता है। मैं चिरसंचित कुसंस्कार दूर करने के लिये ओजस्वी और तीव्र भाषण की आवश्यकता समझता हूँ, परंतु दुर्वचन और असंयत-भाषिता की नहीं; क्योंकि ये आदर्श पुरुष के अस्त्र नहीं। विना क्रोध हुए दुर्वचन मुख से निकलते नहीं, असंयत भाषण होता नहीं, किंतु क्रोध करना महापुरुषों का धर्म्म नहीं। इसके अति-रिक्त मिथ्याचारी एवं कदाचारी का कलुषित-आत्मा होना सिद्ध है, कलुषित-आत्मा दया का पात्र है, क्रोध का पात्र नहीं है।

महात्मा सुकरात एक दिन अपनी शिष्य-मंडली के साथ राजमार्ग से होकर कहीं जा रहे थे कि उनके सामने से एक मदांध धनिक-पुत्र निकला, और अकड़ता हुआ विना कुछ शिष्टाचार प्रदर्शन किए चला गया। यह वात उनकी शिष्य-मंडली को बुरी लगी और उन्हें क्रोध आया। इस पर सुकरात ने कहा—इसमें क्रोध करने की क्या वात है? यह वतलाओ, यदि सड़क पर तुमको कोई लँगड़ा मिलता और पाँव सीधे न रखता, तो क्या तुम लोग उसपर क्रोध करते? लोगों ने कहा—नहीं, वह तो लँगड़ा होता। रोग से उसका पाँव ठीक नहीं, फिर वह पाँव सीधे कैसे रखता, वह तो दया का पात्र है। सुकरात ने कहा इसी प्रकार धनिक पुत्र भी दया का पात्र है; क्योंकि उसकी आत्मा मलिन है, और उसे मद जैसे कुरोग ने घेर रखा है।

उपदेश के समय चैतन्यदेव को दो मुसल्मानों ने एक घड़े के टुकड़े से मारा। उनका सिर फट गया और रुधिर-धारा से शरीर का समस्त-वस्त्र भींग गया। परंतु उन्हें क्रोध नहीं आया। वे प्यार के साथ आगे वढ़े, और उन दोनों को गले से लगाकर वोले—"तुम लोग तो सब से अधिक दया और

उपदेश के अधिकारी हो; क्योंकि औरों से तुम लोगों को उनकी अधिक आवश्यकता है।" वे दोनों उनका यह भाव देखकर इतने मुग्ध और लज्जित हुए कि तत्काल शिष्य हो गए और काल पाकर उनके प्रधान शिष्यों में गिने गए।

धर्म्मग्रंथों को बुरा कहना, आडंबरों की ओट में धर्म्म-साधन की सुंदर पद्धतियों की भी निंदा करना स्वाधीनचिंता नहीं है। मानवों की मंगल-कामना से, उपकार की इच्छा से, उनमें परस्पर सहानुभूति और ऐक्य-संपादन एवं भ्रातृभाव-उत्पादन के लिये, उन्हें सत्पथ पर आरूढ़ और सद्भावों अथच सद्विचारों से अभिज्ञ करने के अर्थ धर्म्म अथवा मजहबों की सृष्टि है। 'तुम लोग परस्पर सहानुभूति और ऐक्य रखो, एक दूसरे को भाई समझो, सत्पथ पर चलो, सद्विचारों से काम लो' केवल इतना कहने से ही काम नहीं चलता। इन उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिये कुछ पद्धतियाँ, नियम और पर्व-त्योहार भी, देशकाल और पात्र का विचार करके बनाने पड़ते हैं; क्योंकि ये ही सहानुभूति और ऐक्य इत्यादि के साधन होते हैं। ये मनुष्य-बुद्धि से ही प्रसूत हैं, अतएव इनमें न्यूनता और अपूर्णता हो सकती है, परंतु इन साधारण दोषों के कारण ये सर्वथा त्याज्य नहीं कहे जा सकते। यदि धर्म्म की आवश्यकता है, तो इनकी भी आवश्यकता है। स्वाधीन चिंता का यह काम है कि आवश्यकतानुसार वह उनको काटती छाँटती रहे, ठीक करती रहे, संकीर्ण स्थानों को विस्तृत बनाती रहे। उसका यह काम नहीं है कि उनको मटियामेट कर दे और उनके स्थान पर कोई उससे निम्न कोटि की पद्धति इत्यादि भी स्थापन न करके समाज को उच्छृंखल कर दे। कोई कहते हैं कि किसी धर्म्म या मजहब की आवश्यकता ही क्या? किंतु यह बात कहने के समय

पूरी चिंताशीलता का परिचय नहीं दिया जाता। सदाचार, ईश्वर-विश्वास और शील की आवश्यकता मनुष्य मात्र को है। जो ईश्वर-विश्वासी नहीं हैं, उदार और सत्शील का समादर वे भी करते हैं, वरन् दृढ़ता से करते हैं। मजहब इन्हीं बातों की शिक्षा तो देते हैं! फिर मजहब की आवश्यकता क्यों नहीं? धर्म्म के सार्वभौम सिद्धांत सब मजहबों में पाए जाते हैं; क्योंकि उन सबका उद्गम स्थान एक है। तारतम्य होना स्वाभाविक है; परंतु सब मजहबों में वे इतनी मात्रा में मौजूद हैं कि मनुष्य उनके द्वारा सदाचार इत्यादि सीख सके। देशाचार, कुलाचार, अनेक सामाजिक रीति-रस्म, सदाचार इत्यादि वाहरी आवरण मात्र हैं। उनकी आवश्यकता एकदेशीय है। अनेक दशाओं में वे उपेक्षित हो जाते हैं; किंतु धर्म्म के सार्वभौम सिद्धांत मनुष्य मात्र के लिये आवश्यक हैं, और ऐसी अवस्था में कोई विद्वान् या महात्मा यह नहीं कह सकता कि मेरा कोई धर्म्म नहीं। वास्तविक बात तो यह है कि संसार की कोई वस्तु बिना धर्म्म के नहीं है। हम लोग वैदिक मार्ग को ही इसीलिये धर्म्म के नाम से अभिहित करते हैं। मजहब और रिलिजन संज्ञाएँ इतनी व्यापक नहीं हैं। वैदिक धर्म्म में अधिकारी-भेद है, इसलिये यह पात्र के अनुसार धर्म्म की व्यवस्था करता है। साथ ही यह भी कहता है—

> सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
> कुर्य्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥
> केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्त्तव्यो विनिर्णयः।
> युक्तिहीनविचारेण धर्म्महानिः प्रजायते॥
> युक्ति-युक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि।
> अन्यं तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना॥

अनन्तशास्त्रम् बहुवेदितव्यम् स्वल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः।
यत् सारभूतम् तदुपाश्रितव्यम् हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमिश्रम् ॥

स्वाधीन चिंता यही तो है ! एक धर्म्म होने के कारण ही वेद-शास्त्र के सिद्धांत अधिक उदार हैं। इसी से वह कहता है कि प्राणीमात्र मोक्ष का अधिकारी है। किसी समाज, देश या मजहब का मनुष्य क्यों न हो, जिसमें सदाचार है, धर्म्म-परायणता है, ईश्वर-विश्वास है, वह अवश्य मुक्त होगा। वह समझता है कि परमात्मा घट घट में व्याप्त है, अंतर्यामी है; यदि उसे कोई राम, हरि, इत्यादि शब्दों में उद्बोधन न करके गॉड या अल्लाह इत्यादि शब्दों से उद्बोधन करता है, तो क्या परमात्मा उसकी भक्ति को अगृहीत करेगा ? उनको चाहे जिस नाम से पुकारें, यदि सच्चे प्रेम से भक्ति-गद्गद-चित्त से पुकारेंगे, तो वह अवश्य अपनावेगा। यदि कोई सत्य बोलता है, परोपकार करता है, सदाचारी है, परदुःखकातर है, लोक-सेवा-परायण है, धर्मात्मा है, तो परमात्मा उसे अवश्य अंक में ग्रहण करेगा। उससे यह न पूछेगा कि तू हिंदू है या मुसलमान, या क्रिश्चियन या बौद्ध या अन्य। यदि वह ऐसा करे, तो वह जगत्पिता नहीं, जगन्नियंता नहीं, विश्वात्मा नहीं, सर्वव्यापक नहीं, न्यायी नहीं। जिसका सिद्धांत इसके प्रतिकूल है, उसका वह सिद्धांत किसी मुख्य उद्देश्य का साधक हो सकता है; परंतु वह उदार नहीं है, व्यापक नहीं है, अनुदार, अपूर्ण और अव्यापक है। हिंदू धर्म्म उसपर आक्रमण नहीं करता। वह जानता है कि भगवान् भुवनभास्कर के अभाव में दीपक भी आदरणीय है। संसार को मुग्ध करता हुआ वह जगत्पिता की ओर प्रवृत्त होकर उच्च कंठ से यही कहता है—

"रुचीनां वैचित्र्यात् कुटिलऋजुनानापथयुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णवमिव ॥"

साथ ही एक पवित्र ग्रंथ से यह ध्वनि होती है—

ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

स्वाधीन चिंते, तेरा मुख उज्वल हो, तुझसे ही प्रसूत तो ये सद्विचार हैं। इससे उच्च स्वाधीन चिंता क्या है, मैं यह नहीं जानता।

संत मत

संत मत क्या है? तत्वज्ञता। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—'मधुकर सरिस संत गुनग्राही,' 'संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार'। इसी की प्रतिध्वनि हम मौलाना रूम के इस शेर में सुनते हैं—"मन ज़े कुरआँ मग्ज़ रा वर-दाश्तम्। उस्तख़ाँ पेशे सगाँ अंदाख़्तम्—मैंने कुरान से मगज़ ले लिया और हड्डी कुत्तों के सामने डाल दी। आँखवाले के लिये पेड़ का एक पत्ता भेदों से भरा है।" जिसमें विवेक बुद्धि नहीं, उसके लिये संसार के समस्त धर्म्मग्रंथों में भी कुछ सार नहीं। धर्म्म के साधनों को आडंबर कहकर हम उनसे घृणा कर सकते हैं; परंतु तत्वज्ञ की दृष्टि उसके तत्व को नहीं त्याग करती। विवेकशील कीचड़ में पड़े रत्न को भी ग्रहण करते हैं; कीचड़ में लिप्त होने के कारण उसे अग्राह्य नहीं कहते।

कबीर साहब ने एक शब्द में (देखो शब्द १९४) कहा है, कि जिनके जी में नाम नहीं बसा है, उनके पुस्तक पढ़ने, सुमिरनी लेने, माला पहनने, शंख बजाने, काशी में बसने, गंगाजल पीने, व्रत रखने, तिलक देने से क्या होगा? ऐसे शब्दों को पढ़कर लोग यह समझते हैं कि इनमें पुस्तक पढ़ने इत्यादि का खंडन है; किंतु वास्तव में ये शब्द खंडनात्मक नहीं हैं। इसी शब्द को देखिए; इसमें कहा है कि जिनके जी

में नाम नहीं वला है, अर्थात् परमात्मा की भक्ति करना या धर्म्म करना जिनका उद्देश्य नहीं है, उनके पुस्तक इत्यादि पढ़ने से क्या होगा ? सिद्धांत यह कि पुस्तक पढ़ना, माला पहनना, सुमिरनी लेना इत्यादि धर्म्म के साधन हैं। धर्म्म के उद्देश्य से यदि ये सब क्रियाएँ की जायँ, तब तो ठीक है, उचित है ; किंतु यदि इनको धर्म्म-साधन के स्थान पर अधर्म्म का साधन बना दिया जाय, इनके द्वारा लोगों को ठगा जाय, छल-प्रपंच किया जाय, पेट पाला जाय, तो इन कर्म्मों के करने से क्या होगा ? समस्त हिंदू शास्त्रों का यही सिद्धांत है, कबीर साहब भी ऐसे शब्दों में यही कहते हैं। शब्द १८८ तथा १९६ ध्यानपूर्वक पढ़िए। किंतु वे कभी कभी ऐसा भी कह जाते हैं कि 'जोग जज्ञ जप संयमा तीरथ ब्रत दाना' झूठे का बाना है ; परंतु यह उनका गौण विचार है। यदि योग का खंडन उनको अभीष्ट होता, तो व्यापक भाव से इसे परमात्मा की प्राप्ति का साधन वे न बतलाते (देखो शब्द २८-३२)। इसी प्रकार शील, क्षमा, उदारता, संतोष, धैर्य्य इत्यादि शीर्षक दोहावली में आप संयम और दान आदि का गुणगान देखेंगे। इन सब विषयों में कबीर साहब की विचारपरंपरा सर्वांश में हिंदू-भावापन्न है। किंतु चौरासी अंग की साखी में उन्होंने "तीरथ ब्रत का अंग" और "मूरत पूजा का अंग" शीर्षक देकर इन सिद्धांतों का खंडन किया है। उनको स्फुट रीति से हिंदू मुसल्मानों के कतिपय छोटे-मोटे धर्म्मसाधनों पर भी आक्रमण करते देखा जाता है। मैं इनमें से कतिपय विषयों को लेकर देखना चाहता हूँ कि वास्तव में इनमें कुछ तत्त्व है या नहीं। यह कहा जा सकता है कि कबीर साहब ने हिंदू मुसल्मानों के अनेक सिद्धांतों में से जिनमें अधिक तत्त्व देखा, उनको ग्रहण कर लिया, शेष को छोड़ दिया। इस विषय

में उन्होंने तत्वज्ञता ही का परिचय तो दिया है। किंतु निवेदन यह है कि उन्होंने उनको छोड़ा ही नहीं, उनका खंडन भी किया है, उनको निस्सार बतलाया है; अतएव मैं यही देखना चाहता हूँ कि वास्तव में उनमें कुछ सार या तत्व है या नहीं। तीर्थ के विषय में वे कहते हैं—

तीरथ गये ते बहि मुये जूड़े पानी न्हाय।
कह कबीर संतो सुनो राक्षस है पछिताय॥
तीरथ भइ विख बेलरी रही जुगन जुग छाय।
कबिरन मूल निकंदिया कौन हलाहल खाय॥

—कबीर बीजक, पृ० ६०१, ६०२

क्या वास्तव में तीर्थ जाने से राक्षस होना पड़ता है? क्या वास्तव में वह विष वेलि है? क्या उनका सेवन हलाहल खाना है? क्या कबीरपंथियों की भाँति उसकी जड़ ही काट देनी चाहिए? किंतु हम देखते हैं कि 'कबीरन' ने भी उसकी जड़ नहीं काटी। काशी का कबीरचौरा और मगहर कभी तीर्थ स्थान नहीं थे, किंतु कबीर-पंथियों ने ही आज इन्हें तीर्थ-स्थान बना दिया। क्यों? इसलिये कि एक में उनके गुरु का जन्मस्थान है; और दूसरे में उनके तमोमय हृदय को ज्योतिर्मय बनानेवाले किसी महापुरुष का स्मृति चिह्न है। वहाँ आज भी उनके संप्रदाय के विज्ञानी और विचारवान् पुरुष समय समय पर पधारते रहते हैं, जिनसे उनके पंथ का जीवन है। वहाँ पहुँचने पर प्रायः उनके सत्संग का सौभाग्य प्राप्त होता है, जिससे हृदय का कितना तम विदूरित होता है। और पहुँचनेवालों को वे अवसर प्राप्त होते हैं, जो उन्हें घर बैठे किसी प्रकार न प्राप्त होते। वे वर्ष में एक बार उस पंथ के महात्माओं के मिलने के केंद्र हैं, जो एकत्र होकर न केवल विचार परिवर्तन करते हैं, वरन् अपने पंथ को निर्दोष बनाने

के विषय में परामर्श करते हैं, और यह सोचते हैं कि किस प्रकार उसको समुन्नत और सुश्रृंखल बनाया जाय। ऐसे अवसर पर जन-साधारण को और उनके पंथ के लोगों को उनके द्वारा जो लाभ पहुँचता है, वर्ष में फिर कभी वैसा अवसर हाथ नहीं आता। इनमें कौन सी बात बुरी है कि जिसके लिये इन स्थानों के उत्सन्न करने की आवश्यकता समझी जाय, या इनको विष हलाहल कहा जाय? संपूर्ण तीर्थों का उद्देश्य यही तो है? किसी महान् उद्योग या धर्म्म-संघट्ट का कार्य उस समय तक कदापि उत्तमता से नहीं हो सकता, जब तक कि उसके लिये कुछ स्थान प्रधान केंद्र की भाँति न नियत किए जायँ। तीर्थ ऐसे ही स्थान तो हैं! संसार में कौन जीवित जाति और सप्राण धर्म्म है, जो अपने उन्नायकों और पथ-प्रदर्शकों की जन्मभूमि अथवा लीलाक्षेत्र या तपस्थान को आदर-सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता? उनकी सजीवता और सप्राणता की जड़ उसी वसुंधरा की रज तो है। फिर उनमें उनकी प्रतिष्ठाबुद्धि क्यों न होगी? जिस दिन यह प्रतिष्ठाबुद्धि उनके हृदय से लुप्त होगी, उसी दिन उनकी सजीवता और सप्राणता लोकांतरित होगी; क्योंकि उनमें परस्पर ऐसा ही घना संबंध है। यदि इसमें देशाटन की उपकारिता मिला दी जाय, तो उसका महत्त्व और भी अधिक हो जाता है। फिर तीर्थों के रसातल पहुँचाने का क्या अर्थ? तीर्थ के उद्देश्यों के समझने में जन-समुदाय का भ्रांत हो जाना संभव है; तीर्थों का कतिपय अविवेकियों के अकांडतांडव से कलुषित और कलंकित हो जाना भी असंभव नहीं; परंतु इन कारणों से तीर्थों को ही नष्ट कर देना समुचित नहीं; अन्यथा संस्कारों की समाज को आवश्यकता ही क्या? शास्त्र यह समझते हैं कि—

तपस्तीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिंद्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदयातीर्थं ध्यानतीर्थमनुत्तमम् ॥
एतानि पंचतीर्थानि सत्यं षष्ठं प्रकीर्तितम् ।
देहे तिष्ठन्ति सर्वस्य तेषु स्नानं समाचरेत् ॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोषस्तीर्थमुच्यते ।
ब्रह्मचर्य्यं परं तीर्थं तीर्थश्च प्रियवादिता ॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम् ।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परः ॥

—महाभारत ।

स स्नातः सर्वतीर्थेषु स सर्वमलवर्जितः ।
तेन क्रतुशतैरिष्टं चेतो यस्य हि निर्मलम् ॥

—काशीखंड ।

वे यह भी जानते हैं—

भ्रमन् सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः ।
निर्मलो न मनो यावत् तावत् सर्वं निरर्थकम् ॥
यथेन्द्रवारुणं पक्वं मिष्टं नैवोपजायते ।
भावदुष्टस्तथा तीर्थे कोटिस्नातो न शुद्ध्यति ॥

—देवीभागवत ।

तथापि व्यासस्मृति का यह वचन है—

नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत् ।
यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मना नृणाम् ॥

यह है भी यथार्थ बात । जो शुद्धात्मा हैं, तीर्थ का यथोक्त फल उन्हीं को मिलता है । परंतु पापी जन का पाप भी तीर्थ में शमन होता है । पापियों को वहाँ सत्संग का, ज्ञानार्जनका, विचार-परिवर्त्तन का अवसर मिलता है; इसलिये उनके पाप की निवृत्ति क्यों न होगी ? किंतु भाव दुष्ट न होना चाहिए । तीर्थ में तीर्थ करने के उद्देश्य से जाना चाहिए; फिर फल की

प्राप्ति क्यों न होगी ? हाँ, जिसकी चित्तवृत्ति हीं पाप की ओर हो, उसको लाभ कैसे होगा ? ऐसे पुरुष के लिये कोई भी सद्वस्तु उपकारक नहीं हो सकती। जल संसार का जीवन है। उसे यदि कोई अनुचित रीति से पीकर अथवा व्यवहार करके प्राण दे दे, तो इसमें जल का क्या दोष! उसके ऐसा करने से जल निदनीय नहीं ठहराया जा सकता। प्रत्येक पदार्थ का उचित व्यवहार ही श्रेयस्कर होता है। तीर्थ के विषय में भी यही बात कही जा सकती है और यही तत्वज्ञता है।

अब मूर्तिपूजा को लीजिए। कबीर साहब कहते हैं—

पाहन पूजे हरि मिलैं तो मैं पुजूँ पहार।
ताते यह चाकी भली पीस खाय संसार॥
पाहन केरी पूतरी करि पूजा करतार।
वाहि भरोसे मत रहो बूड़ो कालीधार॥

—साखीसंग्रह, पृष्ठ १८३

अब मैं यह देखूँगा कि क्या वास्तव में मूर्तिपूजा में कुछ तत्त्व नहीं है? मुसल्मान धर्म्म का अनुसरण ही कबीर साहब ने इस विषय में किया है। इसलिये पहले मैं इस विषय में कुछ प्रतिष्ठित और मान्य मुसल्मानों की सम्मति यहाँ लिखूँगा। हजरत मिर्जा मजहर जानेजानाँ दिल्लीनिवासी कथन करते हैं—

"दरहक़ीक़त बुतपरस्ती ईहा मुनासिबते ब अक़ीदा कुफ्फार अरब नदारद कि ईहा बुताँरामुत्तसर्रिफ़ ओ मुअस्सिर बिल्ज़ात मीगुफ्तन्द न आलये तसर्रुफ़ इलाही। ईहां रा खुदाए ज़मीन मीदानन्द ओखुदाय ताला रा खुदाय अस्मान ओई शिर्क अस्त"।

—अलबशीर, जिल्द ६, नम्बर ३९, सफ़हा ७, मतबूआ २७ सितम्बर सन् १९०४ ई०।

"वास्तव में इनकी मूर्पूजा अरब के काफिरों के विश्वास

से कोई संबंध नहीं रखती। वे मूर्त्तियों को स्वयं व्यापक और शक्तिमान कहते हैं, न कि ईश्वरोपासन का साधन (जैसा कि हिंदुओं का विचार है)। वे इनको पृथ्वी का ईश्वर मानते हैं, और परमेश्वर को आकाश का और यही द्वैत है।

मसनवी गुलशनेजार में महमूद शबिस्तार ने कहा है—
"अगर मुसल्मान दरअस्ल बुत की माहियत समझ सकता, तो उसके लिये इस बात का जानना मुश्किल नहीं था कि बुतपरस्ती भी सच्चा मजहब है।"

—आर्य्यगजट जिल्द १०, नं० १६, सफहा ६, मतबूअ १० मई सन् १९०६।

एक पत्थर चूमने को शेख जी काबा गए।
जौक हर बुत काबिले बोसा है इस बुतखाने में॥—जौक।
न देखा दैर में तो क्या हरम में देखेगा।
वह तेरे पेश नजर याँ नहीं तो वाँ भी नहीं॥
दुई का पर्दा उठा दिल से और आँख से देख।
खुदा के नूर को हुस्ने बुताँ के परदे में॥—जफर।

अब कुछ अन्य अनुमतियों को भी देखिए। श्रीमान् ग्रियर्सन साहब अपने धर्म्मेतिहास में लिखते हैं—

"हिंदुओं में बहुदेववाद और मूर्तिपूजा है; किंतु वह उनके गंभीरतर धर्म्म मत का आवरण मात्र है।

—प्रवासी, दशम भाग, पृष्ठ ५३८

बाबू मन्मथनाथ दत्त एम. ए., एम.आर.ए.एस. लिखते हैं—

"दरख्त को उसके फलों से पहचानते हैं। हमने जब उन आदमियों में, जिन्हें बुतपरस्त कहा जाता है, वह शराफत, वह खुलूस-इरादत और रूहानी इश्क देखा, जो और कहीं नहीं पाया जाता, तो खुद अपने दिल में सवाल किया—'क्या गुनाह से नेकी पैदा हो सकती है?"

"हिंदुओं के मजहब का अस्ल उसूल हकशिनासी है। खुदाशिनासी से इंसान खुदा हो जाता है। लिहाजा बुत, सनमखाना, कलीसा, किताबें इन्सान की मुईं और उसके रूहानी लड़कपन की मददगार हैं। इन्हीं के जरिए से वह आगे तरक्की करता जावेगा।"

—रहनुमायाने हिंद, पृ० १८, १९

हमको यहाँ मूर्तिपूजा का प्रतिपादन नहीं करना है। हमने इन वाक्यों को यहा इसलिये उठाया है कि देखें, हिंदुओं की मूर्तिपूजा में औरों को कुछ तत्त्व दृष्टिगत होता है या नहीं। मूर्तिपूजा हिंदुओं का प्रधान धर्म नहीं है। शास्त्र कहता है—

उत्तमं ब्रह्मसद्भावो मध्यमं ध्यानधारणा।
स्तुतिप्रार्थनाधमाज्ञेया वाह्यपूजाधमाधमा॥

ब्रह्म सद्भाव उत्तम, ध्यानधारणा मध्यम, स्तुति प्रार्थना अधम, और वाह्यपूजा अर्थात् किसी मूर्ति इत्यादि को सामने रखकर उपासना करना अधमाधम है। भागवत ऐसा परम वैष्णव ग्रंथ कहता है-"प्रतिमा अल्पबुद्धीनाम्" "सर्वत्रविजितात्मनाम्"। प्रतिमा अल्पबुद्धियों के लिये है, क्योंकि विजितात्माओं के लिये परमात्मा सर्वत्र है। प्रतीक उपासना का आभास वैदिक और दार्शनिक काल में मिलता है; किंतु प्रतिमा पूजा बौद्ध काल और उसके परवर्त्ती काल से हिंदुओं में केवल समाज की मंगल-कामना से गृहीत हुई है। जो और साधनाओं द्वारा परमात्मा की उपासना नहीं कर सकता, उसके लिये ही प्रतिमा-पूजा की व्यवस्था है। यदि विद्वानों और ज्ञानियों को प्रतिमा-पूजन करते देखा जाता है, तो उसका उद्देश्य लोक संरक्षण मात्र है; क्योंकि बुद्धि-भेद, सर्वसाधारण को भ्रांत कर सकता है। भारतवर्ष के धर्म्मनेताओं ने हिंदू धर्म्म के प्रधान और व्यापक सिद्धांतों पर आरूढ़ होकर सदा

इस बात की चेष्टा की है कि धर्मांधता से किसी तत्व का तिरस्कार न हो। यदि कोई कार्य सद्‌बुद्धि और सदुद्देश्य से किया जाता है, तो उसपर उन्होंने बलात् दोषारोपण करना उचित नहीं समझा। वे समझते थे कि संसार में समस्त मानव ही समान विचार के नहीं हैं। वे देखते ही थे कि बुद्धि का तारतम्य स्वाभाविक है; इसीलिये उन्होंने अधिकारी-भेद स्वीकार किया। उन्होंने उन सोपानों को नहीं तोड़ा जो ऊँचे चढ़ने के साधन हैं; किंतु यह अवश्य देखा कि किस सोपान पर चढ़ने का अधिकारी कौन है। उन्होंने विभिन्न विचारों, नाना आचार-व्यवहारों और अनेक उपासना पद्धतियों का सामंजस्य स्थापित किया, अनेक में एक को देखा, विरोध में अविरोध की महिमा दिखलाई, और दूसरों की अभावमयी वृत्ति को भावमयी बना दिया। उनको अनेक कंटकाकीर्ण पथों में चलना पड़ा, उनके सामने अनेक भयंकर प्रवाह आए, उन्होंने सामयिक परिवर्तनों की रोमांचकारी मूर्तियाँ देखीं, उन्होंने अनार्यों की अभद्र कल्पनाएँ अवलोकन कीं, किंतु सबका सहानुभूति के साथ आलिंगन किया, और सबमें उसी सर्वव्यापक की सत्ता स्थापित की। असाधारण प्रतिभावान विद्वान् श्रीयुत बाबू रवींद्रनाथ ठाकुर ब्रह्मसमाजी हैं, प्रतिमा-पूजक नहीं; किंतु वे क्या कहते हैं, सुनिए—

"विदेशी लोग जिसे मूर्ति-पूजा या बुतपरस्ती कहते हैं, उसे देखकर भारतवर्ष डरा नहीं। उसने उसे देखकर नाक-भौं नहीं सिकोड़ी। भारतवर्ष ने पुलिंदशबर व्याध आदि से भी वीभत्स सामग्री ग्रहण करके उसे शिव (कल्याण) बना लिया है—उसमें अपना भाव स्थापित कर दिया है—उसके अंदर भी अपनी आध्यात्मिकता को अभिव्यक्त कर दिखाया है।

भारत ने कुछ भी नहीं छोड़ा, सबको ग्रहण करके अपना बना लिया।"

—सरस्वती भाग १५, खंड १, सं० ६, पृ० ३०९

यही तो तत्वज्ञता है, यही तो धार्मिकता है। कबीर साहब किसी मुल्ला को मसजिद में बाँग देते देखते हैं, तो कहते हैं—

काकर पाथर जोरि के मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे क्या बहिरा हुआ खोदाय॥

परंतु क्या मुल्ला के बाँग देने का यही अभिप्राय है कि वह समझता है कि खुदा बिना गला फाड़कर चिल्लाए उसकी प्रार्थनाओं को न सुनेगा? यह तो उसका अभिप्राय नहीं है। उसकी बाँग का तो केवल इतना ही अर्थ है कि वह बाँग द्वारा अपने सहधर्मियों को ईश्वरोपासना का समय हो जाने की सूचना देता है, और उनको ईश्वर की आराधना के लिये सावधान करता है। फिर उसपर यह व्यंग करना कि क्या खुदा बहरा है जो वह यों चिल्लाता है, कितना असंगत है।

परमहंस रामकृष्ण का पवित्र नाम भारत में प्रसिद्ध है। आप उन्नीसवीं शताब्दी के भारत-भूमि के आदर्श महात्मा थे। सुविख्यात विद्वान् और दार्शनिक श्रीयुत मैक्समूलर ने एक स्थान पर कहा है—"यदि कहीं एकाधारा में ज्ञान और भक्ति का समान रूप से विकास दृष्टिगत हुआ, तो परमहंस रामकृष्ण में"। ऐसे महापुरुष पर बाँग का अद्भुत प्रभाव होता था। जब कभी इस महात्मा के कानों में, पवित्र गिरिजाघरों के उपासना-कालिक घंटों की लहर, या पुनीत मंदिरों में ध्वनित शंखों का निनाद, या पाक मसजिद में उठी मुल्ला की बाँग पड़ती, तो इस प्रबलता से उनके हृदय में भक्ति का

उद्रेक होता कि राह चलते समाधि लग जाती। क्यों ऐसा होता? इसलिये कि उनको उस ध्वनि, निनाद और बाँग में ईश्वर-प्रेम की एक अपूर्व धारा मिलती।

कबीर साहब कहते हैं—

हिंदु एकादसि चैाविस रोजा मुसलिम तीस बनाए।
ग्यारह मास कहो किन टारे ये केहि माँहि समाए॥
पूरब दिशि में हरि को बासा पश्चिम अलह मुकामा।
दिल में खोज दिलै में देखो यहै करीमा रामा॥
जो खोदाय मसजिद में बसत है और मुलुक केहि केरा।

—क० बी०, पृ० ३८८

हिंदुओं की चैाबीस एकादशी और मुसलमानों के तीस रोजा का यह अर्थ नहीं है कि ऐसा करके वे शेष ग्यारह महीनों को व्यर्थ सिद्ध करते हैं। यदि कोई बराबर तीन सै साठ दिन अपना धर्म्म-कृत्य नहीं कर सकता, या यदि कुछ ऐसे धर्म्म-कृत्य हैं जो लगातार तीन सै साठ दिन नहीं हो सकते, अतएव उनके लिये यदि कुछ विशेष दिन नियत किए जायँ, तो क्या यह युक्ति-संगत नहीं? यदि हिंदू पूर्व मुख और मुसलमान पश्चिम मुख बैठकर उपासना करता है, तो इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वह परमात्मा का ध्यान हृदय में नहीं करना चाहता। वह पूर्व या पश्चिम मुख बैठ-कर यही तो करता है! उपासना-काल में उसे किसी मुख बैठना ही पड़ेगा। फिर यदि उसने कोई मुख्य दिशा उपासना को सुलभ करने के लिये नियत कर ली, तो इसमें क्षति क्या? मसजिद, मंदिर या गिरिजा बनाने का यह अर्थ नहीं है कि ऐसा करके सर्व-स्थल-निवासी परमात्मा की व्यापकता अस्वी-कार की जाती है, उपासना की सुकरता ही उनके निर्माण का हेतु है। जो सर्वव्यापक भाव से उपासना नहीं कर सकता,

उसके लिये स्थान विशेष नियत कर देना क्या अल्पज्ञता है? धर्म-कृत्यों के पुनीत दिनों को छोड़ दीजिए, उपासना के लिये कोई समय या पद्धति न नियत कीजिए, मसजिद, मंदिर, गिरिजाघरों को तुड़वा डालिए, देखिए देश और समाज का कितना उपकार होता है? वास्तव में इन बातों में कुछ तत्त्व है, तभी यह प्रणाली सर्वसम्मत है। व्यासदेव कहते हैं—

रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यद्दुकल्पितम्।
स्तुत्या निर्वचनीयताखिलगुरो दूरीकृता यन्मया॥
व्यापित्वञ्च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थयात्रादिना।
क्षंतव्यं जगदीश तद्विकलता दोपत्रेयं मत्कृतम्॥

हे परमात्मन्! तुम अरूप हो, परंतु ध्यान द्वारा मैंने तुम्हारे रूप की कल्पना की, स्तुति द्वारा तुम्हारी अनिर्वचनीयता दूर की, तीर्थयात्रा करके तुम्हारी व्यापकता निराकृत की, अतएव तुम इन तीनों विकलता (अस्वाभाविकता या असंपूर्णता) दोषों को क्षमा करो। किंतु इतना ज्ञान होने पर भी उन्होंने ध्यान किया, स्तुति और तीर्थयात्रा की, तब तो क्षमा माँगने की आवश्यकता हुई। क्यों? इसलिये कि उपासना का मार्ग यही है। ध्यान-धारण भी सदोष, स्तुति-प्रार्थना भी सदोष, मूर्तिपूजा भी सदोष, फिर परमात्मा की उपासना कैसे हो? आप कहेंगे कि उपासना की आवश्यकता ही क्या? ब्रह्म सद्भाव ही ठीक है, जो कि उत्तम और निर्दोष है। परंतु ब्रह्म सद्भाव दस पाँच करोड़ मनुष्यों में भी किसी एक को होता है; फिर शेष लोग क्या करें? वही ध्यान-धारणा, स्तुति-प्रार्थना आदि उनको करनी ही पड़ेगी, चाहे वह सदोष हो, परंतु इसी क्रिया द्वारा उनको परमपुरुष की प्राप्ति होगी। अध्यापक रेखागणित की शिक्षा के लिये खड़ा होकर एक रेखा खींचता है, और एक बिंदु

बनाता है, और कहता है—देखो यह एक बड़ी रेखा है, और यह एक विंदु है परंतु वास्तव में रेखा और विंदु की परिभाषा के अनुसार न तो वह रेखा है और न वह विंदु। किंतु उसी कल्पित रेखा और विंदु के आधार से शिष्य अंत में रेखागणित शास्त्र में पारंगत होता है। इसी प्रकार कल्पित धर्म्मसाधनों से परमात्मा की प्राप्ति होती है। जैसे उस सदोष रेखा और विंदु का त्याग करने से कोई रेखागणित नहीं सीख सकता, उसी प्रकार धर्म्म के कल्पित साधनों का त्याग करने से, चाहे वह किसी अंश में सदोष ही क्यों न हो, कोई परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता; और यही तत्त्वज्ञता है।

धर्म्मग्रंथों और धर्म्म-साधनों के बंधन से स्वतंत्रता-प्रदान-मूलक विचार प्यारा लगता है, क्योंकि मनुष्य स्वभाव से स्वतंत्रताप्रिय है। वह बंधन को अच्छी आँख से नहीं देखता। जहाँ तक उसको बंधन छिन्न करने का अवसर हाथ आवे, उतना ही वह आनंदित होता है। किंतु बंधन ही समाज और स्वयं उसकी आत्मा और शरीर के लिये हितकर है। वह आहार-विहार में ही उच्छृंखलता ग्रहण करके देखे, क्या परिणाम होता है। जैसे राजनियमों का बंधन छिन्न होने पर देश में विप्लव हो जाता है, उसी प्रकार धर्म्मनियमों का बंधन टूटने पर आध्यात्मिक जगत् में विप्लव उपस्थित होता है। अतएव धर्म्मग्रंथों और धर्म्म-साधनों को बंधन कहकर उनसे सर्वसाधारण को मुक्त करने की उत्कंठा से उसके तत्त्वों की ओर उनका दृष्टि-आकर्षण विशेष उपकारी है।

मेरा विचार है कि कबीर साहब अंत में वेदांत धर्म्मावलंबी हो गए थे। इस ग्रंथ के वेदांतवाद शीर्षक शब्दों को

पढ़िए। देखिए, उनमें विचार की कितनी प्रौढ़ता है। विना पूर्णतया उस सिद्धांत पर आरूढ़ हुए विचार में इतनी प्रौढ़ता आ नहीं सकती। प्रोफेसर वी० वी० राय लिखते हैं—

"कवीरपंथियों की मुख्तलिफ कितावों से और आदि ग्रंथ में जो कवीर की बातों का इक्तिवास है, उन से साफ जाहिर होता है कि कवीरपंथी तालीम वेदांती तालीम की एक दूसरी सूरत है। इस अम्र में सूफियों से भी उनको वड़ी मदद मिली, क्योंकि दोनों तालीम करीव करीव एक सी हैं।"

—संप्रदाय, पृष्ठ ६९

वैष्णव और वेदांत धर्म्म दोनों प्रकांड वैदिक धर्म्म अर्थात् हिंदू धर्म्म की विशाल शाखाएँ हैं। यह वही उदार और महान् धर्म्म है कि जिससे वसुंधरा के समग्र पुनीत ग्रंथों ने कतिपय व्यापक सार्वभौम सिद्धांत का संग्रह करके अपने अपने कलेवर को समुज्वल किया है। कवीर साहव चाहे वैष्णव हों या वेदांती, चाहे संत मत के हों, चाहे अपने को और कुछ वतलावें, किंतु वे भी उसी धर्म्म के ऋणी हैं और उसी के आलोक से उन्होंने अपना प्रदीप प्रज्वलित किया।

शेष वक्तव्य

श्रीयुत मैक्समूलर जैसे असाधारण विदेशी विद्वान और श्रीमती एनीबेसेंट जैसी परम विदुषी विजातीय महिला ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि हिंदू धर्म्म के सिद्धांत बहुत ही उदार, व्यापक और सर्वदेशदर्शी हैं। वास्तव में जैसे ही हिंदू धर्म्म के सिद्धांत महान् और गंभीर हैं, वैसे ही पूर्ण सार्वभौम और सार्वजनिक भी हैं। वैशेषिक

दर्शन के निम्नलिखित सूत्र जैसी व्यापक और उदात्त परि-
भाषा धर्म्म की कहाँ मिलेगी ?

यतोभ्युदयनिःश्रेयस् सिद्धिः स धर्म्मः

जिससे अभ्युदय और कल्याण अथवा परमार्थ की सिद्धि
हो, वही धर्म्म है।

हिंदू धर्म्म को छोड़कर कौन कह सकता है—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह अपना और पराया है, यह लघुचेतसों का विचार
है; जो उदार चरित हैं, वसुधा ही उनका कुटुंब है। क्या
इससे भी बढ़कर भ्रातृभाव की कोई शिक्षा हो सकती है?
हिंदू धर्म्म इससे भी ऊँचा उठा, उसने भ्रातृभाव में कुछ
विभेद देखा; अतएव मुक्तकंठ से कहा—"आत्मवत् सर्व-
भूतेषु यः पश्यति स पंडितः" मनुष्य मात्र ही की नहीं, सर्व-
भूत की आत्मा को जो अपनी आत्मा के समान देखता है, वही
विज्ञ है। एक धर्म्मवाला दूसरे धर्म्म को बाधा पहुँचाकर
ही आत्मप्रसाद लाभ करता है, परंतु हिंदू धर्म्म इसको
युक्तिसंगत नहीं समझता. वह गंभीर भाव से कहता है—

धर्म्मः यो बाधते धर्म्मं न स धर्म्मः कुधर्म्म तत्।
धर्म्माविरोधी यो धर्म्मः स धर्म्मः सत्यविक्रमः॥

जो धर्म्म दूसरे धर्म्म को बाधा पहुँचाता है, वह धर्म्म
नहीं कुधर्म्म है। जो धर्म्म दूसरे धर्म्म का अविरोधी है,
सत्य पराक्रमशील धर्म्म वही है। इतना ही नहीं, वह अपना
हृदय उदार एवं उन्नत बनाकर कहता है—

रुचीनां वैचित्र्यात् कुटिलऋजुनानापथयुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

नाना प्रकार की रुचि होने के कारण ऋजु और कुटिल नाना पथ भी हैं; किंतु हे परमात्मा सबका गम्य तू ही है, जैसे सर्व स्थानों से जल समुद्र में ही पहुँचता है। उसी के शास्त्र समूह का विश्व प्रेम का आधार स्वरूप यह वाक्य है—

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

सब सुखी हों, सब सकुशल रहें, सबका कल्याण हो, कोई दुःखभागी न हो। वही संसार के सम्मुख खड़े होकर तार स्वर से कहता है—

यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिंतयेत् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

जो जो अपनी आत्मा के लिये चाहते हो, वही दूसरों के लिये भी चाहो, जिसको अपनी आत्मा के प्रतिकूल समझते हो, उसको दूसरों के लिये मत करो। इतना लिखकर मैं आप लोगों का ध्यान कबीर साहब की शिक्षाओं की ओर आकर्षित करता हूँ। हिंदू धर्म्म के उक्त विचारों की सार्थकता तभी है, जब हम लोग भी वास्तव में उनके अनुकूल चलने की चेष्टा करें। यदि हम उन विचारों को सामने रखकर केवल गर्व करते हैं, और उनके अनुकूल आचरण करना नहीं चाहते, तो न केवल हमलोग अपनी आत्मा को कलुषित करते हैं, वरन् लोगों की दृष्टि में अपने शास्त्रों की भी मर्य्यादा घटाते हैं। कबीर साहब की शिक्षाओं को आप पढ़िए, मनन कीजिए, उनके मिथ्याचार खंडन के अद्भुत और निर्भीक भाव को देखिए, उनकी सत्यप्रियता अवलोकन कीजिये, उनमें आपको अधिकांश हिंदू भावों की ही प्रभा मिलेगी। यदि आप की रुचि और विचार के प्रतिकूल कुछ

बातें उसमें मिलें, तो भी उसे आप देखिए, और उसमें से तत्त्व ग्रहण कीजिए; क्योंकि विवेकशील सज्जनों का मार्ग यही है। नाना विचार देखने से ही मनुष्य को अनुभव होता है। कबीर साहब भी मनुष्य थे, उनके पास भी हृदय था; कुछ संस्कार उनका भी था; अतएव समय-प्रवाह में पड़कर, हृदय पर आघात होने पर संस्कार के प्रबल पड़ जाने पर उनके स्वर का विकृत हो जाना असंभव नहीं। उनका कटु बातें कहना चकितकर नहीं। किंतु यदि आप उन्हें नहीं पढ़ेंगे, तो अपने विचारों को मर्य्यादापूर्ण करना कैसे सीखेंगे। वे प्रतिमा-पूजन के कट्टर विरोधी हैं, अवतारवाद को नहीं मानते; परंतु इससे क्या? परमात्मा की भक्ति करना तो बतलाते हैं, आपको ईश्वर-विमुख तो नहीं करते। हिंदू धर्म्म का चरम लक्ष्य यही तो है! आपके कुल साधनों को वे काम में लाना नहीं चाहते, न लावें; परंतु जिन साधनों को वे काम में लाते हैं, वे भी तो आप ही के हैं। वह रुचिवैचित्र्य है। रुचिवैचित्र्य स्वाभाविक है। हिंदू धर्म्म उसको ग्रहण करता है, उससे घबराता नहीं। वे वेद-शास्त्र की निंदा करते हैं, हिंदू महापुरुषों को उन्मार्गगामी बतलाते हैं। हिंदू धर्म्मनेताओं की धूल उड़ाते हैं, यह सत्य है। परंतु उनके पंथवालों के साथ आप ऐक्य कैसे स्थापन करेंगे, जब तक इन विचारों को न जानेंगे। इसके अतिरिक्त जब वे वेद-शास्त्रों के सिद्धांतों का ही प्रतिपादन करते हैं, हिंदू महापुरुषों के प्रदर्शित पथ पर ही चलते हैं, हिंदू धर्म्मनेताओं की प्रणाली का ही अनुसरण करते हैं, तब उनका उक्त विचार स्वयं एकदेशी हो जाता है और रूपांतर से आप को ही इष्टप्राप्ति होती है। विवेकी पुरुष काम चाहता है, नाम नहीं। परमार्थ के लिये वह अपमान की परवाह नहीं करता। वे

मिथ्याचारों का प्रतिवाद तीव्र और असंयत भाषा में करते हैं; परंतु उसे हमें सह्य करना चाहिए, दो विचारों से। एक तो यह कि यदि हमने वास्तव में धर्म्म के साधनों को आडंबर बना लिया है, तो किसी न किसी के मुख से हमको ऐसी बातें सुननी ही पड़ेंगी, दूसरे यह कि यदि ये अधिकांश अमूलक हैं, तो भी कोई क्षति नहीं; क्योंकि देखिए, भगवान मनु क्या कहते हैं—

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकांक्षेदवमानस्य सर्वदा॥

ब्राह्मण को चाहिये कि सम्मान से विष के समान बचे, और अपमान की अमृत के तुल्य इच्छा करे।

इससे अधिक मुझे और नहीं कहना है। आशा है, आप लोग 'कबीर वचनावली' का उचित समादर करेंगे और प्रसिद्ध मासिक पत्रिका सरस्वती भाग १५ खंड १ संख्या ६। पृ ३०७ में प्रकाशित विद्वद्वर श्रीयुत रवींद्रनाथ टाकुर के निम्नलिखित वाक्य को सदा स्मरण रखेंगे।

"भारत की चिरकाल से यही चेष्टा देखी जाती है कि वह अनेकता में एकता स्थापित करना चाहता है; वह अनेक मार्गों को एक लक्ष्य की तरफ अभिमुख करना चाहता है; वह बहुत के बीच किसी एक को निःसंशय रूप से, अंतरतर रूप से, उपलब्ध करना चाहता है। उसका सिद्धांत या उद्देश्य यह है कि बाहर जो विभिन्नता देख पड़ती है, उसे नष्ट करके उसके अंदर जो निगूढ़ संयोग देख पड़ता है, वह उसे प्राप्त करे।"

हरिऔध।

कबीर वचनावली की आधार-भूत पुस्तकों का विवरण

सं०	नाम पुस्तक	विवरण
१	आदि ग्रंथ	उपनाम ग्रंथसाहब, गुरुमुखी पुस्तक, गुरु अर्जुनदेव संगृहीत, सन् १९०३ में नवलकिशोर प्रेस में नागरी अक्षरों में मुद्रित।
२	कबीरबीजक	हिंदी पुस्तक—महाराज विश्वनाथ सिंह कृत टीका सहित, सन् १९०७ में नवलकिशोर प्रेस लखनऊ में मुद्रित।
३	कबीर शब्दावली (प्रथम भाग)	हिंदी पुस्तक-स्वामी वेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद संगृहीत सन् १९१३ में उक्त प्रेस में मुद्रित
४	कबीर शब्दावली (द्वितीय भाग)	ऐजन सन् १९०८ में मुद्रित।
५	कबीर शब्दावली (तृतीय भाग)	ऐजन सन् १९१३ में मुद्रित।
६	कबीर शब्दावली (चतुर्थ भाग)	ऐजन सन् १९१४ में मुद्रित।
७	कबीर कसौटी	हिंदी पुस्तक—बाबू लहनासिंह कबीरपंथी डिप्टी कंसरवेटर जंगलात कृत, सन् १९०६ में श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बंबई में मुद्रित।

सं०	नाम पुस्तक	विवरण
८	कबीर ऐंड दी कबीर पंथ	अँग्रेजी पुस्तक—रेवरेंड जी. एच. वेस्कट एम. ए. विरचित, सन् १९०७ में क्राइस्ट चर्च मिशन प्रेस कानपुर में मुद्रित।
९	चौरासी अंग की की साखी	प्राचीन हस्तलिखित हिंदी पुस्तक-कबीरपंथी साधु बिहारीदास आजमगढ़ निवासी से प्राप्त।
१०	भारतवर्षीय उपासक संप्रदाय	बँगला पुस्तक—श्रीयुत अक्षयकुमार दत्त प्रणीत, सन् १८८८ में नूतन यंत्रालय कलकत्ता में मुद्रित।
११	भक्ति सुधाबिंदु स्वाद	हिंदी पुस्तक—महात्मा सीताराम शरण भगवानप्रसाद-विरचित, संवत् १९६०-६६ में हितचिंतक प्रेस बनारस में मुद्रित।
१२	मिश्रबंधु विनोद (प्रथम खंड)	हिंदी पुस्तक—मिश्रबंधु विरचित, इंडियन प्रेस इलाहाबाद में संवत् १९७० में मुद्रित।
१३	मजहुमायाने हिंद	उर्दू पुस्तक—श्रीयुत मन्मथनाथ दत्त एम.ए. की अँगरेजी पुस्तक प्रॉफेट्स आफ इंडिया का अनुवाद, बाबू नारायणप्रसाद वर्मा अनुवादित आहमदी प्रेस अलीगढ़ में सन् १९०४ में मुद्रित।
१४	सटीक कबीर बीजक	हिंदी पुस्तक—कबीरपंथी साधु पूरनदास विरचित, संवत् १९६७ में श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बंबई, में मुद्रित।

सं०	नाम पुस्तक	विवरण
१५	सम्प्रदाय	उर्दू पुस्तक—क्रिश्चियन विद्वान् प्रोफेसर वो. वी. राय रचित, मिशन प्रेस लुधियाना में सन् १९०६ में मुद्रित।
१६	साखी संग्रह	हिंदी पुस्तक—स्वामी वेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद संगृहीत उक्त प्रेस में सन् १९१२ में मुद्रित।
१७	ज्ञानगुदड़ी वो रेख्ते	ऐजन सन् १९१० में मुद्रित।

कबीर वचनावली

प्रथम खंड

कर्त्ता—निर्णय

दोहा

अछै पुरुष इक पेड़ है निरँजन वाकी डार।
तिरदेवा साखा भये पात भया संसार॥ १ ॥
साहेब मेरा एक है दूजा कहा न जाय।
दूजा साहेब जो कहूँ साहेब खरा रिसाय॥ २ ॥
जाके मुँह माथा नहीं नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप बास तें पातरा ऐसा तत्त्व अनूप॥ ३ ॥
देही माहिं बिदेह है साहेब सुरति सरूप।
अनँत लोक में रमि रहा जाके रंग न रूप॥ ४ ॥
चार भुजा के भजन में भूलि परे सब संत।
कबिरा सुमिरै तासु को जाके भुजा अनंत॥ ५ ॥
जनम मरन से रहित है मेरा साहिब सोय।
बलिहारी वहि पीव की जिन सिरजा सब कोय॥ ६ ॥
एक कहौं तो है नहीं दोय कहौं तो गारि।
है जैसा तैसा रहै कहै कबीर बिचारि॥ ७ ॥
रेख रूप जेहि है नाहीं अधर धरो नहीं देह।
गगन मँडल के मध्य में रहता पुरुष बिदेह॥ ८ ॥

सोई मेरा एक तू और न दूजा कोय।
जो साहव दूजा कहै दूजा कुल को होय ॥ ९ ॥
सर्गुण की सेवा करौ निर्गुण का करु ज्ञान।
निर्गुण सर्गुण के परे तहैं हमारा ध्यान ॥ १० ॥

शक्तिमत्ता

साहेव सों सव होत हैं वंदे तें कछु नाहिं।
राई ते पर्वत करे पर्वत राई माहिं ॥ ११ ॥
वहन वहंता थल करै थल कर वहन वहोय।
साहेव हाथ वड़ाइया जस भात्रै तस होय ॥ १२ ॥
साहेव सा समरथ नहीं गरुश्रा गहिर गँभीर।
श्रौगुन छोड़े गुन गहे छिनक उतारै तीर ॥ १३ ॥
जो कुछ किया सो तुम किया मैं कछु कीया नाहिं।
कहो कही जो मैं किया तुम ही थे मुझ माहिं ॥ १४ ॥
जाको राखै साँइयाँ मारि न सक्कै कोय।
वाल न वाँका करि सकै जो जग वैरी होय ॥ १५ ॥
साँईं मेरा वानिया सहज करै व्योपार।
विन डाँड़ी विन पालरे तौले सव संसार ॥ १६ ॥
साँईं तुझसे वाहिरा कौड़ी नाहिं विकाय।
जाके सिर पर धनी तू लाखों मोल कराय ॥ १७ ॥

सर्वघट व्यापकता

तेरा साँईं तुज्झ में ज्यों पुहुपन में वास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों फिर फिर ढूँढ़े घास ॥ १८ ॥

जा कारन जग ढूँढ़िया सो तो घट ही माहिं।
परदा दीया भरम का तातें सूझै नाहिं॥ १९॥
समझै तो घर में रहे परदा पलक लगाय।
तेरा साहेब तुज्झ में अनत कहूँ मत जाय॥ २०॥
जेता घट तेता मता बहु बानी बहु भेख।
सब घट व्यापक है रहा सोई आप अलेख॥ २१॥
भूला भूला क्या फिरै सिर पर बँधि गई बेल।
तेरा साँई तुज्झ में ज्यों तिल माहीं तेल॥ २२॥
ज्यों तिल माहीं तेल है ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साँई तुज्झ में जागि सकै तो जागि॥ २३॥
ज्यों नैनन में पुतरी यों खालिक घट माहिं।
मूरख लोग न जानहीं बाहर ढूँढ़न जाहिं॥ २४॥
पावक रूपी साँइयाँ सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं तातें बुझि बुझि जाय॥ २५॥

शब्द

कबिरा शब्द सरीर में बिन गुन बाजै ताँत।
बाहर भीतर रमि रहा तातें छूटी भ्राँत॥ २६॥
सब्द सब्द बहु अंतरा सार सब्द चित देय।
जा सब्दै साहिब मिलै सोइ सब्द गहि लेय॥ २७॥
एक सब्द सुखखान है एक सब्द दुखरास।
एक सब्द बंधन कटै एक सब्द गल फाँस॥ २८॥
सब्द सब्द सब कोइ कहै सब्द के हाथ न पाँव।
एक सब्द औषधि करै एक सब्द कर घाव॥ २९॥
सब्द बराबर धन नहीं जो कोइ जानै बोल।
हीरा तो दामों मिलै सब्दहिं मोल न तोल॥ ३०॥

मता हमारा मंत्र है हम सा होय सो लेय।
सब्द हमारा कल्प-तरु जो चाहै सो देय ॥ ३१ ॥
सीतल सब्द उचारिये अहम् आनिए नाहिं।
तेरा प्रीतम तुज्झ में सत्रू भी तुम्ह माहिं ॥ ३२ ॥
वह मोती मत जानियो पुहै पोत के साथ।
यह तौ मोती सब्द का बेधि रहा सब गात ॥ ३३ ॥
जंत्र मंत्र सब झूठ है मत भरमो जग कोय।
सार सब्द जाने बिना कागा हंस न होय ॥ ३४ ॥

—:o:—

नाम

आदि नाम पारस अहै मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया छूटा बंधन मोह ॥ ३५ ॥
आदि नाम निज सार है बूझि लेहु सो हंस।
जिन जान्यो निज नाम को अमर भयो सो बंस ॥ ३६ ॥
आदि नाम निज मूल है और मंत्र सब डार।
कह कबीर निज नाम बिनु बूड़ि मुआ संसार ॥ ३७ ॥
नाम रतन धन पाइकै गाँठी बाँध न खोल।
नाहीं पन नहिं पारखू नहिं गाहक नहिं मोल ॥ ३८ ॥
सभी रसायन हम करी नहीं नाम सम कोय।
रंचक घट में संचरै सब तन कंचन होय ॥ ३९ ॥
जबहिं नाम हिरदे धरा भया पाप का नास।
मानो चिनगी आग की परी पुरानी घास ॥ ४० ॥
ज्ञान-दीप परकास करि भीतर भवन जराय।
तहाँ सुमिर सतनाम को सहज समाधि लगाय ॥ ४१ ॥
सुपनेहुँ में बर्राइके धोखेहुँ निकरे नाम।
वाके पग की पैंतरी मेरे तन को चाम ॥ ४२ ॥

जसो माया मन रम्यो तैसो नाम रमाय ।
तारा मंडल वेधिकै तब अमरापुर जाय ॥ ४३ ॥
पावक रूपी नाम है सब घट रहा समाय ।
चित चकमक लागै नहीं धूआँ ह्वै ह्वै जाय ॥ ४४ ॥
नाम विना वेकाम है छप्पन कोटि बिलास ।
का इंद्रासन वैठिबो का वैकुंठ निवास ॥ ४५ ॥
लूटि सकै तो लूटि ले सत्त नाम की लूटि ।
पाछे फिरि पछताहुगे प्रान जाहिं जव छूटि ॥ ४६ ॥
शून्य मरै अजपा मरै अनहद हू मरि जाय ।
राम सनेही ना मरै कह कवीर समुझाय ॥ ४७ ॥

परिचय

लाली मेरे लाल की जित देखों तित लाल ।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गइ लाल ॥ ४८ ॥
जिन पावन भुइँ बहु फिरे घूमे देस विदेस ।
पिया मिलन जव होइया आँगन भया विदेस ॥ ४९ ॥
उलटि सामना आप में प्रगटी जोति अनंत ।
साहेव सेवक एक सँग खेलैं सदा वसंत ॥ ५० ॥
जोगी हुआ झलक लगी मिटि गया ऐंचा तान ।
उलटि समाना आप में हूआ ब्रह्म समान ॥ ५१ ॥
नोन गला पानी मिला वहुरि न भरिहै गौन ।
सुरत शब्द मेला भया काल रहा गहि मौन ॥ ५२ ॥
कहना था सो कह दिया अव कछु कहा न जाय ।
एक गया दूजा रहा दरिया लहर समाय ॥ ५३ ॥
उनमुनि सों मन लागिया गगनहिं पहुँचा जाय ।
चाँद विहूना चाँदना अलख निरंजन राय ॥ ५४ ॥

मेरी मिटी मुक्ता भया पाया अगम निवास ।
अब मेरे दूजा नहीं एक तुम्हारी आस ॥ ५५ ॥
सुरति समानी निरति में अजपा माहीं जाप ।
लेख समाना अलख में आपा माहीं आप ॥ ५६ ॥
पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान ।
कहिबे की शोभा नहीं देखे ही परमान ॥ ५७ ॥

पिंजर प्रेम प्रकासिया अंतर भया उजास ।
सुख करि सूती महल में बानी फूटी वास ॥ ५८ ॥
आया था संसार में देखन को बहु रूप ।
कहै कबीरा संत हो परि गया नजर अनूप ॥ ५९ ॥

पाया था सो गहि रहा रसना लागी स्वाद ।
रतन निराला पाइया जगत टटोला बाद ॥ ६० ॥
कबिरा देखा एक अँग महिमा कही न जाय ।
तेजपुंज परसा धनी नैनों रहा समाय ॥ ६१ ॥

गगन गरजि बरसै अमी बादल गहिर गँभीर ।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी भीँजै दास कबीर ॥ ६२ ॥
दीपक जोया ज्ञान का देखा अपरं देव ।
चार बेद की गम नहीं जहाँ कबीरा सेव ॥ ६३ ॥

अब गुरु दिल में देखिया गावन को कछु नाहिं ।
कबिरा जब हम गावते तब जाना गुरु नाहिं ॥ ६४ ॥
मान सरोवर सुगम जब हंसा केलि कराय ।
मुकताहल मोती चुगै अब उड़ि अंत न जाय ॥ ६५ ॥

सुन्न मँडल में घर किया बाजै शब्द रसाल ।
रोम रोम दीपक भया प्रगटे दीनदयाल ॥ ६६ ॥
सुरत उड़ानी गगन को चरन बिलंबी जाय ।
सुख पाया साहेब मिला आनँद उर न समाय ॥ ६७ ॥

पानी ही ते हिम भया हिम ही गया बिलाय।
कबिरा जो था सोइ भया अब कछु कहा न जाय॥ ६८॥
सुन्न सरोवर मीन मन नीर तीर सब देव।
सुधा सिंधु सुख बिलस ही बिरला जाने भेव॥ ६९॥
मैं लागा उस एक से एक भया सब माहिं।
सब मेरा मैं सबन का तहाँ दूसरा नाहिं॥ ७०॥
गुन इंद्री सहजै गए सतगुरु करी सहाय।
घट में नाम प्रगट भया बकि बकि मरै बलाय॥ ७१॥
कबिरा भरम न भाजिया बहु बिधि धरिया भेख।
साँई के परिचय बिना अंतर रहियो रेख॥ ७२॥

अनुभव

आतम अनुभव ज्ञान की जो कोइ पूछै बात।
सो गूँगा गुड़ खाइ कै कहै कौन मुख स्वाद॥ ७३॥
ज्यों गूँगे के सैन को गूँगा ही पहिचान।
त्यों ज्ञानी के सुक्ख को ज्ञानी होय सो जान॥ ७४॥
कागद लिखै सो कागदी की ब्योहारी जीव।
आतम दृष्टि कहाँ लिखै जित देखै तित पीव॥ ७५॥
लिखा-लिखी की है नहीं देखा-देखी बात।
दुलहा दुलहिन मिल गए फीकी पड़ी बरात॥ ७६॥
भरो होय सो रीतई रीतो होय भराय।
रीतो भरो न पाइए अनुभव सोइ कहाय॥ ७७॥

सारग्राहिता

साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै थोथा देइ उड़ाय॥ ७८॥
औगुन को तो ना गहै गुनही को लै बीन।
घट घट महँके मधुप ज्यों परमातम लै चीन॥ ७९॥
हंसा पय को काढ़ि ले छीर नीर निरवार।
ऐसे गहै जो सार को सो जन उतरै पार॥ ८०॥
छीर रूप सतनाम है नीर रूप व्यवहार।
हंस रूप कोइ साध है तत का छाननहार॥ ८१॥

समदर्शिता

समदृष्टी सतगुरु किया दीया अविचल ज्ञान।
जहँ देखौं तहँ एक ही दूजा नाहीं आन॥ ८२॥
समदृष्टी सतगुरु किया मेटा जरत विकार।
जहँ देखौं तहँ एक ही साहेब का दीदार॥ ८३॥
समदृष्टी तब जानिए सीतल समता होय।
सब जीवन की आतमा लखै एक सी सोय॥ ८४॥

—०—

भक्ति

जब लग नाता जगत का तब लग भक्ति न होय।
नाता तोड़ै हरि भजै भक्त कहावै सोय॥ ८५॥
भक्ति भेष बहु अंतरा जैसे धरनि अकास।
भक्त लीन गुरु चरन में भेष जगत की आस॥ ८६॥

देखा देखी भक्ति का कबहुँ न चढ़सी रंग ।
बिपति पड़े यों छाँड़सी ज्यों केंचुली भुजंग ॥ ८७ ॥
ज्ञान सँपूरन ना भिदा हिरदा नाहिं जुड़ाय ।
देखा देखी भक्ति का रंग नहीं ठहराय ॥ ८८ ॥
खेत बिगार्‌यो खरतुआ सभा बिगारी कूर ।
भक्ति बिगारी लालची ज्यों केसर में धूर ॥ ८९ ॥
कामी क्रोधी लालची इन तें भक्ति न होय ।
भक्ति करै कोइ सूरमा जाति बरन कुल खोय ॥ ९० ॥
जल ज्यों प्यारा माछरी लोभी प्यारा दाम ।
माता प्यारा बालका भक्त पियारा नाम ॥ ९१ ॥
जब लगि भक्ति सकाम है तब लगि निस्फल सेव ।
कह कबीर वह क्यों मिलै निःकामी निज देव ॥ ९२ ॥
भक्ति गेंद चौगान की भावै कोइ लै जाय ।
कह कबीर कछु भेद नहिं कहा रंक कह राय ॥ ९३ ॥
लव लागी तब जानिए छूटि कभूँ नहिं जाय ।
जीवत लव लागी रहै मूए तहँहिं समाय ॥ ९४ ॥
लगी लगन छूटै नहीं जीभ चोंच जरिजाय ।
मीठा कहा अँगार में जाहि चकोर चबाय ॥ ९५ ॥
सोओं तो सुपने मिलै जागौं तो मन माहिं ।
लोयन राता सुधि हरी बिछुरत कबहूँ नाहिं ॥ ९६ ॥
तूँ तूँ करता तूँ भया तुझ में रहा समाय ।
तुझ माहीं मन मिलि रहा अब कहुँ अनत न जाय ॥ ९७ ॥
अर्ब खर्ब लौं दर्ब है उदय अस्त लौं राज ।
भक्ति महातम ना तुलै ये सब कौने काज ॥ ९८ ॥
अंध भया सब डोलई यह नहिं करै विचार ।
हरि-भक्ती जाने बिना बूड़ि मुआ संसार ॥ ९९ ॥

और कर्म सब कर्म है भक्ति कर्म निष्कर्म।
कहै कबीर पुकारि के भक्ति करो तजि धर्म ॥१००॥

—o—

प्रेम

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुईं धरै तब पैठे घर माहिं ॥१०१॥
सीस उतारै भुईं धरै; ता पर राखै पाव।
दास कबीरा यों कहै ऐसा होय तो आव ॥१०२॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देइ लै जाय ॥१०३॥
प्रेम पियाला जो पियै सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सकै नाम प्रेम का लेय ॥१०४॥
छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै प्रेम कहावै सोय ॥१०५॥
जब मैं था तब गुरु नहीं अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी तामैं दो न समाहिं ॥१०६॥
जा घट प्रेम न संचरै सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहार की साँस लेत बिनु प्रान ॥१०७॥
उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनका से मिला तिनका तिनके पास ॥१०८॥
सौ जोजन साजन बसै मानो हृदय मँझार।
कपट सनेही आँगने जानु समुंदर पार ॥१०९॥
यह तत वह तत एक है एक प्राण दुइ गात।
अपने जिय से जानिए मेरे जिय की बात ॥११०॥
हम तुम्हरो सुमिरन करैं तुम मोहिं चितवौ नाहिं।
सुमिरन मन की प्रीति है सो मन तुमही माहिं ॥१११॥

प्रीत जो लागी घुल गई पैठि गई मन माहिं ।
रोम रोम पिउ-पिउ करै मुख की सरधा नाहिं ।।११२।।
जो जागत सो स्वप्न में ज्यों घट भीतर स्वाँस।
जो जन जाको भावता सो जन ताके पास ।।११३।।
पीया चाहे प्रेम रस राखा चाहे मान ।
एक म्यान में दो खड़ग देखा सुना न कान ।।११४।।
कबिरा प्याला प्रेम का अंतर लिया लगाय ।
रोम रोम में रमि रहा और अमल क्या खाय ।।११५।।
कबिरा हम गुरु रस पिया बाकी रही न छाक ।
पाका कलस कुम्हार का बहुरि न चढ़सी चाक ।।११६।।
सबै रसायन मैं किया प्रेम समान न कोय ।
रति एक तन में संचरै सब तत कंचन होय ।।११७।।
राता माता नाम का पीया प्रेम अघाय ।
मतवाला दीदार का माँगै मुक्ति बलाय ।।११८।।
मिलना जग में कठिन है मिलि बिछुड़ो जनि कोय ।
बिछुड़े सज्जन तेहि मिलै जिन माथे मनि होय ।।११९।।
जोई मिलै सो प्रीति में और मिलै सब कोय ।
मन सो मनसा ना मिलै देह मिले का होय ।।१२०।।
नैनों की करि कोठरी पुतली पलँग बिछाय ।
पलकों की चिक डारिके पिय को लिया रिझाय ।।१२१।।
जब लगि मरने से डरै तब लगि प्रेमी नाहिं ।
बड़ी दूर है प्रेम घर समझ लेहु मन माहिं ।।१२२।।
हरि से तू जनि हेत कर कर हरिजन से हेत ।
माल मुलुक हरि देत हैं हरिजन हरि हीं देत ।।१२३।।
कहा भयो तन बीछुरे दूरि बसे जे बास ।
नैना ही अंतर परा प्राण तुम्हारे पास ।।१२४।।

जल में बसै कमोदिनी चंदा बसै अकास।
जो है जाको भावता सो ताही के पास ॥१२५॥
प्रीतम को पतियाँ लिखूँ जो कहुँ होय बिदेस।
तन में मन में नैन में ताको कहा सँदेस ॥१२६॥
अगिनि आँच सहना सुगम सुगम खड़ग की धार।
नेह निभावन एकरस महा कठिन व्योहार ॥१२७॥
नेह निभाए ही बनै सोचै बनै न आन।
तन दे मन दे सीस दे नेह न दीजै जान ॥१२८॥
काँच कथीर अधीर नर ताहि न उपजै प्रेम।
कह कबीर कसनी सहै कै हीरा कै हेम ॥१२९॥
कसत कसौटी जो टिकै ताको शब्द सुनाय।
सोई हमरा बंस है कह कबीर समुझाय ॥१३०॥

स्मरण

दुख में सुमिरन सब करै सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै तो दुख काहे होय ॥१३१॥
सुख में सुमिरन ना किया दुख में कीया याद।
कह कबीर ता दास की कौन सुनै फिरियाद ॥१३२॥
सुमिरन की सुधि यों करो जैसे कामी काम।
एक पलक बिसरै नहीं निस दिन आठो जाम ॥१३३॥
सुमिरन सों मन लाइए जैसे नाद कुरंग।
कह कबीर बिसरै नहीं प्राण तजै तेहि संग ॥१३४॥
सुमिरन सुरत लगाइके मुख तें कछू न बोल।
बाहर के पट देइ के अंतर के पट खोल ॥१३५॥
माला फेरत जुग भया फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे मन का मनका फेर ॥१३६॥

कविरा माला मनहिं की और सँसारी भेख।
माला फेरे हरि मिलैं गले रहँट के देख ॥१३७॥
कविरा माला काठ की वहुत जतन का फेर।
माला स्वाँस उसास की जामें गाँठ न मेर ॥१३८॥
सहजे ही धुन होत है हरदम घट के माहिं।
सुरत शब्द मेला भया मुख की हाजत नाहिं ॥१३९॥
माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दहुँदिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहिं ॥१४०॥
तन थिर मन थिर वचन थिर सुरत निरत थिर होय।
कह कवीर इस पलक को कलप न पावै कोय ॥१४१॥
जाप मरै अजपा मरै अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में ताहि काल नहिं खाय ॥१४२॥
कबिर छुधा है कूकरी करत भजन में भंग।
याको टुकड़ा डारि कै सुमिरन करो निसंक ॥१४३॥
तूँ तूँ करता तूँ भया मुझमें रही न हूँ।
वारी तेरे नाम पर जित देखूँ तित तूँ ॥१४४॥

विश्वास

कविरा क्या मैं चिंतहूँ मम चिंते क्या होय।
मेरी चिंता हरि करैं चिंता मोहिं न कोय ॥१४५॥
साधू गाँठ न वाँधई उदर समाता लेय।
आगे पाछे हरि खड़े जव माँगे तव देय ॥१४६॥
पौ फाटी पगरा भया जागे जीवा जून।
सव काहू को देत है चोंच समाता चून ॥१४७॥
कर्म करीमा लिखि रहा सव कुछ लिखा न होय।
मासा घटै न तिल वढ़ै जो सिर फोड़ै कोय ॥१४८॥

साँईं इतना दीजिये जामें कुटुँब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय ॥१४९॥
पाँडर पिंजर मन भँवर अरथ अनूपम वास।
एक नाम सींचा अमी फल लागा विस्वास ॥१५०॥
गाया जिन पाया नहीं अनगाए तें दूरि।
जिन गाया विस्वास गहि ताके सदा हजूरि ॥१५१॥

बिरहिन

बिरहिन देय सँदेसरा सुनो हमारे पीव।
जल बिन मच्छी क्यों जिए पानी में का जीव ॥१५२॥
अँखियाँ तो झाँई परीं पंथ निहार निहार।
जीहड़िया छाला परा नाम पुकार पुकार ॥१५३॥
नैनन तो झरि लाइया रहट वहै निसु वास।
पपिहा ज्यों पिउ-पिउ रटै पिया मिलन की आस ॥१५४॥
बहुत दिनन की जोवती रटत तुम्हारो नाम।
जिव तरसै तुव मिलन को मन नाहीं विश्राम ॥१५५॥
बिरह भुवंगम तन डसा मंत्र न लागै कोय।
नाम वियोगी ना जिए जिए तो बाउर होय ॥१५६॥
बिरह भुवंगम पैठिकै किया कलेजे घाव।
बिरही अंग न मोड़िहैं ज्यों भावे त्यों खाव ॥१५७॥
कै बिरहिन को मीच दे कै आपा दिखलाय।
आठ पहर का दाझना मो पै सहा न जाय ॥१५८॥
बिरह कमंडल कर लिये बैरागी दो नैन।
माँगैं दरस मधूकरी छके रहैं दिन रैन ॥१५९॥
येहि तन का दिवला करों बाती मेलों जीव।
लोहू सींचों तेल ज्यों कब मुख देखों पीव ॥१६०॥

बिरहा आया दरस को कडुआ लागा काम ।
काया लागी काल होय मीठा लागा नाम ॥१६१॥
हँस हँस कंत न पाइया जिन पाया तिन रोय ।
हाँसी खेले पिय मिलैं कौन दुहागिन होय ॥१६२॥
माँस गया पिंजर रहा ताकन लागे काग ।
साहेब अजहुँ न आइया मंद हमारे भाग ॥१६३॥
अँखियाँ प्रेम बसाइया जनि जाने दुखदाय ।
नाम सनेही कारने रो रो रात विताय ॥१६४॥
हवस करै पिय मिलन की औ सुख चाहै अंग ।
पीर सहे बिनु पदमिनी पूत न लेत उछंग ॥१६५॥
विरहिन ओदी लाकड़ी सपचे औ धुँधुआय ।
छूट पड़ों या विरह से जो सगरो जरि जाय ॥१६६॥
परवत परवत मैं फिरी नैन गँवाये रोय ।
सो बूटी पाई नहीं जाते जीवन होय ॥ १६७ ॥
हिरदे भीतर दव बलै धुआँ न परगट होय ।
जाके लागी सो लखै की जिन लाई सोय ॥१६८॥
सवही तरु तर जाइके सब फल लीन्हो चीख ।
फिरि-फिरि माँगत कबिर है दरसन ही की भीख ॥१६९॥
पिय विन जिय तरसत रहे पल पल विरह सताय ।
रैन दिवस मोहिं कल नहीं सिसक सिसक जिय जाय ॥१७०
साँई सेवत जल गई मास न रहिया देह ।
साँई जब लगि सेइहों यह तन होय न खेह ॥१७१॥
विरहा विरहा मत कहो विरहा है सुल्तान ।
जा घट विरह न संचरै सो घट जान मसान ॥१७२॥
देखत देखत दिन गया निस भी देखत जाय ।
विरहिन पिव पावै नहीं केवल जिय घबराय ॥१७३॥

सो दिन कैसा होयगा गुरू गहेंगे बाहिं ।
अपनाकर बैठावहीं चरनकँवल की छाँहि ॥१७४॥
जो जन विरही नाम के सदा मगन मन माँहि ।
ज्यों दरपन की सुंदरी किनहूँ पकड़ी नाहिं ॥१७५॥
चकई बिछुरी रैन की आय मिली परभात ।
सतगुरु से जो बीछुरे मिले दिवस नहिं रात ॥१७६॥
बिरहिन उठि उठि भुइँ परै दरसन कारन राम ।
मूए पीछे देहुगे सो दरसन केहि काम ॥१७७॥
मूए पाछे मत मिलौ कहै कबीरा राम ।
लोहा माटी मिलि गया तब पारस केहि काम ॥१७८॥
सब रग ताँत रबाब तन बिरह बजावै नित्त ।
और न कोई सुनि सकै कै साँईं कै चित्त ॥१७९॥
तूँ मति जानै बीसरूँ प्रीति घटै मम चित्त ।
मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ जिऊँ तो सुमिरूँ नित्त ॥१८०॥
बिरह अगिन तन मन जला लागि रहा तत जीव ।
कै वा जाने बिरहिनी कै जिन भेंटा पीव ॥१८१॥
बिरह कुल्हारी तन बहै घाव न बाँधै रोह ।
मरने का संसय नहीं छूटि गया भ्रम मोह ॥१८२॥
कबिरा बैद बुलाइया पकरि के देखी बाँहि ।
बैद न बेदन जानई करक कलेजे माहिं ॥१८३॥
बिरह बान जेहि लागिया औषध लगत न ताहि ।
सुसुकि सुसुकि मरि मरि जियै उठै कराहि कराहि ॥१८४॥

विनय

सुरति करौ मेरे साँइयाँ हम हैं भव-जल माहिं ।
आपे ही बहि जायँगे जो नहिं पकरौ बाहिं ॥१८५॥

क्या मुख लै विनती करौं लाज आवत है मोहिं ।
तुम देखत अवगुन करौं कैसे भावौं तोहिं ॥१८६॥
मैं अपराधी जनम का नख सिख भरा विकार ।
तुम दाता दुख-भंजना मेरी करो सम्हार ॥१८७॥
अवगुन मेरे वाप जी वकस गरीव-निवाज ।
जो मैं पूत कपूत हौं तऊ पिता को लाज ॥१८८॥
अवगुन किए तो वहु किए करत न मानी हार ।
भावैं बंदा वकसिए भावैं गरदन मार ॥१८९॥
साहेब तुम जनि वीसरो लाख लोग लगि जाहिं ।
हमसे तुमरे वहुत हैं तुम सम हमरे नाहिं ॥१९०॥
अंतरजामी एक तुम आतम के आधार ।
जो तुम छोड़ौ हाथ तो कौन उतारै पार ॥१९१॥
मेरा मन जो तोहिं सों तेरा मन कहिं और ।
कह कवीर कैसे निभै एक चित्त दुइ ठौर ॥१९२॥
मन परतीत न प्रेम रस ना कछु तन में ढंग ।
ना जानौ उस पीव से क्योंकर रहसी रंग ॥१९३॥
मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर ॥१९४॥
तुम तो समरथ साँइयाँ दृढ़ करि पकरो वाँहि ।
धुरही लै पहुँचाइयो जनि छाँड़ो मग माहिं ॥१९५॥

सूक्ष्म मार्ग

उत तें कोइ न वाहुरा जासे बूझूँ धाय ।
इत तें सवही जात हैं भार लदाय लदाय ॥१९६॥
यार वुलावै भाव सों मोपै गया न जाय ।
धन मैली पिउ ऊजला लागि न सकौं पाय ॥१९७॥

नाँव न जानै गाँव का बिन जाने कित जाँव ।
चलता चलता जुग भया पाव कोस पर गाँव ॥१९८॥
चलन चलन सब कोइ कहै मोहिं अँदेसा और ।
साहेब सों परिचय नहीं पहुँचेंगे केहि ठौर ॥१९९॥
जहा न चींटी चढ़ि सकै राई ना ठहराय ।
मनुवाँ तहँ लै राखिए तहईं पहुँचे जाय ॥२००॥
बाट बिचारी क्या करै पथी न चलै सुधार ।
राह आपनी छाँड़िकै चलै उजार उजार ॥२०१॥
मरिये तो मरि जाइये छूटि परै जंजार ।
ऐसा मरना को मरै दिन में सौ सौ बार ॥२०२॥

परीक्षक [पारखी]

हीरा तहाँ न खोलिए जहँ खोटी है हाट ।
कस करि बाँधो गाठरी उठ कर चालो बाट ॥२०३॥
हीरा पाया परखि के धन में दीया आन ।
चोट सही फूटा नहीं तब पाई पहिचान ॥२०४॥
जो हंसा मोती चुगै काँकर क्यों पतियाय ।
काँकर माथा ना नवै मोती मिलै तो खाय ॥२०५॥
हंसा बगुला एक सा मानसरोवर माहिं ।
बगा ढँढोरे माछरी हंसा मोती खाहिं ॥२०६॥
चंदन गया बिदेसड़े सब कोइ कहै पलास ।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया त्यों त्यों अधकी बास ॥२०७॥
एक अचंभो देखिया हीरा हाट बिकाय ।
परखनहारा बाहिरो कौड़ी बदले जाय ॥२०८॥
राम रतन धन पाइकै गाँठि बाँधि ना खोल ।
नाहिं पटन नहिं पारखी नहि गाहक नहिं मोल ॥२०९॥

पारस रूपी जीव है लोह रूप संसार ।
पारस ते पारस भया परख भया संसार ॥२१०॥
अमृत केरी पूरिया बहु विधि लीन्हें छोर ।
आप सरीखा जो मिले ताहि पियाऊँ घोरि ॥२११॥
काजर ही की कोठरी काजर ही का कोट ।
तौ भी कारो ना भई रही जो ओटहिं ओट ॥२१२॥
ज्ञान रतन की कोठरी चुप करि दीन्हों ताल ।
पारखि आगे खोलिए कुंजी वचन रसाल ॥२१३॥
नग पखान जग सकल है लखि आवै सब कोइ ।
नग ते उत्तम पारखी जग में विरला कोइ ॥२१४॥
बलिहारी तेहि पुरुष की पर चित परखनहार ।
साईं दीन्हों खाँड़ को खारी बूझ गँवार ॥२१५॥
हीरा वही सराहिए सहै घनन की चोट ।
कपट कुरंगी मानवा परखत निकसा खोट ॥२१६॥
हरि हीरा जन जौहरी सबन पसारी हाट ।
जब आवै जन जौहरी तब हीरौ की साट ॥२१७॥
हीरा परा बजार में रहा छार लपटाय ।
बहुतक मूरख चलि गए पारखि लिया उठाय ॥२१८॥
कलि खोटा जग आँधरा शब्द न माने कोइ ।
जाहि कहौं हित आपना सो उठि वैरी होय ॥२१९॥

जिज्ञासु

ऐसा कोऊ ना मिला हमको दे उपदेस ।
भव सागर में डूबता कर गहि काढ़ै केस ॥२२०॥
ऐसा कोई ना मिला जासे रहिए लाग ।
सब जग जलता देखिया अपनी अपनी आग ॥२२१॥

जैसा ढूँढ़त मैं फिरौं तैसा मिला न कोय।
ततवेता तिरगुन रहित निरगुन से रत होय ॥२२२॥
सर्पहि दूध पिलाइए सोई विष ह्वै जाय।
ऐसा कोई ना मिला आपे ही विष खाय ॥२२३॥
जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठि।
मैं बपुरा बूड़न डरा रहा किनारे बैठि ॥२२४॥
हेरत हेरत हेरिया रहा कबीर हिराय।
बुंद समानी समुँद में सो कित हेरी जाय ॥२२५॥
एक समाना सकल में सकल समाना ताहि।
कबिर समाना बूझ में तहाँ दूसरा नाहिं ॥२२६॥

दुबिधा

हिरदे माहीं आरसी मुख देखा नहिं जाय।
मुख तौ तबहीं देखई दुविधा देइ बहाय ॥२२७॥
पढ़ा गुना सीखा सभी मिटा न संसय सूल।
कह कबीर कासों कहूँ यह सब दुख का मूल ॥२२८॥
चींटी चावल लै चली बिच में मिलि गइ दार।
कह कबीर दोउ ना मिलै एक ले दूजी डार ॥२२९॥
सत्त नाम कडुवा लगै मीठा लागै दाम।
दुविधा में दोऊ गए माया मिली न राम ॥२३०॥

कथनी और करनी

कथनी मीठी खाँड़ सी करनी विष की लोय।
कथनी तजि करनी करै विष से अमृत होय ॥२३१॥

कथनी वदनी छाँड़ि के करनी सों चित लाय ।
नरहिं नीर प्याए विना कवहूँ प्यास न जाय ॥२३२॥
करनी विन कथनी कथै अज्ञानी दिन रात ।
कूकर ज्यों भूँकत फिरै सुनी सुनाई वात ॥२३३॥
लाया साखि वनाय कर इत उत अच्छर काट ।
कह कवीर कव लग जिए जूठी पत्तल चाट ॥२३४॥
पानी मिलै न आप को औरन वकसत छीर ।
आपन मन निसचल नहीं और वँधावत धीर ॥२३५॥
कथनी थोथी जगत में करनी उत्तम सार ।
कह कवीर करनी सवल उतरै भौ-जल पार ॥२३६॥
पद जोरै साखी कहै साधन परि गई रौस ।
काढ़ा जल पीवै नहीं काढ़ि पियन की हौस ॥२३७॥
साखी कहैं गहै नहीं चाल चली नहिं जाय ।
सलिल मोह नदिया वहै पाँव नहीं ठहराय ॥२३८॥
मारग चलते जो गिरै ताको नाहीं दोस ।
कह कवीर वैठा रहै ता सिर करड़े कोस ॥२३९॥
कहता तो वहुता मिला गहता मिला न कोइ ।
सो कहता वहि जान दे जो नहिं गहता होइ ॥२४०॥
एक एक निरवारिया जो निरवारी जाय ।
दुइ दुइ मुख का वोलना घने तमाचा खाय ॥२४१॥
मुख की मीठी जो कहैं हृदया है मति आन ।
कह कवीर तेहि लोग सों रामों वड़े सयान ॥२४२॥
जस कथनी तस करनियो जस चुंवक तस नाम ।
कह कवीर चुंवक विना क्यों छूटे संग्राम ॥२४३॥
श्रोता तो घरही नहीं वक्ता वदै सो वाद ।
श्रोता वक्ता एक घर तव कथनी को स्वाद ॥२४४॥

सहज भाव

सहज सहज सब कोउ कहै सहज न चीन्हे कोय ।
जा सहजै साहेब मिलै सहज कहावै सोय ॥२४५॥
सहजै सहजै सब गया सुत वित काम निकाम ।
एकमेक ह्वै मिलि रहा दास कबीरा नाम ॥२४६॥
जो कछु आवे सहज में सोई मीठा जान ।
कडुवा लागै नीम सा जामें ऐंचातान ॥२४७॥
सहज मिलै सो दूध सम माँगा मिले सो पानि ।
कह कबीर वह रक्त सम जामें ऐंचातानि ॥२४८॥

मौन भाव

भारी कहूँ तो बहु डरूँ हलका कहूँ तो झूठ ।
मैं का जानूँ पीव को नैना कछू न दीठ ॥२४९॥
दीठा है तो कस कहूँ कहूँ तो को पतियाय ।
साँईं जस तैसा रहो हरखि हरखि गुन गाय ॥२५०॥
ऐसो अद्भुत मत कथो कथो तो धरो छिपाय ।
वेद कुराना ना लिखी कहूँ तो को पतियाय ॥२५१॥
जो देखे सो कहै नहिं कहै सो देखै नाहिं ।
सुनै सो समझावै नहीं रसना दृग श्रुति काहिं ॥२५२॥
वाद विवादे विष घना बोले बहुत उपाध ।
मौन गहे सबकी सहै सुमिरै नाम अगाध ॥२५३॥

जीवन्मृत (मरजीवा)

मैं मरजीव समुँद्र का डुबकी मारी एक ।
मूठी लाया ज्ञान की जामें वस्तु अनेक ॥२५४॥

कथनी वदनी छाँड़ि के करनी सो चित लाय।
नरहिं नीर प्याए विना कबहूँ प्यास न जाय ॥२३२॥
करनी बिन कथनी कथै अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्यों भूँकत फिरै सुनी सुनाई बात ॥२३३॥
लाया साखि बनाय कर इत उत अच्छर काट।
कह कबीर कब लग जिए जूठी पत्तल चाट ॥२३४॥
पानी मिलै न आप को औरन बकसत छीर।
आपन मन निसचल नहीं और बँधावत धीर ॥२३५॥
कथनी थोथी जगत में करनी उत्तम सार।
कह कबीर करनी सबल उतरै भौ-जल पार ॥२३६॥
पद जोरै साखी कहै साधन परि गई रौस।
काढ़ा जल पीवै नहीं काढ़ि पियन की हौस ॥२३७॥
साखी कहैं गहै नहीं चाल चली नहिं जाय।
सलिल मोह नदिया बहै पाँव नहीं ठहराय ॥२३८॥
मारग चलते जो गिरै ताको नाहीं दोस।
कह कबीर बैठा रहै ता सिर करड़े कोस ॥२३९॥
कहता तो बहुता मिला गहता मिला न कोइ।
सो कहता बहि जान दे जो नहिं गहता होइ ॥२४०॥
एक एक निरवारिया जो निरवारी जाय।
दुइ दुइ मुख का बोलना घने तमाचा खाय ॥२४१॥
मुख की मीठी जो कहैं हृदया है मति आन।
कह कबीर तेहि लोग सों रामौ बड़े सयान ॥२४२॥
जस कथनी तस करनियो जस चुंबक तस नाम।
कह कबीर चुंबक बिना क्यों छूटे संग्राम ॥२४३॥
श्रोता तो घरही नहीं वक्ता बदै सो बाद।
श्रोता वक्ता एक घर तब कथनी को स्वाद ॥२४४॥

सहज भाव

सहज सहज सब कोउ कहै सहज न चीन्है कोय ।
जा सहजै साहेब मिलै सहज कहावै सोय ॥२४५॥
सहजै सहजै सब गया सुत वित काम निकाम ।
एकमेक ह्वै मिलि रहा दास कबीरा नाम ॥२४६॥
जो कछु आवे सहज में सोई मीठा जान ।
कडुवा लागै नीम सा जामें ऐंचातान ॥२४७॥
सहज मिलै सो दूध सम माँगा मिलै सो पानि ।
कह कबीर वह रक्त सम जामें ऐंचातानि ॥२४८॥

मौन भाव

भारी कहूँ तो बहु डरूँ हलका कहूँ तो झूठ ।
मैं का जानूँ पीव को नैना कछू न दीठ ॥२४९॥
दीठा है तो कस कहूँ कहूँ तो को पतियाय ।
साँई जस तैसा रहो हरखि हरखि गुन गाय ॥२५०॥
ऐसो अद्भुत मत कथो कथो तो धरो छिपाय ।
वेद कुराना ना लिखी कहूँ तो को पतियाय ॥२५१॥
जो देखे सो कहै नहिं कहै सो देखै नाहिं ।
सुनै सो समझावै नहीं रसना दृग श्रुति काहिं ॥२५२॥
वाद विवादे विष घना बोले बहुत उपाध ।
मौन गहे सबकी सहै सुमिरै नाम अगाध ॥२५३॥

जीवन्मृत (मरजीवा)

मैं मरजीव समुँद्र का डुबकी मारी एक ।
मूठी लाया ज्ञान की जामें वस्तु अनेक ॥२५४॥

डुबकी मारी समुँद में निकसा जाय अकास ।
गगन मँडल में घर किया हीरा पाया दास ॥२५५॥
हरि हीरा क्यों पाइहै जिन जीवे की आस ।
गुरु दरिया सो काढ़सी कोइ मरजीवा दास ॥२५६॥
खरी कसौटी नाम की खोटा टिकै न कोय ।
नाम कसौटी सो टिकै जीवत मिरतक होय ॥२५७॥
मरते मरते जग मुआ औरस मुआ न कोय ।
दास कबीरा यों मुआ बहुरि न मरना होय ॥२५८॥
जा मरने से जग डरै मेरे मन आनंद ।
कब मरिहौं कब पाइहौं पूरन परमानंद ॥२५९॥
घर जारे घर ऊबरे घर राखे घर जाय ।
एक अचंभा देखिया मुआ काल को खाय ॥२६०॥
रोड़ा भया तो क्या भया पंथी को दुख देय ।
साधू ऐसा चाहिए ज्यों पैंड़े की खेह ॥२६१॥
खेह भई तो क्या भया उड़ि उड़ि लागै अंग ।
साधू ऐसा चाहिए जैसे नीर निपंग ॥२६२॥
नीर भया तो क्या भया ताता सीरा जोय ।
साधू ऐसा चाहिए जो हरि जैसा होय ॥२६३॥
हरी भया तो क्या भया करता हरता होय ।
साधू ऐसा चाहिए हरि भज निरमल होय ॥२६४॥
निरमल भया तो क्या भया निरमल माँगै ठौर ।
मल निरमल से रहित है ते साधू कोइ और ॥२६५॥
ढारस लखु मरजीव को धँसिके पैठि पताल ।
जीव अटक मानै नहीं गहि ले निकस्यो लाल ॥२६६॥

मध्य पथ

पाया कहैं ते बावरे खोया कहैं ते कूर ।
पाया खोया कछु नहीं ज्यों का त्यों भरपूर ॥२६७॥
भजूँ तो को है भजन को तजूँ तो का है आन ।
भजन तजन के मध्य में सो कबीर मन मान ॥२६८॥
अति का भला न बोलना अति का भला न चूप ।
अति का भला न बरसना अति की भली न धूप ।२६९।

शूर धर्म्म

गगन दमामा बाजिया पड़त निसाने घाव ।
खेत पुकारै शूरमा अब लड़ने का दाँव ॥२७०॥
सूरा सोइ सराहिए लड़े धनी के हेत ।
पुरजा पुरजा होइ रहै तऊ न छाँड़ै खेत ॥२७१॥
सूरा सोइ सराहिए अंग न पहिरै लोह ।
जूझै सब बँद खोलिकै छाँड़े तन का मोह ॥२७२॥
खेत न छाँड़ै सूरमा जूझै दो दल माहिं ।
आसा जीवन मरन की मन में आनै नाहिं ॥२७३॥
अब तो जूझै ही बनै मुड़ चाले घर दूर ।
सिर साहेब को सौंपते सोच न कीजै सूर ॥२७४॥
सिर राखे सिर जात है सिर काटे सिर सोय ।
जैसे बाती दीप की कटि उँजियारा होय ॥२७५॥
जो हारों तो सेव गुरु जो जीतों तो दाँव ।
सत्तनाम से खेलता जो सिर जाव तो जाव ॥२७६॥
खोजी को डर बहुत है पल पल पड़ै विजोग ।
प्रन राखत जो तन गिरै सो तन साहेब जोग ॥२७७॥

तीर तुपक से जो लड़ै सो तो सूर न होय।
माया तजि भक्ती करै सूर कहावै सोय ॥२७८॥

पातिव्रत

पतिवरता मैली भली काली कुचित कुरूप।
पतिवरता के रूप पर वारों कोटि सरूप ॥२७९॥
पतिवरता पति को भजै और न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लंघना तौ भी घास न खाय ॥२८०॥
नैनों अंतर आव तू नैन झाँपि तोहि लेव।
ना मैं देखौं और को ना तोहि देखन देंव ॥२८१॥
कबिरा सीप समुद्र की रटै पियास पियास।
और बूँद को ना गहै स्वाति बूँद की आस ॥२८२॥
पपिहा का पन देखकर धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल में पड़ा तऊ न बोरी चंच ॥२८३॥
सुंदर तो साँईं भजै तजै आन की आस।
ताहि न कबहूँ परिहरै पलक न छाँड़ै पास ॥२८४॥
चढ़ी अखाड़े सुंदरी माँड़ा पिव सों खेल।
दीपक जोया ज्ञान का काम करै ज्यों तेल ॥२८५॥
सूरा के तो सिर नहीं दाता के धन नाहिं।
पतिवरता के तन नहीं सुरति बसै मन माहिं ॥२८६॥
पतिवरता मैली भली गले काँच का पोत।
सब सखियन में यों दिपै ज्यों रवि ससि की जोत ॥२८७॥
पतिवरता पति को भजै पति पर धर बिस्वास।
आन दिसा चितवै नहीं सदा पीव की आस ॥२८८॥
नाम न रटा तो क्या हुआ जो अंतर है हेत।
पतिवरता पति को भजै मुख से नाम न लेत ॥२८९॥

जो यह एक न जानिया बहु जाने का होय।
एकै तें सब होत हैं सब तें एक न होय ॥२९०॥
सत आए उस एक में डार पात फल फूल।
अब कहु पाछे क्या रहा गहि पकड़ा जब मूल ॥२९१॥
प्रीति बड़ी है तुज्झ से बहु गुनियाला कंत।
जो हँस बोलों और से नील रँगाओं दंत ॥२९२॥
कबिरा रेख सिंदूर अरु काजर दिया न जाय।
नैनन प्रीतम रमि रहा दूजा कहाँ समाय ॥२९३॥
आठ पहर चौंसठ घड़ी मेरे और न कोय।
नैना माहीं तू बसै नींद को ठौर न होय ॥२९४॥
अब तो ऐसी ह्वै परी मन अति निर्मल कीन्ह।
मरने का डर छाँड़िके हाथ सिंधोरा लीन्ह ॥२९५॥
सती बिचारी सत किया काँटों सेज बिछाय।
लै सूती पिय आपना चहुँ दिस अगिन लगाय ॥२९६॥
सती न पीसै पीसना जो पीसै सो राँड़।
साधू भीख न माँगई जो मागै सो भाँड़ ॥२९७॥
सेज बिछावै सुंदरी अंतर परदा होय।
तन सौंपे मन दे नहीं सदासुहागिन सोय ॥२९८॥

सतगुरु

सतगुरु सम को है सगा साधू सम को दात।
हरि समान को हितू है हरिजन सम को जात ॥२९९॥
गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय ॥३००॥
बलिहारी गुरु आपने घड़ि घड़ि सौ सौ बार।
मानुष से देवता किया करत न लागी बार ॥३०१॥

तीर तुपक से जो लड़ै सो तो सूर न होय ।
माया तजि भक्ती करै सूर कहावै सोय ॥२७८॥

पातिव्रत

पतिवरता मैली भली काली कुचित कुरूप ।
पतिवरता के रूप पर वारों कोटि सरूप ॥२७९॥
पतिवरता पति को भजै और न आन सुहाय ।
सिंह बचा जो लंघना तौ भी घास न खाय ॥२८०॥
नैनों अंतर आव तू नैन झाँपि तोहि लेंव ।
ना मैं देखौं और को ना तोहि देखन देंव ॥२८१॥
कबिरा सीप समुद्र की रटै पियास पियास ।
और बूँद को ना गहै स्वाति बूँद की आस ॥२८२॥
पपिहा का पन देखकर धीरज रहै न रंच ।
मरते दम जल में पड़ा तऊ न बोरी चंच ॥२८३॥
सुंदर तो साँई भजै तजै आन की आस ।
ताहि न कबहूँ परिहरै पलक न छाँड़ै पास ॥२८४॥
चढ़ी अखाड़े सुंदरी माँड़ा पिव सों खेल ।
दीपक जोया ज्ञान का काम करै ज्यों तेल ॥२८५॥
सूरा के तो सिर नहीं दाता के धन नाहिं ।
पतिवरता के तन नहीं सुरति बसै मन माहिं ॥२८६॥
पतिवरता मैली भली गले काँच का पोत ।
सब सखियन में यों दिपै ज्यों रवि ससि की जोत ।२८७।
पतिवरता पति को भजै पति पर धर बिस्वास ।
आन दिसा चितवै नहीं सदा पीव की आस ॥२८८॥
नाम न रटा तो क्या हुआ जो अंतर है हेत ।
पतिवरता पति को भजै मुख से नाम न लेत ॥२८९॥

जो यह एक न जानिया बहु जाने का होय।
एकै तें सब होत हैं सब तें एक न होय ॥२९०॥
सत आए उस एक में डार पात फल फूल।
अब कहु पाछे क्या रहा गहि पकड़ा जब मूल ॥२९१॥
प्रीति बड़ी है तुज्झ से बहु गुनियाला कंत।
जो हँस बोलों और से नील रँगाओं दंत ॥२९२॥
कबिरा रेख सिंदूर अरु काजर दिया न जाय।
नैनन प्रीतम रमि रहा दूजा कहाँ समाय ॥२९३॥
आठ पहर चौंसठ घड़ी मेरे और न कोय।
नैना माहीं तू बसै नींद को ठौर न होय ॥२९४॥
अब तो ऐसी ह्वै परी मन अति निर्मल कीन्ह।
मरने का डर छाँड़िके हाथ सिंधोरा लीन्ह ॥२९५॥
सती बिचारी सत किया काँटों सेज बिछाय।
लै सूती पिय आपना चहुँ दिस अगिन लगाय ॥२९६॥
सती न पीसै पीसना जो पीसै सो राँड़।
साधू भीख न माँगई जो मागै सो भाँड़ ॥२९७॥
सेज बिछावै सुंदरी अंतर परदा होय।
तन सौंपे मन दे नहीं सदासुहागिन सोय ॥२९८॥

सतगुरु

सतगुरु सम को है सगा साधू सम को दात।
हरि समान को हितू है हरिजन सम को जात ॥२९९॥
गुरु गोबिंद दोऊ खड़े काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोबिंद दियो बताय ॥३००॥
बलिहारी गुरु आपने घड़ि घड़ि सौ सौ बार।
मानुष से देवता किया करत न लागी बार ॥३०१॥

सव धरती कागद करूँ लेखनि सव वनराय ।
सात समुँद की मसि करूँ गुरु गुन लिखा न जाय ।३०२।

तन मन ताको दीजिए जाके विषया नाहि ।
आपा सबहीं डारिकै राखै साहेव माहिं ॥३०३॥

तन मन दिया तो क्या हुआ निज मन दिया न जाय ।
कह कवीर ता दास सों कैसे मन पतियाय ॥३०४॥

गुरु सिकलीगर कीजिए मनहिं मस्कला देय ।
मन की मैल छुड़ाइ कै चित दरपन करि लेय ॥३०५॥

गुरु धोवी सिष कापड़ा सावुन सिरजनहार ।
सुरति सिला पर धोइए निकसै जोति अपार ॥३०६॥

गुरु कुम्हार सिष कुंभ है गढ़ गढ़ काढ़ै खोट ।
अंतर हाथ सहार दै वाहर वाहै चोट ॥३०७॥

कविरा ते नर अंध हैं गुरु को कहते और ।
हरि रूठे गुरु ठौर हैं गुरु रूठे नहिं ठौर ॥ ३०८ ॥

गुरु हैं वड़े गोविंद तें मन में देखु विचार ।
हरि सुमिरे सो वार है गुरु सुमिरे सो पार ॥३०९॥

गुरु पारस गुरु परस है चंदन वास सुवास ।
सतगुरु पारस जीव को दीन्हों मुक्ति निवास ॥३१०॥

पंडित पढ़ि गुन पचि मुए गुरु विन मिलै न ज्ञान ।
ज्ञान विना नहिं मुक्ति है सत्त शब्द परमान ॥३११॥

तीन लोक नौ खंड में गुरु ते वड़ा न कोइ ।
करता करै न करि सकै गुरु करै सो होइ ॥३१२॥

कविरा हरि के रूठते गुरु के सरने जाय ।
कह कवीर गुरु रूठते हरि नहिं होत सहाय ॥३१३॥

वस्तु कहीं ढूँढ़ै कहीं केहि विधि आवै हाथ ।
कह कवीर तव पाइए भेदी लीजै साथ ॥३१४॥

यह तन विष की वेलरी गुरु अमृत की खान ।
सीस दिए जो गुरु मिलै तौ भी सस्ता जान ॥३१५॥
कोटिन चंदा ऊगवैं सूरज कोटि हजार ।
सतगुरु मिलिया बाहरे दीसत घोर अँधार ॥३१६॥
सतगुरु पारस के सिला देखो सोच विचार ।
आइ पड़ोसिन लै चली दीयो दिया सँवार ॥३१७॥
चौंसठ दीवा जोय के चौदह चंदा माहिं ।
तेहि घर किसका चाँदना जेहि घर सतगुरु नाहिं ।३१८।
ताकी पूरी क्यों परै गुरु न लखाई बाट ।
ताको वेड़ा वूड़िहै फिर फिर अवघट घाट ॥३१९॥

असद्‌गुरु

गुरू मिला ना सिष मिला लालन खेला दाँव ।
दोऊ वूड़े धार में चढ़ि पाथर की नाव ॥३२०॥
जानंता वूझा नहीं वूझि किया नहिं गौन ।
अंधे को अंधा मिला राह वतावे कौन ॥३२१॥
वंधे को वंधा मिलै छूटै कौन उपाय ।
कर सेवा निरवंध की पल में लेत छुड़ाय ॥३२२॥
वात वनाई जग ठगा मन परमोधा नाहिं ।
कह कवीर मन लै गया लख चौरासी माहिं ॥३२३॥
नीर पियावत का फिरै घर घर सायर वारि ।
तृषावंत जो होइगा पीवैगा झख मारि ॥३२४॥
सिष साखा वहुते किए सतगुरु किया न मित्त ।
चाले थे सत लोक को वीचहिं अटका चित्त ॥३२५॥

संतजन

साध बड़े परमारथी घन ज्यों बरसैं आय।
तपन बुझावैं और की अपनो पारस लाय ॥३२६॥

सिंहों के लेहँड़े नहीं हंसों की नहिं पात।
लालों की नहिं बोरियाँ साध न चलैं जमात ॥३२७॥

सब बन तौ चंदन नहीं सूरा का दल नाहिं।
सब समुद्र मोती नहीं यों साधू जग माहिं ॥३२८॥

साध कहावत कठिन है लंबा पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेमरस गिरै तो चकनाचूर ॥३२९॥

गाँठी दाम न बाँधई नहिं नारी सों नेह।
कह कबीर ता साध की हम चरनन की खेह ॥३३०॥

वृच्छ कबहुँ नहिं फल भखैं नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर ॥३३१॥

साधु साधु सब ही बड़े अपनी अपनी ठौर।
शब्द विवेकी पारखी ते माथे के मौर ॥३३२॥

साधु साधु सब एक हैं ज्यों पोस्ते का खेत।
कोइ विवेकी लाल है नहीं सेत का सेत ॥३३३॥

निराकार की आरसी साधों ही की देह।
लखा जो चाहै अलख को इनहीं में लखि लेह ॥३३४॥

कोई आवै भाव ले कोई आव अभाव।
साध दोऊ को पोषते गिनैं न भाव अभाव ॥३३५॥

नहिं शीतल है चंद्रमा हिम नहिं शीतल होय।
कबिरा शीतल संतजन नाम सनेही सोय ॥३३६॥

जाति न पूछो साध की पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तरवार का पड़ा रहन दो म्यान ॥३३७॥

संत न छोड़े संतई कोटिक मिलैं असंत
मलय भुवंगहिं वेधिया सीतलता न तजंत ॥३३८॥
साधू ऐसा चाहिए दुखै दुखावै नाहिं।
पान फूल छोड़े नहीं वसै वगीचा माहिं ॥३३९॥
साध सिद्ध वड़ अंतरा जैसे आम ववूल।
वाकी डारी अमी फल याकी डारी सूल ॥३४०॥
हरि दरिया सूभर भरा साधो का घट सीप।
तामें मोती नीपजै चढ़ै देसावर दीप ॥३४१॥
साधू भूखा भाव का धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जो फिरै सो तो साधू नाहिं ॥३४२॥
साधु समुंदर जानिए माहीं रतन भराय।
मंद भाग मूठी भरै कर कंकर चढ़ि जाय ॥३४३॥
चंदन की कुटकी भली नहिं ववूल लखराँव।
साधन की झुपड़ी भली ना साकट को गाँव ॥३४४॥
हरि सेती हरिजन वड़े समझि देखु मन माहिं।
कह कवीर जग हरि विखे सो हरि हरिजन माहि ॥३४५॥
जो चाहै साकार तू साधू परतछ देव।
निराकार निज रूप है प्रेम प्रीति से सेव ॥३४६॥
पक्षापक्षी कारने सव जग रहा भुलान।
निरपक्षे ह्वै हरि भजैं तेई संत सुजान ॥३४७॥
समुझि वूझि जड़ ह्वै रहे वल तजि निर्वल होय।
कह कवीर ता संत को पला न पकरै कोय ॥३४८॥
हद चलै सो मानवा वेहद चलै सो साध।
हद वेहद दोनों तजै ताको मता अगाध ॥३४९॥
सोना सज्जन साधु जन टूटि जुरै सौ वार।
दुर्जन कुंभ कुम्हार के एकै धका दरार ॥३५०॥

जीवन्मुक्तै ह्वै रहै तजै खलक की आस।
आगे पीछे हरि फिरैं क्यों दुख पावै दास ॥३५१॥

असज्जन

संगति भई तो क्या भया हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़े तऊ न भीजै कोर ॥३५२॥
हरिया जानै रूखड़ा जो पानी का नेह।
सूखा काठ न जानही केतहु बूड़ा मेह ॥३५३॥
कबिरा मूढ़क प्रानियाँ नख सिख पाखर आहि।
बाहनहारा क्या करै बान न लागै ताहि ॥३५४॥
पसुवा सों पाला पर्‌यो रहु रहु हिया न खीज।
ऊसर बीज न ऊगसी घालै दूना बीज ॥३५५॥
कबिरा चंदन के निकट नीम भी चंदन होय।
बूड़े बाँस बड़ाइया यों जनि बूड़ो कोय ॥३५६॥
चाल बकुल की चलत हैं बहुरि कहावैं हंस।
ते मुक्ता कैसे चुगैं परे काल के फंस ॥३५७॥
साधू भया तो क्या भया माला पहिरी चार।
बाहर भेस बनाइया भीतर भरी अँगार ॥३५८॥
माला तिलक लगाइ के भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूँछ मुँड़ाइ के चले दुनी के साथ ॥३५९॥
दाढ़ी मूँछ मुँड़ाइ के हुआ घोटम घोट।
मन को क्यों नहिं मूँड़िए जामें भरिया खोट ॥३६०॥
मूँड़ मुँड़ाए हरि मिलैं सब कोइ लेहि मुँड़ाय।
बार बार के मूँड़ते भेड़ न बैकुंठ जाय ॥३६१॥
केसन कहा बिगारिया जो मूँड़ौ सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूँड़िए जामें बिषै बिकार ॥३६२॥

वाँवी कूटैं वावरे साँप न मारा जाय।
मूरख वाँवी ना डसै सर्प सवन को खाय ॥३६३॥
जो विभूति साधुन तजी तेहि विभूति लपटाय।
जौन वमन करि डारिया स्वान स्वाद करि खाय ॥३६४॥
हम जाना तुम मगन हौ रहे प्रेम रस पागि।
रँचक पवन के लागते उठे नाग से जागि ॥३६५॥
सज्जन तो दुर्जन भया सुनि काहू को वोल।
काँसा ताँवा ह्वै रहा नहिं हिरण्य का मोल ॥३६६॥
लोहे केरी नावरी पाहन गरुआ भार।
सिर में विष की मोटरी उतरन चाहै पार ॥३६७॥
सकलौ दुरमति दूरि करु अच्छा जनम वनाउ।
काग गवन वुधि छोड़ि दे हंस गवन चलिआउ ॥३६८॥
चंदन सर्प लपेटिया चंदन काह कराय।
रोम रोम विष भीनिया अमृत कहाँ समाय ॥३६९॥
मलयागिरि के वास में वेधा ढाक पलास।
वेना कवहुँ न वेधिया जुग जुग रहिया पास ॥३७०॥
जहर जिमीं दै रोपिया अमि सींचै सौ वार।
कविरा खलकै ना तजै जामें जौन विचार ॥३७१॥
गुरू विचारा क्या करै शिष्यहि में है चूक।
शब्द-वाण वेधे नहीं वाँस वजावै फूँक ॥३७२॥

सत्संग

कविरा संगत साध की हरै और की व्याधि।
संगत वुरी असाध की आठो पहर उपाधि ॥३७३॥
कविरा संगत साधु की जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिलै साकट संग न जाय ॥३७४॥

कविरा संगत साधु की ज्यों गंधी का वास।
जो कछु गंधी दे नहीं तौ भी वास सुवास ॥३७५॥
मथुरा भावैं द्वारिका भावैं जा जगनाथ।
साध सँगति हरि भजन विनु कछू न आवै हाथ ॥३७६॥
ते दिन गए अकारथी संगति भई न संत।
प्रेम विना पशु जीवना भक्ति विना भगवंत ॥३७७॥
कविरा मन पंछी भया भावै तहवाँ जाय।
जो जैसी संगति करै सो तैसा फल पाय ॥३७८॥
कविरा खाँई कोट की पानी पिवै न कोय।
जाय मिलै जब गंग से सब गंगोदक होय ॥३७९॥

कुसंग

जानि बूझि साँची तजै करै झूठि सो नेह।
ताकी संगति हे प्रभू सपनेहूँ मति देह ॥३८०॥
तोहीं पीर जो प्रेम की पाका सेती खेल।
काँची सरसों पेरिकै खली भया ना तेल ॥३८१॥
दाग जो लागा नील का सौ मन साबुन धोय।
कोटि जतन परबोधिए कागा हंस न होय ॥३८२॥
मारी मरै कुसंग की केरा के ढिग बेर।
वह हालै वह अँग चिरै विधि ने संग निबेर ॥३८३॥
केरा तबहि न चेतिया जब ढिग लागी बेर।
अब के चेते क्या भया काँटन लीन्हों घेरि ॥३८४॥

सेवक और दास

द्वार धनी के पड़ि रहै धका धनी का खाय।
कबहुँक धनी निवाजई जो दर छाँड़ि न जाय ॥३८५॥

दासातन हिरदे नहीं नाम धरावे दास ।
पानी के पीए बिना कैसे मिटै पियास ॥३८६॥
भुक्ति मुक्ति मागौं नहीं भक्ति दान दे मोहिं ।
और कोई याचौं नहीं निस दिन याचौं तोहिं ॥३८७॥
काजर केरी कोठरी ऐसा यह संसार ।
बलिहारी वा दास की पैठिके निकसन-हार ॥३८८॥
अनराते सुख सोवना राते नींद न आय ।
ज्यों जल छूटे माछरी तलफत रैन विहाय ॥३८९॥
जा घट में साँईं बसै सो क्यों छाना होय ।
जतन जतन करि दाबिए तौ उँजियाला सोय ॥३९०॥
सब घट मेरा साँइयाँ सूनी सेज न कोय ।
बलिहारी वा दास की जा घट परगट होय ॥३९१॥

भेष

तत्व तिलक माथे दिया सुरति सरवनी कान ।
करनी कंठी कंठ में परसा पद निर्वान ॥३९२॥
मन माला तन मेखला भय की करै भभूत ।
अलख मिला सब देखता सो जोगी अवधूत ॥३९३॥
तन को जोगी सब करै मन को विरला कोय ।
सहजै सब विधि पाइए जो मन जोगी होय ॥३९४॥
हम तो जोगी मनहिं के तन के हैं ते और ।
मन का जोग लगावते दसा भई कछु और ॥३९५॥

चेतावनी

कबिरा गर्व न कीजिए काल गहे कर केस ।
ना जानौं कित मारिहै क्या घर क्या परदेस ॥३९६॥

कबिरा संगत साधु की ज्यों गंधी का बास।
जो कछु गंधी दे नहीं तौ भी वास सुबास ॥३७५॥
मथुरा भावैं द्वारिका भावैं जा जगनाथ।
साध सँगति हरि भजन बिनु कछू न आवै हाथ ॥३७६॥
ते दिन गए अकारथी संगति भई न संत।
प्रेम विना पशु जीवना भक्ति विना भगवंत ॥३७७॥
कबिरा मन पंछी भया भावै तहवाँ जाय।
जो जैसी संगति करै सो तैसा फल पाय ॥३७८॥
कबिरा खाँईं कोट की पानी पिवै न कोय।
जाय मिलै जब गंग से सब गंगोदक होय ॥३७९॥

कुसंग

जानि बूझि साँची तजै करै झूठि सो नेह।
ताकी संगति हे प्रभू सपनेहूँ मति देह ॥३८०॥
तोहीं पीर जो प्रेम की पाका सेती खेल।
काँची सरसों पेरिकै खली भया ना तेल ॥३८१॥
दाग जो लागा नील का सौ मन साबुन धोय।
कोटि जतन परवोधिए कागा हंस न होय ॥३८२॥
मारी मरै कुसंग की केरा के ढिग बेर।
वह हालै वह अँग चिरै विधि ने संग निवेर ॥३८३॥
केरा तबहि न चेतिया जब ढिग लागी बेर।
अब के चेते क्या भया काँटन लीन्हों घेरि ॥३८४॥

सेवक और दास

द्वार धनी के पड़ि रहै धका धनी का खाय।
कबहुँक धनी निवाजई जो दर छाँड़ि न जाय ॥३८५॥

दासातन हिरदे नहीं नाम धरावे दास ।
पानी के पीए विना कैसे मिटै पियास ॥३८६॥
भुक्ति मुक्ति मागौं नहीं भक्ति दान दे मोहिं ।
और कोई याचौं नहीं निस दिन याचौं तोहिं ॥३८७॥
काजर केरी कोठरी ऐसा यह संसार ।
वलिहारी वा दास की पैठिके निकसन-हार ॥३८८॥
अनराते सुख सोवना राते नींद न आय ।
ज्यों जल छूटे माछुरी तलफत रैन विहाय ॥३८९॥
जा घट में साँईं वसै सो क्यों छाना होय ।
जतन जतन करि दाविए तौ उँजियाला सोय ॥३९०॥
सव घट मेरा साँइयाँ सूनी सेज न कोय ।
वलिहारी वा दास की जा घट परगट होय ॥३९१॥

भेष

तत्व तिलक माथे दिया सुरति सरवनी कान ।
करनी कंठी कंठ में परसा पद निर्वान ॥३९२॥
मन माला तन मेखला भय की करै भभूत ।
अलख मिला सव देखता सो जोगी अवधूत ॥३९३॥
तन को जोगी सव करै मन को विरला कोय ।
सहजै सव विधि पाइए जो मन जोगी होय ॥३९४॥
हम तो जोगी मनहिं के तन के हैं ते और ।
मन का जोग लगावते दसा भई कछु और ॥३९५॥

चेतावनी

कविरा गर्व न कीजिए काल गहे कर केस ।
ना जानौं कित मारिहै क्या घर क्या परदेस ॥३९६॥

कविरा संगत साधु की ज्यों गंधी का बास ।
जो कछु गंधी दे नहीं तौ भी बास सुवास ॥३७५॥
मथुरा भावैं द्वारिका भावैं जा जगनाथ ।
साध सँगति हरि भजन बिनु कछू न आवै हाथ ॥३७६॥
ते दिन गए अकारथी संगति भई न संत ।
प्रेम विना पशु जीवना भक्ति बिना भगवंत ॥३७७॥
कविरा मन पंछी भया भावै तहवाँ जाय ।
जो जैसी संगति करै सो तैसा फल पाय ॥३७८॥
कविरा खाँई कोट की पानी पिवै न कोय ।
जाय मिलै जब गंग से सब गंगोदक होय ॥३७९॥

कुसंग

जानि बूझि साँची तजै करै झूठि सो नेह ।
ताकी संगति हे प्रभू सपनेहूँ मति देह ॥३८०॥
तोहीं पीर जो प्रेम की पाका सेती खेल ।
काँची सरसों पेरिकै खली भया ना तेल ॥३८१॥
दाग जो लागा नील का सौ मन साबुन धोय ।
कोटि जतन परबोधिए कागा हंस न होय ॥३८२॥
मारी मरै कुसंग की केरा के ढिग बेर ।
वह हालै वह अँग चिरै विधि ने संग निवेर ॥३८३॥
केरा तबहि न चेतिया जब ढिग लागी बेर ।
अब के चेते क्या भया काँटन लीन्हों घेरि ॥३८४॥

सेवक और दास

द्वार धनी के पड़ि रहे धका धनी का खाय ।
कबहुँक धनी निवाजई जो दर छाँड़ि न जाय ॥३८५॥

दासातन हिरदे नहीं नाम धरावे दास ।
पानी के पीए बिना कैसे मिटै पियास ॥३८६॥
भुक्ति मुक्ति मागौं नहीं भक्ति दान दे मोहिं ।
और कोई याचौं नहीं निस दिन याचौं तोहिं ॥३८७॥
काजर केरी कोठरी ऐसा यह संसार ।
बलिहारी वा दास की पैठिके निकसन-हार ॥३८८॥
अनराते सुख सोवना राते नींद न आय ।
ज्यों जल छूटे माछरी तलफत रैन बिहाय ॥३८९॥
जा घट में साँईं बसै सो क्यों छाना होय ।
जतन जतन करि दाबिए तौ उँजियाला सोय ॥३९०॥
सब घट मेरा साँइयाँ सूनी सेज न कोय ।
बलिहारी वा दास की जा घट परगट होय ॥३९१॥

भेष

तत्व तिलक माथे दिया सुरति सरवनी कान ।
करनी कंठी कंठ में परसा पद निर्वान ॥३९२॥
मन माला तन मेखला भय की करै भभूत ।
अलख मिला सब देखता सो जोगी अवधूत ॥३९३॥
तन को जोगी सब करै मन को बिरला कोय ।
सहजै सब विधि पाइए जो मन जोगी होय ॥३९४॥
हम तो जोगी मनहिं के तन के हैं ते और ।
मन का जोग लगावते दसा भई कछु और ॥३९५॥

चेतावनी

कबिरा गर्व न कीजिए काल गहे कर केस ।
ना जानौं कित मारिहै क्या घर क्या परदेस ॥३९६॥

कबिरा संगत साधु की ज्यों गंधी का वास ।
जो कछु गंधी दे नहीं तौ भी वास सुवास ॥३७५॥
मथुरा भावैं द्वारिका भावैं जा जगनाथ ।
साध सँगति हरि भजन बिनु कछू न आवै हाथ ॥३७६॥
ते दिन गए अकारथी संगति भई न संत ।
प्रेम बिना पशु जीवना भक्ति बिना भगवंत ॥३७७॥
कबिरा मन पंछी भया भावै तहवाँ जाय ।
जो जैसी संगति करै सो तैसा फल पाय ॥३७८॥
कबिरा खाँई कोट की पानी पिवै न कोय ।
जाय मिलै जब गंग से सब गंगोदक होय ॥३७९॥

कुसंग

जानि बूझि साँची तजै करै झूठि सो नेह ।
ताकी संगति हे प्रभू सपनेहूँ मति देह ॥३८०॥
तोहीं पीर जो प्रेम की पाका सेती खेल ।
काँची सरसों पेरिकै खली भया ना तेल ॥३८१॥
दाग जो लागा नील का सौ मन साबुन धोय ।
कोटि जतन परबोधिए कागा हंस न होय ॥३८२॥
मारी मरै कुसंग की केरा के ढिग बेर ।
वह हालै वह अँग चिरै विधि ने संग निवेर ॥३८३॥
केरा तबहि न चेतिया जब ढिग लागी बेर ।
अब के चेते क्या भया काँटन लीन्हों घेरि ॥३८४॥

सेवक और दास

द्वार धनी के पड़ि रहै धका धनी का खाय ।
कबहुँक धनी निवाजई जो दर छाँड़ि न जाय ॥३८५॥

दासातन हिरदे नहीं नाम धरावे दास ।
पानी के पीए विना कैसे मिटै पियास ॥३८६॥
भुक्ति मुक्ति मागौं नहीं भक्ति दान दे मोहिं ।
और कोई याचौं नहीं निस दिन याचौं तोहिं ॥३८७॥
काजर केरी कोठरी ऐसा यह संसार ।
वलिहारी वा दास की पैठिके निकसन-हार ॥३८८॥
अनराते सुख सोवना राते नींद न आय ।
ज्यों जल छूटे माछरी तलफत रैन विहाय ॥३८९॥
जा घट में साँईं वसै सो क्यों छाना होय ।
जतन जतन करि दाविए तौ उँजियाला सोय ॥३९०॥
सब घट मेरा साँइयाँ सूनी सेज न कोय ।
वलिहारी वा दास की जा घट परगट होय ॥३९१॥

भेष

तत्व तिलक माथे दिया सुरति सरवनी कान ।
करनी कंठी कंठ में परसा पद निर्वान ॥३९२॥
मन माला तन मेखला भय की करै भभूत ।
अलख मिला सब देखता सो जोगी अवधूत ॥३९३॥
तन को जोगी सब करै मन को विरला कोय ।
सहजै सब विधि पाइए जो मन जोगी होय ॥३९४॥
हम तो जोगी मनहिं के तन के हैं ते और ।
मन का जोग लगावते दसा भई कछु और ॥३९५॥

चेतावनी

कविरा गर्व न कीजिए काल गहे कर केस ।
ना जानौं कित मारिहै क्या घर क्या परदेस ॥३९६॥

झूँठे सुख ,को सुख कहैं मानत हैं मन मोद ।
जगत चबेना काल का कुछ मुख में कुछ गोद ॥३९७॥

कुसल कुसल ही पूछते जग में रहा न कोय ।
जरा मुई ना भय मुआ कुसल कहाँ से होय ॥३९८॥

पानी केरा बुदबुदा अस मानुष की जात ।
देखत ही छिप जायगा ज्यों तारा परभात ॥३९९॥

रात गँवाई सोय कर दिवस गँवाया खाय ।
हीरा जनम अमोल था कौड़ी बदले जाय ॥४००॥

आछे दिन पाछे गए गुरु से किया न हेत ।
अब पछतावा क्या करै चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥४०१॥

काल्ह करै सो आज कर आज करै सो अब्ब ।
पल में परलै होयगी बहुरि करैगा कब्ब ॥४०२॥

पाव पलक की सुध नहीं करै काल्ह का साज ।
काल अचानक मारसी ज्यों तीतर को बाज ॥४०३॥

कबिरा नौबत आपनी दस दिन लेहु बजाय ।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखो आय ॥४०४॥

पाँचो नौबत बाजती होत छतीसो राग ।
सो मंदिर खाली पड़ा बैठन लागे काग ॥४०५॥

ऊजड़ खेड़े ठीकरी गढ़ि गढ़ि गए कुम्हार ।
रावन सरिखा चल गया लंका का सरदार ॥४०६॥

कबिरा गर्व न कीजिए अस जोबन की आस ।
टेसू फूला दिवस दस खंखर भया पलास ॥४०७॥

कबिरा गर्व न कीजिए ऊँचा देख अवास ।
काल्ह परा भुइँ लेटना ऊपर जमसी घास ॥४०८॥

ऐसा यह संसार है जैसा सेमर फूल ।
दिन दस के ब्योहार में झूठे रंग न भूल ॥४०९॥

माटी कहै कुम्हार को तूँ क्या रूँदे मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा मैं रूँदूँगी तोहिं ॥४१०॥
कविरा यह तन जात है सकै तो ठौर लगाव।
कै सेवा कर साध की कै गुरु के गुन गाव ॥४११॥
मोर तोर की जेवरी वटि बाँधा संसार।
दास कवीरा क्यों वँधे जाके नाम अधार ॥४१२॥
दुर्लभ मानुष जनम है देह न वारंवार।
तरवर ज्यों पत्ता झड़ै वहुरि न लागै डार ॥४१३॥
आए हैं सो जायँगे राजा रंक फकीर।
इक सिंहासन चढ़ि चले इक वँधि जात जँजीर ॥४१४॥
जो जानहु जिव आपना करहु जीव को सार।
जियरा ऐसा पाहुना मिलै न दूजी वार ॥४१५॥
कविरा यह तन जात है सकै तो राख वहोर।
खाली हाथों वे गए जिन के लाख करोर ॥४१६॥
आस पास जोधा खड़े सवी वजावैं गाल।
माँझ महल से ले चला ऐसा काल कराल ॥४१७॥
तन सराय मन पाहरू मनसा उतरी आय।
कोउ काहू का है नहीं देखा ठोंक वजाय ॥४१८॥
मैं मैं वड़ी वलाय है सको तो निकसो भाग।
कह कवीर कव लग रहै रुई लपेटी आग ॥४१९॥
वासर सुख ना रैन सुख ना सुख सपने माहिं।
जो नर विछुड़े नाम से तिन को धूप न छाहिं ॥४२०॥
अपने पहरे जागिए ना पड़ रहिए सोय।
ना जानौ छिन एक में किसका पहरा होय ॥४२१॥
दीन गँवायो सँग दुनी दुनी न चाली साथ।
पाँव कुल्हाड़ी मारिया मूरख अपने हाथ ॥४२२॥

मैं भँवरा तोहिं बरजिया बन बन बास न लेय ।
अटकैगा कहुँ बेल से तड़पि तड़पि जिय देय ॥४२३॥
बाड़ी के बिच भँवर था कलियाँ लेता बास ।
सो तो भँवरा उड़ि गया तजि बाड़ी की आस ॥४२४॥
भय बिनु भाव न ऊपजै भय बिनु होय न प्रीति ।
जब हिरदे से भय गया मिटी सकल रस रीति ॥४२५॥
भय से भक्ति करै सबै भय से पूजा होय ।
भय पारस है जीव को निर्भय होय न कोय ॥४२६॥
ऐसी गत संसार की ज्यों गाड़र की ठाट ।
एक पड़ा जेहि गाड़ में सबै जायँ तेहि बाट ॥४२७॥
इक दिन ऐसा होयगा कोउ काहू का नाहिं ।
घर की नारी को कहै तन की नारी जाहिं ॥४२८॥
भँवर बिलंबे बाग में बहु फूलन की आस ।
जीव बिलंबे विषय में अंतहुँ चले निरास ॥४२९॥
चलती चक्की देखि के दिया कबीरा रोय ।
दुइ पट भीतर आइके साबित गया न कोय ॥४३०॥
सेमर सुवना सेइया दुइ ढेंढी की आस ।
ढेंढी फूटि चटाक दे सुवना चला निरास ॥४३१॥
धरती करते एक पग समुँदर करते फाल ।
हाथन परबत तौलते तिनहूँ खाया काल ॥४३२॥
आज काल्ह दिन एक में इस्थिर नाहिं सरीर ।
कह कबीर कस राखिहौ काँचे बासन नीर ॥४३३॥
माली आवत देखिकै कलियाँ करैं पुकार ।
फूली फूली चुनि लिए काल्हि हमारी बार ॥४३४॥
काँची काया मन अथिर थिर थिर काज करंत ।
ज्यों ज्यों नर निधड़क फिरत त्यों त्यों काल हसंत ।४३५।

हम जानैं थे खायँगे बहुत जमीं बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रह गया पकरि लै गया काल ॥४३६॥
दव की दाही लाकड़ी ठाढ़ी करै पुकार।
अब जो जाउँ लोहार घर डाहै दूजी बार ॥४३७॥
जरनेहारा भी मुआ मुआ जरावन-हार।
है है करते भी मुए कासों करौं पुकार ॥४३८॥
भाई बीर बटाउआ भरि भरि नैनन रोय।
जाका था सो लेलिया दीन्हा था दिन दोय ॥४३९॥
तेरा संगी कोइ नहीं सभी स्वारथी लोय।
मन परतीति न ऊपजै जिवै विस्वास न होय ॥४४०॥
कविरा रसरी पाँव में कह सोवै सुख चैन।
स्वाँस नगाड़ा कूँच का बाजत है दिन रैन ॥४४१॥
पात झरंता यों कहै सुनु तरवर बनराय।
अब के बिछुरे ना मिलैं दूर परैंगे जाय ॥४४२॥
कविरा जंत्र न बाजई टूटि गया सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै चला बजावन-हार ॥४४३॥
साथी हमरे चलि गए हम भी चालनहार।
कागद में बाकी रही तातें लागी बार ॥४४४॥
दस द्वारे का पींजरा तामें पंछी पौन।
रहिबे को आचरज है जाय तो अचरज कौन ॥४४५॥
सुर नर मुनि औ देवता सात द्वीप नव खंड।
कह कबीर सब भोगिया देह धरे का दंड ॥४४६॥

उपदेश

जो तोको काँटा बुवै ताहि बोव तू फूल।
तोहिं फूल को फूल है वाको है तिरसूल ॥४४७॥

दुर्बल को न सताइए जाकी मोटी हाय।
विना जीव की स्वाँस से लोह भसम ह्वै जाय ॥४४८॥
कविरा आप ठगाइए और न ठगिए कोय।
आप ठगा सुख होत है और ठगे दुख होय ॥४४९॥
या दुनिया में आइके छाँड़ि देइ तू एँठ।
लेना होइ सो लेइ ले उठी जात है पैंठ ॥४५०॥
ऐसी वानी वोलिए मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै आपहुँ सीतल होय ॥४५१॥
जग में वैरी कोइ नहीं जो मन सीतल होय।
या आपा को डारि दे दया करै सब कोय ॥४५२॥
हस्ती चढ़िए ज्ञान की सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप संसार है भूसन दे झख मारि ॥४५३॥
वाजन देहु जंतरी कलि कुकही मत छेड़।
तुझे पराई क्या पड़ी अपनी आप निवेड़ ॥४५४॥
आवत गारी एक है उलटत होय अनेक।
कह कवीर नहि उलटिए वही एक ही एक ॥४५५॥
गारी ही सों ऊपजै कलह कष्ट औ मीच।
हारि चलै सो साधु है लागि मरै सो नीच ॥४५६॥
जैसा अनजल खाइए तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिए तैसी वानी सोय ॥४५७॥
माँगन मरन समान है मति कोइ माँगो भीख।
माँगन ते मरना भला यह सतगुरु की सीख ॥४५८॥
उदर समाता अन्न लै तनहिं समाता चीर।
अधिकहि संग्रह ना करै ताका नाम फकीर ॥४५९॥
कहते को कहि जान दे गुरु की सीख तु लेइ।
साकट जन औ स्वान को फिर जवाव मत देइ ॥४६०॥

जो कोइ समभै सैन मैं तासों कहिए वैन।
सैन वैन समभै नहीं तासौं कछू कहै न ॥४६१॥
वहते को मत वहन दे कर गहि ऐंचहु ठौर।
कहा सुना मानै नहीं वचन कहो दुइ और ॥४६२॥
सकल दुरमती दूर करि आछो जन्म वनाव।
काग गमन गति छाँड़ि दे हंस गमन गति आव ॥४६३॥
मधुर वचन है औषधी कटुक वचन है तीर।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै सालै सकल सरीर ॥४६४॥
वोलत ही पहिचानिए साहु चोर को घाट।
अंतर की करनी सवै निकसै मुख की वाट ॥४६५॥
पढ़ि पढ़ि के पत्थर भए लिखि लिखि भए जो ईंट।
कविरा अंतर प्रेम की लागी नेक न छींट ॥४६६॥
नाम भजो मन वसि करो यही वात है संत।
काहे को पढ़ि पचि मरो कोटिन ज्ञान गरंथ ॥४६७॥
करता था तो क्यों रहा अव करि क्यों पछिताय।
वोवे पेड़ ववूल का आम कहाँ तें खाय ॥४६८॥
कविरा दुनिया देहरे सीस नवावन जाय।
हिरदे माहीं हरि वसैं तू ताही लौ लाय ॥४६९॥
मन मथुरा दिल द्वारिका काया कासी जान।
दस द्वारे का देहरा तामें ज्योति पिछान ॥४७०॥
पूजा सेवा नेम व्रत गुड़ियन का सा खेल।
जव लग पिउ परसैं नहीं तव लग संसय मेल ॥४७१॥
तीरथ चाले दुइ जना चित चंचल मन चोर।
एको पाप न उतरिया मन दस लाए जोर ॥४७२॥
न्हाए धोए क्या भया जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै धोए वास न जाय ॥४७३॥

दुर्बल को न सताइए जाकी मोटी हाय।
विना जीव की स्वाँस से लोह भसम ह्वै जाय ॥४४८॥

कविरा आप ठगाइए और न ठगिए कोय।
आप ठगा सुख होत है और ठगे दुख होय ॥४४९॥

या दुनिया में आइके छाँड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होइ सो लेइ ले उठी जात है पैंठ ॥४५०॥

ऐसी वानी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै आपहुँ सीतल होय ॥४५१॥

जग में वैरी कोइ नहीं जो मन सीतल होय।
या आपा को डारि दे दया करै सब कोय ॥४५२॥

हस्ती चढ़िए ज्ञान की सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप संसार है भूसन दे झख मारि ॥४५३॥

वाजन देहु जंतरी कलि कुकही मत छेड़।
तुझे पराई क्या पड़ी अपनी आप निवेड़ ॥४५४॥

आवत गारी एक है उलटत होय अनेक।
कह कवीर नहि उलटिए वही एक ही एक ॥४५५॥

गारी ही सों ऊपजै कलह कष्ट औ मीच।
हारि चलै सो साधु है लागि मरै सो नीच ॥४५६॥

जैसा अनजल खाइए तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिए तैसी वानी सोय ॥४५७॥

माँगन मरन समान है मति कोइ माँगो भीख।
माँगन ते मरना भला यह सतगुरु की सीख ॥४५८॥

उदर समाता अन्न लै तनहिं समाता चीर।
अधिकहि संग्रह ना करै ताका नाम फकीर ॥४५९॥

कहते को कहि जान दे गुरु की सीख तु लेइ।
साकट जन औ स्वान को फिर जवाब मत देइ ॥४६०॥

जो कोइ समझै सैन में तासें कहिए वैन ।
सैन वैन समझै नहीं तासों कछू कहै न ॥४६१॥
वहते को मत वहन दे कर गहि ऐंचहु ठौर ।
कहा सुना मानै नहीं वचन कहो दुइ और ॥४६२॥
सकल दुरमती दूर करि आछो जन्म वनाव ।
काग गमन गति छाँड़ि दे हंस गमन गति आव ॥४६३॥
मधुर वचन है औषधी कटुक वचन है तीर ।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै सालै सकल सरीर ॥४६४॥
वोलत ही पहिचानिए साहु चोर को घाट ।
अंतर की करनी सवै निकसै मुख की वाट ॥४६५॥
पढ़ि पढ़ि के पत्थर भए लिखि लिखि भए जो ईंट ।
कविरा अंतर प्रेम की लागी नेक न छींट ॥४६६॥
नाम भजो मन वसि करो यही वात है संत ।
काहे को पढ़ि पचि मरो कोटिन ज्ञान गरंथ ॥४६७॥
करता था तो क्यों रहा अव करि क्यों पछिताय ।
वोवे पेड़ ववूल का आम कहाँ तें खाय ॥४६८॥
कविरा दुनिया देहरे सीस नवावन जाय ।
हिरदे माहीं हरि वसैं तू ताही लौ लाय ॥४६९॥
मन मथुरा दिल द्वारिका काया कासी जान ।
दस द्वारे का देहरा तामें ज्योति पिछान ॥४७०॥
पूजा सेवा नेम व्रत गुड़ियन का सा खेल ।
जव लग पिउ परसैं नहीं तव लग संसय मेल ॥४७१॥
तीरथ चाले दुइ जना चित चंचल मन चोर ।
एको पाप न उतरिया मन दस लाए जोर ॥४७२॥
न्हाए धोए क्या भया जो मन मैल न जाय ।
मीन सदा जल में रहै धोए वास न जाय ॥४७३॥

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित हुआ न कोय ।
एकै अच्छर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय ॥४७४॥
पढ़े गुने सीखे सुने मिटी न संसय सूल ।
कह कवीर कासों कहूँ येही दुख का मूल ॥४७५॥
पंडित और मसालची दोनों सूझै नाहिं ।
औरन को कर चाँदना आप अँधेरे माहिं ॥४७६॥
ऊँचे गाँव पहाड़ पर औ मोटे की बाँह ।
ऐसो ठाकुर सेइए उवरिय जाकी छाँह ॥४७७॥
हे कवीर तैं उतरि रहु सँवल परोह न साथ ।
सवल घटे औ पग थके जीव विराने हाथ ॥४७८॥
अपा तजो औ हरि भजो नख सिख तजो विकार ।
सव जिउ ते निरवैर रहु साधु मता है सार ॥४७९॥
वहु वंधन ते वाँधिया एक विचारा जीव ।
का वल छूटै आपने जो न छुड़ावै पीव ॥४८०॥
समुझाए समुझै नहीं परहथ आप विकाय ।
मैं खैंचत हौं आप को चला सो जमपुर जाय ॥४८१॥
वोह्र तो वेसहि भया तू मति होय अयान ।
तू गुणवंत वे निरगुणी मति एकै में सान ॥४८२॥
पूरा साहव सेइए सव विधि पूरा होइ ।
ओछे नेह लगाइए मूलौ आवै खोइ ॥४८३॥
पहिले बुरा कमाइ कै बाँधी विष कै मोट ।
कोटि कर्म मिटे पलक में आवै हरि की ओट ॥४८४॥

काम

सह कामी दीपक दसा सोखै तेल निवास ।
कविरा हीरा संत जन सहजै सदा प्रकास ॥४८५॥

कामी क्रोधी लालची इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा जाति वरन कुल खोय ॥४८६
भक्ति बिगारी कामियाँ इंद्री केरे स्वाद।
हीरा खोया हाथ से जनम गँवाया बाद ॥४८७॥
जहाँ काम तहँ नाम नहिं जहाँ नाम नहिं काम।
दोनों कबहूँ ना मिलैं रवि रजनी इक ठाम ॥४८८॥
काम क्रोध मद लोभ की जब लग घट में खान।
कहा मुर्ख कह पंडिता दोनों एक समान ॥४८९॥
काम काम सब कोइ कहै काम न चीन्है कोय।
जेती मन की कल्पना काम कहावै सोय ॥४९०॥

क्रोध

कोटि परम लागे रहैं एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया जब आया हंकार ॥४९१॥
दसो दिसा से क्रोध की उठी अपरबल आगि।
सीतल संगति साधु की तहाँ उबरिए भागि ॥४९२॥
कुबुधि कमानी चढ़ि रही कुटिल बचन का तीर।
भरि भरि मारै कान में सालै सकल सरीर ॥४९३॥
कुटिल बचन सब से बुरा जारि करै तन छार।
साध बचन जल रूप है बरसै अमृत धार ॥४९४॥
करक करेजे गड़ि रही बचन वृक्ष की फाँस।
निकसाए निकसै नहीं रही सो काहू गाँस ॥४९५॥
मधुर बचन हैं औषधी कटुक बचन हैं तीर।
श्रवण द्वार ह्वै संचरै सालै सकल शरीर ॥४९६॥

लोभ

जब मन लागै लोभ सों गया विषय में सोय ।
कहै कबीर विचारि कै कस भक्ती धन होय ॥४९७॥
कबिरा त्रिस्ना पापिनी तासों प्रीति न जोरि ।
पैंड पैंड पाछे परै लागै मोटी खोरि ॥४९८॥
कबिरा औंधी खोपरी कबहूँ धापै नाहिं ।
तीन लोक की संपदा कब आवै घर माहिं ॥४९९॥
आब गई आदर गया नैनन गया सनेह ।
ये तीनों तबही गए जबहिं कहा कछु देह ॥५००॥
बहुत जतन करि कीजिए सब फल जाय नसाय ।
कबिरा संचय सूम धन अंत चोर लै जाय ॥५०१॥

मोह

मोह फंद सब फाँदिया कोइ न सकै निरवार ।
कोइ साधू जन पारखी बिरला तत्त्व विचार ॥५०२॥
मोह मगन संसार है कन्या रही कुमारि ।
काहु सुरति जो ना करी फिरि फिरि लै अवतारि ॥५०३॥
जहँ लग सब संसार है मिरग सबन को मोह ।
सुर नर नाग पताल अरु ऋषि मुनिवर सब जोह ॥५०४॥
सलिल मोह की धार में बहि गए गहिर गँभीर ।
सुच्छम मछरी सुरति है चढ़ती उलटे नीर ॥५०५॥
अष्टन केरी मोटरी सिर से धरी उतारि ।
जाहि कहौं मैं एक हौं मोहि कहै है चारि ॥५०६॥
जाको मुनिवर तप करैं वेद पढ़ैं गुन गाय ।
सोई देव सिखापना नहिं कोई पतिआय ॥५०७॥

भर्म परा तिहुँ लोक में भर्म वसा सव ठाउँ ।
कहहि कवीर पुकारि के वसैं भर्म के गाउँ ॥५०८॥
युवा जरा वालापन वीत्यो चौथि अवस्था आई ।
जस मुसवा को तकै विलैया तस जम घात लगाई ॥५०९॥
दर्पण केरी जो गुफा सोनहा पैठो धाय ।
देखत प्रतिमा आपनी भूँकि भूँकि मरि जाय ॥५१०॥
मनुष विचारा क्या करै कहे न खुलैं कपाट ।
श्वान चौक वैठाय कै पुनि पुनि ऐपन चाट ॥५११॥

अहंकार

माया तजी तो क्या भया मान तजा नहिं जाय ।
मान वड़े मुनिवर गले मान सवन को खाय ॥५१२॥
मान वड़ाई कूकरी संतन खेदी जानि ।
पांडव जग पूरन भया सुपच विराजे आनि ॥५१३॥
मान वड़ाई जगत में कूकर की पहिचानि ।
मीत किए मुख चाटही वैर किए तन हानि ॥५१४॥
वड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर ।
पंथी को छया नहीं फल लागै अति दूर ॥५१५॥
कविरा अपने जीव तें ये दो वातें धोय ।
मान वड़ाई कारने आछत मूल न खोय ॥५१६॥
प्रभुता को सव कोउ भजै प्रभु को भजै न कोय ।
कह कवीर प्रभु को भजै प्रभुता चेरी होय ॥५१७॥
जहँ आपा तहँ आपदा जहँ संसय तहँ सोग ।
कह कवीर कैसे मिटैं चारों दीरघ रोग ॥५१८॥
माया त्यागे क्या भया मान तजा नहिं जाय ।
जेहि मानै मुनिवर ठगे मान सवन को खाय ॥५१९॥

कपट

कबिरा तहाँ न जाइए जहाँ कपट का हेत ।
जानो कली अनार की तन राता मन स्वेत ॥५२०॥
चित कपटी सब सों मिलै माहीं कुटिल कठोर ।
इक दुरजन इक आरसी आगे पीछे ओर ॥५२१॥
हेत प्रीति सों जो मिलै ताको मिलिए धाय ।
अंतर राखे जो मिलै तासों मिलै बलाय ॥५२२॥

आशा

आसा जीवै जग मरै लोग मरै मन जाहि ।
धन संचै सो भी मरै उबरै सो धन खाहि ॥५२३॥
आसन मारे का भया मुई न मन की आस ।
ज्यों तेली के बैल को घर ही कोस पचास ॥५२४॥
आसा एक जो नाम की दूजी आस निरास ।
पानी माहीं घर करै सो भी मरै पियास ॥५२५॥
कबिरा जोगी जगत गुरु तजै जगत की आस ।
जो जग की आसा करै जगत गुरू वह दास ॥५२६॥
आसा का ईंधन करूँ मनसा करूँ भभूत ।
जोगी फिरि फिर करूँ यों बनि आवै सूत ॥५२७॥

तृष्णा

कबिरा सो धन संचिए जो आगे को होय ।
सीस चढ़ाए गाठरी जात न देखा कोय ॥५२८॥
की त्रिस्ना है डाकिनी की जीवन का काल ।
और और निस दिन चहै जीवन करै बिहाल ॥५२९॥

निद्रा

कबिरा सोया क्या करै उठि न भजै भगवान ।
जम जब धर लै जायँगे पड़ा रहेगा म्यान ॥५३०॥
कबिरा सोया क्या करै जागन की करु चौंप ।
ये दम हीरा लाल है गिनि गिनि गुरु को सौंप ॥५३१॥
नींद निसानी मीच की उठु कबीरा जाग ।
और रसायन छाँड़ि कै नाम रसायन लाग ॥५३२॥
पिउ पिउ कहि कहि कूकिए ना सोइय असरार ।
रात दिवस के कूकते कबहुँक लगै पुकार ॥५३३॥
सोता साध जगाइए करै नाम का जाप ।
यह तीनों सोते भले साकत सिंह औ साँप ॥५३४॥
जागन में सोवन करै सोवन में लौ लाय ।
सुरति डोरि लागी रहै तार टूटि नहिं जाय ॥५३५॥

निंदा

निंदक नियरे राखिए आँगन कुटी छवाय ।
बिन पानी साबुन बिना निर्मल करै सुभाय ॥५३६॥
तिनका कबहुँ न निंदिए जो पाँवन तर होय ।
कबहूँ उड़ि आँखिन परै पीर घनेरी होय ॥५३७॥
साता सायर में फिरा जंबुदीप दै पीठ ।
निंद पराई ना करै सो कोइ बिरला दीठ ॥५३८॥
दोष पराया देखि करि चले हसंत हसंत ।
अपने याद न आवई जाको आदि न अंत ॥५३९॥
निंदक एकहु मति मिलै पापी मिलौ हजार ।
इक निंदक के सीस पर कोटि पाप को भार ॥५४०॥

माया

माया छाया एक सी विरला जानै कोय ।
भगताँ के पीछे फिरै सनमुख भागै सोय ॥५४१॥
माया तो ठगनी भई ठगत फिरै सब देस ।
जा ठग या ठगनी ठगी ता ठग को आदेस ॥५४२॥
कबिरा माया रूखड़ी दो फल की दातार ।
खोवत खरचत मुक्ति भे संचत नरक दुआर ॥५४३॥
माया तो है राम की मोदी सब संसार ।
जाको चिट्ठी ऊतरी सोई खरचन-हार ॥५४४॥
माया संचै संग्रहै वह दिन जानै नाहिं ।
सहस बरस का सब करै मरै महूरत माहिं ॥५४५॥
कबिरा माया मोहनी मोहे जान सुजान ।
भागे हूँ छूटै नहीं भरि भरि मारै बान ॥५४६॥
माया के झक जग जरै कनक कामिनी लागि ।
कह कबीर कस बाँचिहै रुई लपेटी आगि ॥५४७॥
मैं जानूँ हरि से मिलूँ मो मन मोटी आस ।
हरि बिच डारै अंतरा माया बड़ी पिचास ॥५४८॥
आँधी आई ज्ञान की ढही भरम की भीति ।
माया टाटी उड़ि गई लगी नाम मैं प्रीति ॥५४९॥
मीठा सब कोइ खात है बिष ह्वै लागै धाय ।
नीँब न कोई पीवसी सबै रोग मिटि जाय ॥५५०॥
माया तरवर त्रिविधि का साखा बिषय संताप ।
सीतलता सपने नहीं फल फीका तन ताप ॥५५१॥
जिनको साँई रँग दिया कबी न होइ कुरंग ।
दिन दिन बानी आगरी चढ़ै सवाया रंग ॥५५२॥

माया दीपक नर पतँग भ्रमि भ्रमि माहिं परंत ।
कोइ एक गुरु ज्ञान तें उबरे साधू संत ॥५५३॥

कनक और कामिनी

चलौं चलौं सब कोइ कहै पहुँचे विरला कोय ।
एक कनक औ कामिनी दुरगम घाटी दोय ॥५५४॥
नारी की झाँईं परत अंधा होत भुजंग ।
कविरा तिनकी कौन गति नित नारी को संग ॥५५५॥
पर नारी पैनी छुरी मति कोइ लाओ अंग ।
रावन के दस सिर गए पर नारी के संग ॥५५६॥
पर नारी पैनी छुरी विरला वाँचे कोय ।
ना वहि पेट सँचारिए सर्व सोन की होय ॥५५७॥
दीपक सुंदर देखि कै जरि जरि मरै पतंग ।
वढ़ी लहर जो विषय की जरत न मोड़ै अंग ॥५५८॥
साँप वीछि को मंत्र है माहुर झारे जात ।
विकट नारि पाले परी काटि करेजा खात ॥५५९॥
कनक कामिनी देखि कै तू मति भूल सुरंग ।
विछुरन मिलन दुहेलरा केंचुकि तजै भुजंग ॥५६०॥

मादक द्रव्य

मद तो वहुतक भाँति का ताहि न जानै कोय ।
तन-मद मन-मद जाति-मद माया-मद सव लोय ॥५६१॥
विद्या-मद औ गुनहुँ-मद राज-मद्द उनमद्द ।
इतने मद को रद करै तव पावै अनहद्द ॥५६२॥

कबिरा माता नाम का मद मतवाला नाहिं।
नाम पियाला जो पियै सो मतवाला नाहिं ॥५६३॥

शील

सील छिमा जब ऊपजै अलख दृष्टि तब होय।
बिना सील पहुँचै नहीं लाख कथै जो कोय ॥५६४॥
सीलवंत सब तें बड़ा सर्ब रतन की खानि।
तीन लोक की संपदा रही सील में आनि ॥५६५॥
ज्ञानी ध्यानी संजमी दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत हैं सीलवंत कोइ एक ॥५६६॥
सुख का सागर सील है कोइ न पावै थाह।
सब्द बिना साधू नहीं द्रव्य बिना नहीं साह ॥५६७॥
घायल ऊपर घाव लै टारै त्यागी सोय।
भर जोबन में सीलवँत बिरला होय तो होय ॥५६८॥

क्षमा

छिमा बड़न को चाहिये छोटन को उत्पात।
कहा बिष्णु को घटि गया जो भृगु मारी लात ॥५६९॥
जहाँ दया तहँ धर्म्म है जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है जहाँ छिमा तहँ आप ॥५७०॥
करगस सम दुर्जन बचन रहै संत जन टारि।
बिजुली परै समुद्र में कहा सकैगी जारि ॥५७१॥
खोद खाद धरती सहै काट कूट बनराय।
कुटिल बचन साधू सहै और से सहा न जाय ॥५७२॥

उदारता

कबिरा गुरु के मिलन की बात सुनी हम दोय ।
कै साहेब का नाम लै कै कर ऊँचा होय ॥५७३॥
ऋतु बसंत जाचक भया हरषि दिया द्रुम पात ।
तातें नव पल्लव भया दिया दूर नहिं जात ॥५७४॥
जो जल बाढ़ै नाव में घर में बाढ़ै दाम ।
दोऊ हाथ उलीचिए यहि सज्जन को काम ॥५७५॥
हाड़ बड़ा हरि भजन कर द्रव्य बड़ा कछु देय ।
अकल बड़ी उपकार कर जीवन का फल येह ॥५७६॥
देह धरे का गुन यही देहु देहु कछु देहु ।
बहुरि न देही पाइए अब की देहु सो देहु ॥५७७॥
सत ही में सत बाँटई रोटी में तें टूक ।
कह कबीर ता दास को कबहूँ न आव चूक ॥५७८॥

संतोष

चाह गई चिंता मिटी मनुवाँ बेपरवाह ।
जिनको कछू न चाहिए सोई साहंसाह ॥५७९॥
माँगन गए सो मरि रहे मरे सो माँगन जाहिं ।
तिनसे पहले वे मरे होत कहत जो नाहिं ॥५८०॥
गोधन गजधन बाजिधन और रतन धन खानि ।
जब आवै संतोष धन सब धन धूरि समान ॥५८१॥
मरि जाऊँ माँगूँ नहीं अपने तन के काज ।
परमारथ के कारने मोहिं न आवै लाज ॥५८२॥

धैर्य

धीरे धीरे रे मना धीरे सब कछु होय।
माली सींचै सौ घड़ा ऋतु आए फल होय ॥५८३॥
कबिरा धीरज के धरे हाथी मन भर खाय।
टूक एक के कारने स्वान घरै घर जाय ॥५८४॥
कबिरा भँवर में बैठि के भौचक मना न जाय।
डूबन का भय छाँड़ि दे करता करै सो होय ॥५८५॥
मैं मेरी सब जायगी तब आवैगी और।
जब यह निश्चल होयगा तब पावैगा ठौर ॥५८६॥

दीनता

दीन गरीबी बंदगी साधन सों आधीन।
ताके संग मैं यों रहूँ ज्यों पानी सँग मीन ॥५८७॥
दीन लखै मुख सबन को दीनहि लखै न कोय।
भली बिचारी दीनता नरहूँ देवता होय ॥५८८॥
दीन गरीबी बंदगी सब सें आदर भाव।
कह कबीर तेई बड़ा जामें बड़ा सुभाव ॥५८९॥
कबिरा नवै सो आप को पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तोलिए नवै सो भारी होय ॥५९०॥
ऊँचे पानी ना टिकै नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भरि पिवै ऊँचा प्यासा जाय ॥५९१॥
नीचे नीचे सब तरे जेते बहुत अधीन।
चढ़ि बोहित अभिमान की बूड़े ऊँच कुलीन ॥५९२॥
सब तें लघुताई भली लघुता तें सब होय।
जस दुतिया को चंद्रमा सीस नवै सब कोय ॥५९३॥

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल खोजों आपना मुझ सा बुरा न होय ॥५९४॥
मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कछु है सो तोर ।
तेरा तुझ को सौंपते क्या लागैगा मोर ॥५९५॥
लघुता ते प्रभुता मिलै प्रभुता ते प्रभु दूरि ।
चींटी लै शक्कर चली हाथी के सिर धूरि ॥५९६॥

दया

दया भाव हिरदे नहीं ज्ञान कथै वेहद ।
ते नर नरकहिं जाहिंगे सुनि सुनि साखी सब्द ॥५९७॥
दया कौन पर कीजिए कापर निर्दय होय ।
साँईं के सब जीव हैं कीरी कुंजर दोय ॥५९८॥

सत्यता

साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप ।
जाके हिरदे साँच है ता हिरदे गुरु आप ॥५९९॥
साँईं से साँचा रहौ साँईं साँच सुहाय ।
भाँवै लंबे केस रख भाँवै घोट मुँडाय ॥६००॥
साँचे स्राप न लागई साँचे काल न खाय ।
साँचे को साँचा मिलै साँचे माँहि समाय ॥६०१॥
साँच बिना सुमिरन नहीं भय बिन भक्ति न होय ।
पारस में परदा रहै कंचन केहि विधि होय ॥६०२॥
प्रेम प्रीति का चोलना पहिरि कबीरा नाच ।
तन मन तापर वार हूँ जो कोई बोलै साँच ॥६०३॥
साँचे कोइ न पतीजई झूठे जग पतियाय ।
गली गली गोरस फिरै मदिरा बैठि बिकाय ॥६०४॥

साँच कहूँ तो मारिहैं झूठे जग पतियाय।
ये जग काली कूकरी जो छेड़ै ता खाय ॥६०५॥
सब ते साँचा है भला जो साँचा दिल होइ।
साँच विना सुख नाहिना कोटि करै जो कोइ ॥६०६॥
साँचे सौदा कीजिए अपने मन में जानि।
साँचे हीरा पाइए झूठे मूरै हानि ॥६०७॥

वाचनिक ज्ञान

ज्यों अँधरे को हाथिया सब काहू को ज्ञान।
अपनी अपनी कहत हैं का को धरिए ध्यान ॥६०८॥
ज्ञानी से कहिए कहा कहत कबीर लजाय।
अंधे आगे नाचने कला अकारथ जाय ॥६०९॥
ज्ञानी भूले ज्ञान कथि निकट रह्यो निज रूप।
बाहर खोजैं बापुरे भीतर वस्तु अनूप ॥६१०॥
भीतर तो भेद्यो नहीं बाहर कथै अनेक।
जो पै भीतर लखि परै भीतर बाहर एक ॥६११॥

विचार

पानी केरा पूतला राखा पवन सँवार।
नाना बानी बोलता जोति धरी करतार ॥६१२॥
एक शब्द में सब कहा सब ही अर्थ विचार।
भजिए निर्गुन नाम को तजिए विषै विकार ॥६१३॥
ग्यान तराजू आनि करि सब रस देखा तोल।
सब रस माहीं जीभ रस जो कोइ जानै बोल ॥६१४॥
अविचारी मन जग मिला मिला विचारि न कोय।
कोटि अविचारी पाइए एक विचारि जो होय ॥६१५॥

मन दीया कहिं और ही तन साधन के संग ।
कह कबीर कोरी गजी कैसे लागै रंग ॥६१६॥
लोग भरोसे कौन के बैरि रहे अरगाय ।
ऐसे जियरै जम लुटै मेढ़ैं लुटैं कसाय ॥६१७॥
बोली एक अमोल है जो कोइ बोलै जानि ।
हिए तराजू तौलि के तब मुख बाहर आनि ॥६१८॥

विवेक

फूटी आँखि विवेक की लखै न संत असंत ।
जाके सँग दस बीस हैं ताका नाम महंत ॥६१९॥
साधू मेरे सब बड़े अपनी अपनी ठौर ।
सब्द विवेकी पारखी सो माथे के मौर ॥६२०॥
समझा समझा एक है अन समझा सब एक ।
समझा कोई जानिए जाके हृदय विवेक ॥६२१॥
भँवर जाल बगु जाल है बूड़े जीव अनेक ।
कह कबीर ते बाँचिहैं जिनके हृदय विवेक ॥६२२॥
जहँ गाहक तहँ हैं। नहीं हैं। जहँ गाहँक नाहिं ।
बिन विवेक भटकत फिरै पकरि शब्द की छाँहि ॥६२३॥

बुद्धि और कुबुद्धि

अकिल अरस सों ऊतरी विधना दीन्हीं बाँटि ।
एक अभागा रह गया एकन लीन्ही छाँटि ॥६२४॥
बिना वसीले चाकरी बिना बुद्धि की देह ।
बिना ज्ञान का जोगना फिरै लगाए खेह ॥६२५॥
समझा का घर और है अनसमझा का और ।
जा घर में साहब बसैं बिरला जानै ठौर ॥६२६॥

मूरख को समझावते ज्ञान गाँठि को जाय ।
कोइला होइ न ऊजरो नौ मन साबुन लाय ॥६२७॥
मूरख सों क्या बोलिए सठ सों कहा बसाय ।
पाहन में क्या मारिए चोखा तीर नसाय ॥६२८॥
पल में परलय बीतिया लोगन लगी तमारि ।
आगिल सोच निवारि कै पाछे करो गोहारि ॥६२९॥

आहार

खट्टा मीठा चरपरा जिह्वा सब रस लेय ।
चोरों कुतिया मिलि गई पहरा किस का देय ॥६३०॥
खट्टा मीठा देखि कै रसना मेलै नीर ।
जब लग मन पाको नहीं काँचो निपट कबीर ॥६३१॥
बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल ।
जो बकरी को खात है ताको कौन हवाल ॥६३२॥
दिन को रोजा रहत है रात हनत है गाय ।
यह तो खून वह बंदगी कहु क्यों खुसी खुदाय ॥६३३॥
खूब खाना है खीचड़ी माहिं परा टुक लौन ।
मांस पराया खाय कर गला कटावै कौन ॥६३४॥
रूखा सूखा खाइ कै ठंडा पानी पीव ।
देखि बिरानी चूपड़ी मत ललचावै जीव ॥६३५॥
कबिरा साईं मुज्झ को रूखी रोटी देय ।
चूपड़ी माँगत मैं डरूँ रूखी छीनि न लेय ॥६३६॥
[illegible] सों [illegible] ।
[illegible] चूपड़ी [illegible] पाप ॥६३७॥

संसारोत्पत्ति

प्रथमै समरथ आप रह दूजा रहा न कोय।
दूजा केहि विधि ऊपजा पूछत हौं गुरु सोय ॥६३८॥
तब सतगुरु मुख बोलिया सुकृत सुनो सुजान।
आदि अंत की पारचै तोसों कहौं बखान ॥६३९॥
प्रथम सुरति समरथ कियो घटमें सहज उचार।
ताते जामन दीनिया सात करी विस्तार ॥६४०॥
दूजे घट इच्छा भई चित मनसा तो कीन्ह।
सात रूप निरमाइया अविगत काहु न चीन्ह ॥६४१॥
तब समरथ के श्रवण ते मूल सुरति भै सार।
शब्द कला ताते भई पाँच ब्रह्म अनुहार ॥६४२॥
पाँचों पाँचों अंड धरि एक एक माँ कीन्ह।
दुइ इच्छा तहँ गुप्त हैं सो सुकृत चित दीन्ह ॥६४३॥
योग भया यकु कारने ऊजो अक्षर कीन्ह।
या अवगति समरथ करी ताहि गुप्त करि दीन्ह ॥६४४॥
श्वासा सोहं ऊपजे कीन अमी बंधान।
आठ अंश निरमाइया चीन्हों संत सुजान ॥६४५॥
तेज अंड आचिंत्य का दीन्हों सकल पसार।
अंड शिखा पर बैठि कै अधर दीप निरधार ॥६४६॥
ते अचिंत्य के प्रेम ते उपजे अक्षर सार।
चारि अंश निरमाइया चारि वेद विस्तार ॥६४७॥
तब अक्षर का दीनिया नींद मोह अलसान।
वे समरथ अविगत करी मर्म कोइ नहिं जान ॥६४८॥
जब अक्षर के नींद गै दबी सुरति निरवान।
श्याम बरण इक अंड है सो जल में उतरान ॥६४९॥

अक्षर घट में ऊपजे व्याकुल संशय शूल ।
किन अंडा निरमाइया कहा अंड का मूल ॥६५०॥
तेहि अंड के मुक्ख पर लगी शब्द की छाप ।
अक्षर दृष्टि से फूटिया दश द्वारे कढ़ि वाप ॥६५१॥
तेहि ते ज्योति निरंजनौ प्रगटे रूप निधान ।
काल अपर वल वीर भा तीनि लोक परधान ॥६५२॥
ताते तीनों देव भे ब्रह्मा विष्णु महेश ।
चारि खानि तिन सिरजिया माया के उपदेश ॥६५३॥
लख चौरासी धार माँ तहाँ जीव दिय वास ।
चौदह जम रखवारिया चारि वेद विश्वास ॥६५४॥
आपु आपु सुख सवर मैं एक अंड के माहिं ।
उत्पति परलय दुःख सुख फिर आवहिं फिर जाहिं ।६५५।
सात सुरति सव मूल है प्रलयहुँ इनहीं माहिं ।
इनहीं में से ऊपजे इनहीं माँह समाहिं ॥६५६॥
सोइ ख्याल समरत्थ कर रहे सो अछपछ पाइ ।
सोइ संधि ले आइया सोवत जगहि जगाइ ॥६५७॥
सात सुरति के वाहिरे सोरह संख के पार ।
तहँ समरथ को वैठका हंसन केर अधार ॥६५८॥

मन

मन के मते न चालिए मन के मते अनेक ।
जो मन पर असवार है सो साधू कोइ एक ॥६५९॥
मन-मुरीद संसार है गुरु-मुरीद कोइ साध ।
जो मानै गुरु वचन को ताको मता अगाध ॥६६०॥
मन को मारूँ पटकि के टूक टूक होइ जाय ।
विप की क्यारी वोइ के लुनता क्यों पछिताय ॥६६१॥

मन पाँचों के वसि परा मन के वस नहिं पाँच ।
जित देखूँ तित दौ लगी जित भागूँ तित आँच ॥६६२॥
कविरा वेरी सवल हैं एक जीव रिपु पाँच ।
अपने अपने स्वाद को वहुत नचावैं नाच ॥६६३॥
कविरा मन तो एक है भावै तहाँ लगाय ।
भावै गुरू की भक्ति कर भावैं विषय कमाय ॥६६६॥
मन के मारे वन गए वन तजि वस्ती माहिं ।
कह कवीर क्या कीजिए यह मन ठहरै नाहिं ॥६६५॥
जेती लहर समुद्र की तेती मन की दौर ।
सहजै हीरा नीपजै जो मन आवै ठौर ॥६६६॥
पहले यह मन काग था करता जीवन-घात ।
अव तो मन हंसा भया मोती चुँगि चुँगि खात ॥६६७॥
कविरा मन परवत हता अव मैं पाया कानि ।
टाँकी लागी सव्द की निकसी कंचन खानि ॥६६८॥
अगम पंथ मन थिर करै वुद्धि करै परवेस ।
तन मन सवही छाँड़ि के तव पहुँचै वा देस ॥६६९॥
मन मोटा मन पातरा मन पानी मन लाय ।
मन के जैसी ऊपजै तैसो ही ह्वै जाय ॥६७०॥
मन के वहुतक रंग हैं छिन छिन वदलैं सोय ।
एकै रँग में जो रहै ऐसा विरला कोय ॥६७१॥
मनुवाँ तो पंछी भया उड़िके चला अकास ।
ऊपर ही तें गिर पड़ा या माया के पास ॥६७२॥
अपने अपने चोर को सव कोइ डारै मार ।
मेरा चोर मुझे मिलै सरवस डारूँ वार ॥६७३॥
मन कुंजर महमंत था फिरता गहिर गँभीर ।
दोहरी तेहरी चौहरी परि गइ प्रेम जँजीर ॥६७४॥

हिरदे भीतर आरसी मुख देखा नहिं जाय ।
मुख तो सबहीं देखसी दिल की दुविधा जाय ॥६७५॥
पानी हूँ तें; पातला धूआँ हूँ तें झीन ।
पवन हुँ तें अति ऊतला दोस्त कबीरा कीन ॥६७६॥
मन मनसा को मार करि नन्हा करि के पीस ।
तब सुख पावै सुंदरी पदुम झलक्के सीस ॥६७७॥
मन मनसा को मारि दै घट ही माहीं घेर ।
जब ही चालै पीठ दै आँकुस दै दै फेर ॥६७८॥
कबिरा मनहि गयंद है आँकुस दै दै राखु ॥
विष की वेली परिहरी अमृत का फल चाखु ॥६७९॥
कुंभे बाँधा जल रहै जल बिनु कुंभ न होय ।
ज्ञानै बाँधा मन रहै मन बिनु ज्ञान न होय ॥६८०॥
मन माया तो एक है माया मनहि समाय ।
तीन लोक संसय परा काहि कहूँ समुझाय ॥६८१॥
मन सायर मनसा लहरि बूड़े बहे अनेक ।
यह कबीर ते बाँचिहैं जाके हृदय विवेक ॥६८२॥
नैनन आगे मन बसै रल पिल करै जो दौर ।
तीन लोक मन भूप है मन पूजा सब ठौर ॥६८३॥
तन बोहित मन काग है लख जोजन उड़ि जाय ।
कबहीं दरिया अगम बहि कबहीं गगन समाय ॥६८४॥
मन के हारे हार है मन के जीते जीत ।
कह कबीर पिउ पाइए मनहीं की परतीत ॥६८५॥
तीनि लोक टीडी भई उड़िया मन के साथ ।
हरिजन हरिजाने बिना परे काल के हाथ ॥६८६॥
बाजीगर का बंदरा ऐसा जिउ मन साथ ।
नाना नाच नचाय कै राचै अपने हाथ ॥६८७॥

मन करि सुर मुनि जँहड़िया मन के लक्ष दुवार।
ये मन चंचल चोरई ई मन शुद्ध ठगार ॥६८८॥
मन मतंग गैयर हनै मनसा भई शचान।
जंत्र मंत्र मानै नहीं लागी उड़ि उड़ि खान ॥६८९॥
मन गयंद मानै नहीं चलै सुरति के साथ।
दीन महावत क्या करै अंकुश नाहीं हाथ ॥६९०॥
देस विदेसन हौं फिरा मनहीं भरा सुकाल।
जाको ढूँढ़न हौं फिरौं ताको परा दुकाल ॥६९१॥
मन स्वारथ आपहि रसिक विषय लहरि फहराय।
मन के चलतै तन चलत ताते सरवसु जाय ॥६९२॥
यह मन तो शीतल भया जब उपजा ब्रह्मज्ञान।
जेहि वैसंदर जग जरै सो पुनि उदक समान ॥६९३॥

विविध

सुपने में साँई मिले सोवत लिया जगाय।
आँखि न खोलूँ डरपता मत सुपना ह्वै जाय ॥६९४॥
सोऊँ तो सुपने मिलूँ जागूँ तो मन माहिं।
लोचन राते सुभ घड़ी बिसरत कबहूँ नाहिं ॥६९५॥
कबिरा साथी सोइ किया दुख सुख जाहि न कोय।
हिलि मिलि कै सँग खेलई कधी बिछोह न होय ॥६९६॥
तरवर तासु बिलंबिए बारह मास फलंत।
सीतल छाया सघन फल पंछी केल करंत ॥६९७॥
तरवर सरवर संतजन चौथे बरसै मेंह।
परमारथ के कारने चारौं धारैं देह ॥६९८॥
कबिरा सोई पीर है जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई सो काफिर बेपीर ॥६९९॥

नवन नवन बहु अंतरा नवन नवन बहु बान ।
ये तीनों बहुतै नवैं चीता चोर कमान ॥७००॥
कबिरा सीप समुद्र की खारा जल नहिं लेय ।
पानी पावै स्वाति का सोभा सागर देय ॥७०१॥
ऊँची जाति पपीहरा पियै न नीचा नीर ।
कै सुरपति को जाँचई कै दुख सहै सरीर ॥७०२॥
चातक सुतहिं पढ़ावही आन नीर मत लेय ।
मम कुल यही सुभाव है स्वाति बूँद चित देय ॥७०३॥
लंबा मारग दूर घर विकट पंथ बहु भार ।
कह कबीर कस पाइए दुर्लभ गुरु दीदार ॥७०४॥
हेरत हेरत हे सखी हेरत गया हेराय ।
बुंद समानी समुँद में सो कित हेरी जाय ॥७०५॥
आदि होत सब आप में सकल होत ता माहिं ।
ज्यों तरवर के बीज में डार पात फल छाँहिं ॥७०६॥
कबिरा मैं तो तब डरौं जो मुझ ही में होय ।
मीच बुढ़ापा आपदा सब काहू में सोय ॥७०७॥
सात दीप नौ खंड में तीन लोक ब्रह्मंड ।
कह कबीर सबको लगै देंह धरे का दंड ॥७०८॥
देह धरे का दंड है सब काहू को होय ।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि मूरख भुगतै रोय ॥७०९॥
देखन ही की बात है कहने की कछु नाहिं ।
आदि अंत को मिलि रहा हरिजन हरि ही माहिं ॥७१०॥
सबै हमारे एक हैं जो सुमिरै सत नाम ।
वस्तु लही पहिचानि कै वासना सों क्या काम ॥७११॥
जूआ चोरी मुखबिरी ब्याज घूस पर नार ।
जो चाहै दीदार को एती वस्तु निवार ॥७१२॥

राज-दुवारे साधुजन तीनि वस्तु को जाय ।
कै मीठा कै मान को कै माया की चाय ॥७१३॥
देखन को सब कोइ भला जैसे सीत का कोट ।
देखत ही ढहि जायगा बाँधि सकै नहिं पेट ॥७१४॥
नाचै गावै पद कहै नाहीं गुरु सों हेत ।
कह कबीर क्यों नीपजै बीज बिहूनो खेत ॥७१५॥
ब्रह्महिं तें जग ऊपजा कहत सयाने लोग ।
ताहि ब्रह्म के त्यागि बिनु जगत न त्यागन जोग ॥७१६॥
ब्रह्म जगत का बीज है जो नहिं ताको त्याग ।
जगत ब्रह्म में लीन है कहहु कौन बैराग ॥७१७॥
नेत नेत जेहि बेद कहि जहाँ न मन ठहराय ।
मन बानी की गम नहीं ब्रह्म कहा किन ताय ॥७१८॥
एक कर्म है बोवना उपजै बीज बहूत ।
एक कर्म है भूँजना उदय न अंकुर सूत ॥७१९॥
चाँद सुरज निज किरन को त्यागि कवन बिधि कीन ।
जाकी किरनैं ताहि में उपजि होत पुनि लीन ॥७२०॥
गुरू झरोखे बैठि के सब का मुजरा लेइ ।
जैसी जाकी चाकरी तैसा ताको देइ ॥७२१॥
हंसा बक एक रंग लखि चरैं एक ही ताल ।
छीर नीर ते जानिए बक उघरैं तेहि काल ॥७२२॥
बिन देखे वह देस की बात कहै सो कूर ।
आपै खारी खात है बेचत फिरत कपूर ॥७२३॥
मलयागिरि के बास में वृच्छ रहा सब गोय ।
कहिबे को चंदन भया मलयागिरि ना होय ॥७२४॥
काटे आँब न मौरिया फाटे जुरै न कान ।
गोरख पद परसे बिना कहौ कौन की सान ॥७२५॥

आगे सीढ़ी साँकरी पाछे चकनाचूर ।
परदा तर की सुंदरी रही धका दै दूर ॥७२६॥
बेरा बाँधि न सर्प को भवसागर के माहिं ।
छोड़ै तो बूड़त अहै गहै तो डसिहैं बाहि ॥७२७॥
कर खोरा खोवा भरा मग जोहत दिन जाय ।
कबिरा उतरा चित्त सों छाँछ दियो नहिं जाय ॥७२८॥
विष के बिरवा घर किया रहा सर्प लपटाय ।
ताते जियरै डर भया जागत रैनि बिहाय ॥७२९॥
सेमर केरा सूवना सिहुले बैठा जाय ।
चोंच चहोरै सिर धुनै यह वाही को भाय ॥७३०॥
सेमर सुवना बेगि तजु घनी बिगुर्चन पाँख ।
ऐसा सेमर जो सेवै हृदया नाहीं आँख ॥७३१॥
केते दिन ऐसे गए अनरूचे को नेह ।
बोए ऊसर न ऊपजै जो घन बरसैं मेह ॥७३२॥
प्रकट कहौं तौ मारिया परदा लखै न कोय ।
सहना छुपा पयार तर को कहि वैरी होय ॥७३३॥
जौ लौं तारा जगमगै तौ लौं उगै न सूर ।
तौ लौं जिय जग कर्मबस जौ लौं ज्ञान न पूर ॥७३४॥
करु बहियाँ बल आपनी छाँड़ बिरानी आस ।
जाके आँगन नदी है सो कस मरै पिआस ॥७३५॥
हे गुणवंती बेलरी तव गुण बरणि न जाय ।
जर काटे ते हरिअरी सींचे ते कुँभिलाय ॥७३६॥
बेलि कुढंगी फल बुरो फुलवा कुबुधि बसाय ।
मूल बिनासी तूमरी सरोपात करुआय ॥७३७॥
हम जान्यो कुल हंस हो ताते कीन्हों संग ।
जो जनत्यों बक बरन हो छुवन न देत्यों अंग ॥७३८॥

गुणिया तो गुण को गहै निर्गुण गुणहिं घिनाय ।
वैलहिं दीजै जायफर क्या बूझै क्या खाय ॥७३९॥
खेत भला बीजौ भला बोइए मूठी फेर ।
काहे बिरवा रूखरा या गुण खेते केर ॥७४०॥
जंत्र बजावत हीं सुना टूटि गए सब तार ।
जंत्र बिचारा क्या करै गयो बजावनहार ॥७४१॥
औरन के समुझावते मुख में परिगो रेत ।
रासि बिरानी राख ते खाए घर को खेत ॥७४२॥
तकत तकावत तकि रहे सके न बेझा मारि ।
सबै तीर खाली परे चले कमानी डारि ॥७४३॥
अपनी कह मेरी सुनै सुनि मिलि एकै होय ।
मेरे देखत जग गया ऐसा मिला न कोय ॥७४४॥
देस देस हम बागिया ग्राम ग्राम की खोरि ।
ऐसा जियरा ना मिला जो ले फटकि पछोरि ॥७४५॥
वस्तु अहै गाहक नहीं वस्तु सो गरुवा मोल ।
बिना दाम को मानवा फिरै सो डामाडोल ॥७४६॥
सिंह अकेला बन रमै पलक पलक के दौर ।
जैसा बन है आपना तैसा बन है और ॥७४७॥
बैठा है घर भीतरै बैठा है साचेत ।
जब जैसी गति चाहता तब तैसी मति देत ॥७४८॥
बना बनाया मानवा बिना बुद्धि बेतूल ।
कहा लाल लै कीजिए बिना बास का फूल ॥७४९॥
आगे आगे दब बरै पीछे हरियर होइ ।
बलिहारी वा बृच्छ की जर काटे फल होइ ॥७५०॥
सरहर पेड़ अगाध फल अरु बैठा है पूर ।
बहुत लाल पचि पचि मरे फल मीठा अरु दूर ॥७५१॥

सब ही तरु तर जायके सब फल लीन्हों चीखि ।
फिर फिर माँगत कविर है दर्शन ही की भीखि ।।७५२।।
कंचन भो पारस परसि बहुरि न लोहा होइ ।
चंदन बास पलास विधि ढाक कहै ना कोइ ।।७५३।।
भक्ति भक्ति सब कोइ कहै भक्ति न आई काज ।
जहँ को किया भरोसवा तहँ ते आई गाज ।।७५४।।
सुख को सागर मैं रचा दुख दुख मेलो पाव ।
तिथि ना पकरै आपना चलै रंक औ राव ।।७५५।।
लिखा-पढ़ी में परे सब यह गुण तजै न कोइ ।
सबै परे भ्रम-जाल में डारा यह जिय खोइ ।।७५६।।
जैसी लागी और की तैसी निबहै थोरि ।
कौड़ी कौड़ी जोरि कै पूज्यो लच्छ करोरि ।।७५७।।
नव मन दूध बटोरि कै टिपका किया विनाश ।
दूध फाटि काँजी हुआ भया घीव का नाश ।।७५८।।
मानुष तेरा गुण बड़ा माँस न आवै काज ।
हाड़ न होते आभरण त्वचा न बाजन बाज ।।७५९।।
प्रथमै एक जो हो किया भया सो बारह बाट ।
कसत कसौटी नाटिका पीतर भया निराट ।।७६०।।
फुलवा धार न लै सकै कहै सखिन सों रोइ ।
ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों भारी होइ ।।७६१।।
पद गावै लवलीन ह्वै कटै न संसय फाँस ।
सबै पछोरै थोथरा एक बिना बिश्वास ।।७६२।।
घर कबीर का शिखर पर जहाँ सिलिहिली गैल ।
पायँ न टिकै पिपीलका खलक न लादे बैल ।।७६३।।
अपने अपने शीश की सबन लीन है मानि ।
हरि की बात दुरंतरी परी न काहू जानि ।।७६४।।

घाट भुलाना बाट बिन भेष भुलाना कानि।
जाकी माँड़ी जगद माँ सो न परा पहिचानि ॥७६५॥
ऊपर की दोऊ गईं हिय की गई हेराय।
कह कबीर चारिऊ गईं तासों कहा बसाय ॥७६६॥
यती सती सब खोजहीं मनै न मानै हारि।
बड़ बड़ बीर बचै नहीं कहहि कबीर पुकारि ॥७६७॥
एकै साधे सब सधै सब साधे सब जाय।
जो तू सेवै मूल को फूलै फलै अघाय ॥ ७६८॥
साँईं केरे बहुत गुन लिखे जो हिरदे माहिं।
पिऊँ न पानी डरपता मत वै धोए जाहिं ॥७६९॥
यार बुलावै भाव से मो पै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला लागि न सक्कूँ पाँय ॥७७०॥
पपिहा पर को ना तजै तजै तो तन बेकाज।
तन छूटे तो कछु नहीं पर छूटे है लाज ॥७७१॥
प्रेम प्रीति से जो मिले तासौं मिलिए धाय।
अंतर राखे जो मिलैं तासों मिलैं बलाय ॥७७२॥
खुलि खेली संसार में बाँधि न सक्के कोय।
घाट जगाती क्या करै जो सिर बोझ न होय ॥७७३॥
सब काहू का लीजिये साँचा शब्द निहार।
पच्छपात ना कीजिए कहै कबीर विचार ॥७७४॥
तन सँदूक मन रतन है चुपके दे हट ताल।
गाहक बिना न खोलिए पूँजी शब्द रसाल ॥७७५॥
जब दिल मिला दयाल सों तब कछु अंतर नाहिं।
पाला गलि पानी भया यों हरिजन हरि माहिं ॥७७६॥
मो में इतनी शक्ति कहँ गाऊ गला पसार।
बंदे को इतनी घनी पड़ा रहै दरबार ॥७७७॥

रचनहार को चीन्हि ले खाने को क्यों रोय ।
दिल-मंदिर में पैठ करि तानि पिछौरा सोय ॥७७८॥
सब से भली मधूकरी भाँति भाँति का नाज ।
दावा काहू का नहीं विना विलायत राज ॥७७९॥
भौसागर जल विष भरा मन नहिं बाँधै धीर ।
सब्द-सनेही पिउ मिला उतरा पार कबीर ॥७८०॥
नाम रतन धन संत पहँ खान खुली घट माहिं ।
सेंत मेंत हौं देत हौं गाहक कोई नाहि ॥७८१॥

द्वितीय खंड

शब्दावली

कर्ता-निरूपण

सब का साखी मेरा साईं। ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर लौं औ अव्याकृत नाहीं। सुमति पचीस पाँच से कर ले यह सब जग भरमाया। अकार उकार मकार मात्रा इनके परे बताया। जागत सुपन सुषोपत तुरिया इनते न्यारा होई। राजस तामस सात्विक निर्गुन इनतें आगे सोई। सुछम थूल कारन महकारन इन मिल भोग बखाना। तेजस विस्व पराग आतमा इनमें सार न जाना। परा बसंती मधमा बैखरि चौबानी ना मानी। पाँच कोष नीचे कर देखो इनमें सार न जानी। पाँच ज्ञान औ पाँच कर्म की यह दस इंद्री जानो। चित सोइ अंतःकरण बखानों इनमें सार न मानो। कुरम सेस किरकिला धनंजय देवदत्त कहँ देखो। चौदह इंद्री चौदह इंद्रा इनमें अलख न पेखो। तत् पद त्वं पद और असी पद बाच लच्छ पहिचाने। जहद लच्छना अजहद कहते अजहद जहद बखाने। सतगुरु मिल सत् शब्द लखावै सार सब्द बिलगावै। कह कबीर सोई जन पूरा जो न्यारा कर गावै॥ १॥

मेरी नजर में मोती आया है। कोइ कहे हलका कोइ कहे भारी दोनों भूल भुलाया है। ब्रह्मा विष्णु महेसर थाके तिनहूँ खोज न पाया है। सेस सारदा संकर हारे पढ़ रट बहु गुन गाया है। है तिल के तिल के तिल भीतर बिरले साधू पाया है। चहुँ दल कमल तिरकुटी साजे ओंकार दरसाया है। ररंकार

पद सेत सुन्न मद षट्दल कँवल बताया है। पारब्रह्म महा सुन्न मँझारा सोऽइ निःअक्षर हराया है। भँवर गुफा में सोहं राजै मुरली अधिक बजाया है। सत्त लोक सत पुरुख विराजै अलख अगम दोउ भाया है। पुरुख अनामी सब पर स्वामी ब्रह्मउँ पार जो गया है। यह सब बातें देही माँही प्रतिबिंब अंड जो पाया है। प्रतिबिंब पिंड ब्रहमंड है नकली असली पार बताया है। यह कबीर सतलोक सार है पुरुष नियारा पाया है॥ २॥

संतो बीजक मन परमाना। कैयक खोजी खोजि थके कोइ बिरला जन पहिचाना। चारिउ जुग औ निगम चार औ गावैं पंथ अपारा। बिष्णु विरंचि रुद्र ऋषि गावैं सेस न पावै पारा। कोइ निरगुन सरगुन ठहरावैं कोई जोति बतावैं। नाम धनी को सब ठहरावैं रूप को नहीं लखावैं। कोउ सूछम असथूल बतावै कोउ अच्छर निज साँचा। सतगुरु कहँ बिरले पहिचानैं भूले फिरै असाँचा। लोभ के भक्ति सरै नहि कामा साहब परम सयाना। अगम अगोचर धाम धनी को सबै कहैं हाँ जाना। दिखै न पंथ मिलै नहिं पंथी ढूँढ़त ठौर ठिकाना। कोउ ठहरावै शून्यक कीन्हा जोति एक परमाना। कोउ कह रूप रेख नहिं वाके धरत कौन को ध्याना। रोम रोम में परगट कर्त्ता काहे भरम भुलाना। पच्छ अपच्छ सबै पचि हारे कर्त्ता कोइ न विचारा। कौन रूप है साँचा साहब नहिं कोई विस्तारा। बहु परचै परतीत दृढ़ावै साँचे को विसरावै। कलपत कोटि जनम युगवागै दरशन कतहुँ न पावै। परम दयालु परम पुरुषोत्तम ताहि चीन्ह नर कोई। ततपर हाल निहाल करत है रीझत है निज सोई। वधिक कर्म्म करि भक्ति दृढ़ावै नाना मत को ज्ञानी। बीजक मत कोइ विरला जाने भूलि फिरे अभिमानी। कह कबीर कर्त्ता

में सब है कर्त्ता सकल समाना। भेद बिना सब भरम परे कोउ बूझै संत सुजाना ॥ ३ ॥

तेहि साहब के लागो साथा।
दुइ दुख मेटि कै होहु सनाथा ॥
दशरथ कुल अवतरि नहिं आया।
नहिं लंका के राय सताया ॥
नहिं देवकि के गर्भहिं आया।
नहीं यशोदा गोद खिलाया ॥
पृथ्वी रमन दमन नहिं करिया।
बैठि पताल नहीं बलि छलिया ॥
नहिं बलिराय सों माँड़ी रारी।
नहि हिरनाकुस बधल पछारी ॥
रूप बराह धरणि नहिं धरिया।
छत्री मारि निछत्री न करिया ॥
नहिं गोवर्धन कर पर धरिया।
नहीं ग्वाल सँग बन बन फिरिया ॥
गंडक शालग्राम न शीला।
मत्स्य कच्छ ह्वै नहिं जल हीला ॥
द्वारावती शरीर न छाँड़ा।
लै जगनाथ पिंड नहिं गाड़ा ॥

कहहि कबीर पुकारि कै वा पंथे मत भूल।
जेहि राखे अनुमान करि थूल नहीं असथूल ॥ ४ ॥

संतो आवै जाय सो माया।
है प्रतिपाल काल नहिं वाके ना कहुँ गया न आया ॥
क्या मकसूद मच्छ कछ होना शंखासुर न सँघारा।
अहै दयालु द्रोह नहिं वाके कहहु कौन को मारा ॥

वे कर्त्ता न बराह कहावै धरणि धरैं नहि भारा ।
ई सब काम साहेब कै नाहीं झूठ गहै संसारा ॥
खंभ फारि जो बाहिर होई ताहि पतिज सब कोई ।
हिरनाकुस नख उदर बिदारे सो नहिं कर्त्ता होई ॥
बामन रूप न बलि की जाँचै जो जाँचै सो माया ।
बिना बिवेक सकल जग जँहड़े माया जग भरमाया ॥
परशुराम छत्री नहिं मारा ई छल माया कीन्हा ।
सतगुरु भक्ति भेद नहिं जानै जीव अमिथ्या दीन्हा ॥
सिरजनहार न ब्याही सीता जल पखान नहि बंधा ।
वे रघुनाथ एक कै सुमिरै जो सुमिरै सो अंधा ॥
गोप ग्वाल गोकुल नहिं आए करते कंस न मारा ।
मेहरबान है सब का साहब नहिं जीता नहिं हारा ॥
वे कर्त्ता नहिं बौध कहावैं नहीं असुर को मारा ।
ज्ञान हीन कर्त्ता सब भरमे माया जग संहारा ॥
वे कर्त्ता नहिं भए कलंकी नहीं कलिगहिं मारा ।
ई छल-बल सब माये कीन्हा जतिन सतिन सब टारा ॥
दस अवतार ईश्वरी माया कर्त्ता कै जिन पूजा ।
कहै कबीर सुनो हो संतो उपजै खपै सो दूजा ॥५॥

कर्त्ता-महत्ता

बरनहुँ कौन रूप औ रेखा । दूसर कौन आय जो देखा ॥
औ ओंकार आदि नहिं वेदा । ताकर कहौं कौन कुल भेदा ॥
नहिं तारागन नहिं रवि चंदा । नहिं कछु होत पिता के बिंदा ॥
नहिं जल नहिं थल नहिं थिर पवना । कोधर नाम हुकुमको बरना
नहिं कछु होत दिवस अरु राती । ताकर कहहुँ कौन कुल जाती

शून्य सहज मन सुरति ते प्रगट भई एक ज्योति।
बलिहारी ता पुरुख छवि निरालंब जो होति ॥६॥
एकै काल सकल संसारा। एक नाम है जगत पियारा॥
तिया पुरुख कछु कथो न जाई। सर्व रूप जग रहा समाई॥
रूप अरूप जाय नहिं बोली। हलुका गरुआ जाय न तोली॥
भूख न तृखा धूप नहिं छाँहीं। दुख सुख रहित रहै ते माहीं

अपरम परम रूप मगु नहिं तेहि संख्या आहि।
कहहि कबीर पुकारि कै अद्भुत कहिए ताहि ॥७॥

राम गुण न्यारो न्यारो न्यारो।
अबुझा लोग कहाँ लौं बूझैं बूझनहार विचारो॥
केते रामचंद्र तपसी से जिन जग यह बिरमाया।
केते कान्ह भए मुरलीधर तिन भी अंत न पाया॥
मच्छ कच्छ बाराह स्वरूपी बामन नाम धराया।
केते बौध भए निकलंकी तिन भी अंत न पाया॥
केतिक सिध साधक संन्यासी जिन बन बास बसाया।
केते मुनि जन गोरख कहिए तिन भी अंत न पाया।
जाकी गति ब्रह्मै नहिं पाए शिव सनकादिक हारे।
ताके गुन नर कैसे पैहो कहै कबीर पुकारे ॥८॥

अब हम जाना हो हरि बाजी को खेल।
डंक बजाय देखाय तमाशा बहुरि सो लेत सकेल॥
हरि बाजी सुर नर मुनि जहँड़े माया चेटक लाया।
घर में डारि सबन भरमाया हृदये ज्ञान न आया॥
बाजी झूँठ बाजीगर साँचा साधुन की मति ऐसी।
कह कबीर जिन जैसी समझी ताकी गति भइ तैसी ॥९॥
छेम कुसल औ सही सलामत कहहु कौन को दीन्हा हो।
आवत जात दुनों विधि लूटे सरब संग हरि लीन्हा हो॥

सुर नर मुनि सब पीर औलिया मीरा पैदा कीन्हा हो।
कहँ लौं गिनैं अनंत कोटि लौं सकल पयाना दीन्हा हो॥
पानी पवन अकास जाहिगो चंद्र जाहिगो सूरा हो।
वह भी जाहिगो यह भी जाहिगो परत काहु को न पूरा हो॥
कुसलै कहत कहत जग बिनसै कुसल काल की फाँसी हो।
कह कबीर सब दुनिया बिनसल रहल राम अविनासी हो॥

ऐसा लो तात ऐसा लो, मैं केहि विधि कहौं गँभीर लो।
बाहर कहा तो सतगुरु लाजै, भीतर कहौं तो झूठा लो॥
बाहर भीतर सकल निरंतर, गुरु परतापै दीठा लो।
दृष्टि न मुष्टि न अगम अगोचर, पुस्तक लिखा न जाई लो॥
जिन पहिचाना तिन भल जाना, कहे न तो पतियाई लो।
मीन चलै जल मारग जोवै, परम तत्त धौं कैसा लो॥
पुहुप बास हूँ ते कछु झीना, परम तत्त धौं ऐसा लो।
आकासै उड़ि गयो विहंगम, पाछे खोज न दरसी लो॥
कह कबीर सतगुरु दाया तें बिरला सत पद परसी लो॥११॥

बावा अगम अगोचर कैसा, तातें कहि समुझाओ ऐसा।
जो दीसै सो तो है नाहीं है सो कहा न जाई॥
सैना बैना कहि समझाओं, गूँगे का गुरु-भाई।
दृष्टि न दीसै मुष्टि न आवै, बिनसे नाहिं नियारा।
ऐसा ज्ञान कथा गुरु मेरे, पंडित करौ विचारा॥
बिन देखे परतीत न आवै, कहे न कोउ पतियाना।
समुझा होय सो सब्दै चीन्है, अचरज होय अयाना॥
कोई ध्यावै निराकार को, कोइ ध्यावै साकारा।
वह तो इन दोऊ ते न्यारा, जानै जाननहारा॥
काजी कथै कतेब कुराना, पंडित वेद पुराना।
वह अच्छर तो लखा न जाई, मात्रा लगै न काना॥

नादी वादी पढ़ना गुनना बहुचतुराई मीना।
कह कबीर सो पड़ै न परलय नाम भक्ति जिन चीना ॥१२॥

अवधू कुदरत की गति न्यारी।
रंक निवाज करै वह राजा भूपति करै भिखारी ॥
ये ते लवँगहि फल नहिं लागै चंदन फूल न फूले।
मच्छ शिकारी रमै जँगल में सिंह समुद्रहि झूले।
रेंडा रूख भया मलयागिर चहुँ दिसि फूटी वासा।
तीन लोक ब्रह्मांड खंड में देखे अंध तमासा ॥
पंगुल मेरु सुमेरु उलंघै त्रिभुवन मुक्ता डोलै।
गूँगा ज्ञान विज्ञान प्रकासै अनहद वाणी बोलै ॥
बाँधि अकाश पताल पठावै सेस स्वरग पर राजै।
कहै कबीर राम है राजा जो कछु करै सो छाजै ॥१३॥

कर्त्तायुग

अवधू छोड़हु मन विस्तारा।
सो पद गहो जाहि ते सद्गति पार ब्रह्म ते न्यारा ॥
नहीं महादेव नहीं महम्मद हरि हजरत तब नाहीं।
आदम ब्रह्म नाहि तब होते नहीं धूप नहि छाँहीं ॥
असी सहस्र पैगंबर नाहीं सहस अठासी मूनी।
चंद सूर्य्य तारा गन नाहीं मच्छ कच्छ नहिं दूनी ॥
वेद किताब सुमृत नहिं संयम नाहिं जमन परसाही।
बाँग निवाज नहीं तब कमला रामैा नहीं खोदाही ॥
आदि अंत मन मध्य न होते आतश पवन न पानी।
लख चैारासी जीव जंतु नहिं साखी शब्द न बानी ॥
कहहिं कबीर सुनो हो अवधू आगे करहु विचारा।
पूरन ब्रह्म कहाँ ते प्रगटे किरतिम किन उपचारा ॥१४॥

जहिया होत पवन नहिं पानी । तहिया सृष्टि कौन उतपानी ॥
तहिया होत कली नहिं फूला । तहिया होत गर्भ नहिं मूला ॥
तहिया होत न विद्या वेदा । तहिया होत शब्द नहिं खेदा ॥
तहिया होत पिंड नहिं वासू । न धर धरणि न गगन अकासू ॥
तहिया होत गुरू नहिं चेला । गम्य अगम्य न पंथ दुहेला ॥
अविगति की गति क्या कहौं जाके गाउँ न ठाउँ ।
गुणों विहीना पेखना का कहि लीजे नाउँ ॥१५॥

सत्य लोक

बलिहारी अपने साहब की जिन यह जुगुत बनाई ।
उनकी शोभा केहि विधि कहिए मोसों कही न जाई ॥
बिना ज्योति की जहँ उँजियारी सो दरसै वह दीपा ।
निरतै हँस करै कौतूहल वो ही पुरुख समीपा ॥
झलकै पदुम बानि नाना विध माथे छत्र विराजै ।
कोटिन भानु चंद तारागण एक फुचरियन छाजै ॥
कर गहि विहँसि जवै मुख बोलै तव हंसा सुख पावै ।
वंश अंस जिन बूझ विचारी सो जीवन मुकतावै ॥
चौदह लोक वेद का मंडल तहँ लग काल दोहाई ।
लोक वेद जिन फंदा काटी ते वह लोक सिधाई ॥
सात शिकारी चौदह पारथ भिन्न भिन्न निरतावै ।
चारि अंश जिन समझ विचारी सो जीवन मुकतावै ॥
चौदह लोक बसै यम चौदह तहँ लग काल पसारा ।
ताके आगे ज्योति निरंजन वैठे सुन्न मँझारा ॥
सोरह पट अच्छर भगवाना जिन यह सृष्टि उपाई ।
अच्छर कला सृष्टि से उपजी उनहीं माँह समाई ॥

सत्रह संख्य पर अधर दीप जहँ शब्दातीत विराजै ।
निरतै सखी बहू विध शोभा अनहद बाजा बाजै ॥
ताके ऊपर परम धाम है मरम न कोई पाया ।
जो हम कही नहीं कोउ मानै ना कोइ दूसर आया ॥
वेदन साखी सब जिउ अरुझे परम धाम ठहराया ।
फिरि फिरि भटकै आप चतुर ह्वै वह घर काहु न पाया ॥
जो कोइ होइ सत्य का किनका सो हम का पतिआई ।
और न मिल कोटि कर थाकै बहुरि काल घर जाई ॥
सोरह संख्य के आगे समरथ जिन जग मोहिं पठाया ।
कहै कबीर आदि की बानी वेद भेद नहिं पाया ॥१६॥

चला जब लोक को सोक सब त्यागिया
हंस को रूप सतगुर बनाई ।
भृंग ज्यों कीट को पलटि भृंगै किया
आप सम रंग दै लै उड़ाई ॥
छोड़ि नासूत मलकूत को पहुँचिया
विश्नु की ठाकुरी दीख जाई ।
इंद्र कुबेर जहँ रंभ को नृत्य है
देव तैंतीस कोटिक रहाई ॥
छोड़ि वैकुंठ को हंस आगे चला
शून्य में ज्योति जगमग जगाई ।
ज्योति परकाश में निरखि निस्तत्व को
आप निर्भय हुआ भय मिटाई ॥
अलख निरगुन करै वेद जेहि अस्तुती
तीनहूँ देव को है पिताई ।
तिन परे श्वेत मूरति धरे भगवान
भाग का आन तिनको रहाई ॥

चार मुक़ाम पर खंड सोरह कहैं
अंड की छोर ह्याँ ते रहाई ।
अंड के परे अस्थान आचिंत को
निरखिया हंस जब उहाँ जाई ॥
सहस औ द्वादसै रुद्र हैं संग में
करत कल्लोल अनहद बजाई ।
तासु के बदन की कौन महिमा कहौं
भासती देह अति नूर छाई ॥
महल कंचन बने मनिक तामें जड़े
बैठ तहँ कलस आखंड छाजै ।
अचिंत के परे अस्थान सोहंग का
हंस छत्तीस तहँवा विराजै ॥
नूर का महल औ नूर की भूमि है
तहाँ आनंद सो द्वंद भाजै ।
करत कल्लोल बहु भाँति से संग
यह हंस सोहंग के जो समाजै ॥
हंस जब जात षट चक्र को बेध के
सात मुक़ाम में नजर फेरा ।
परे सोहंग के सुरति इच्छा कही
साहस बामन जहाँ हंस हेरा ॥
रूप की राशि ते रूप उनको बना
हिंदु जी नहीं उपमा निवेरा ।
सुरति से भेटिकै सब्द को टेकि
चढ़ि देखि मुक़ाम अंकुर केरा ॥
शून्य के बीस में विमल बैठक जहाँ
सहज अस्थान है गैब केरा ।

नवो मुक़ाम यह हंस जब पहुँचिया
पलक बेलंब ह्वाँ कियो डेरा ॥
तहाँ से डोरी मकतार ज्यों लागिया
ताहि चढ़ि हंस गोदै दरेरा ।
भये आनंद से फंद सब छोड़िया
पहुँचिया जहाँ सतलोक मेरा ॥
हंसिनी हंस सब गाय बजाय कै
साजि कै कलस ओहि लेन आए ।
युगन युग बीछुरे मिले तुम आइ कै
प्रेम करि अंग सों अंग लाए ॥
पुरुख ने दरस जब दीन्हि या हंस को
तपनि बहु जन्म की तब नसाए ।
पलटि कै रूप जब एक सो कीन्हिया
मनहु तब भानु खोड़स उगाए ॥
पुहुप कै दीप पीयूख भोजन करै
सब्द की देह जब हंस पाई ।
पुहुप के सेहरा हंस औ हंसिनी
सच्चिदानंद सिर छत्र छाई ॥
दिपैं बहु दामिनी दमक बहु भाँति की
जहाँ घन सब्द को घुमड़ लाई ।
लगे जहँ बरसने गरजि घन घेरि कै
उठत तहँ शब्द धुनि सति सुहाई ॥
सुनै सोइ हंस तहँ यूथ के यूथ ह्वै
एक ही नूर एक रंग रागै ।
करत बीहार मन भावनी मुक्ति भै
कर्म औ भर्म सब दूर भागै ॥
रंक औ भूप कोइ परखि आवै नहीं

करत कल्लोल बहु भाँति भागे ।
काम औ क्रोध मद लोभ अभिमान सब
छाँड़ि पाखंड सत सब्द लागे ॥
पुरुख के बदन की कौन महिमा कहों
जगत में उभय कछु नाहिं पाई ।
चांद औ सूरगण जोति लागैं नहीं
एक ही नक्ख परकास भाई ॥
पान परवान जिन बंस का पाइया
पहुँचिया पुरुख. के लोक जाई ।
कहै कब्बीर यहि भाँति सें पाइहो
सत्य की राह सो प्रगट गाई ॥ १७ ॥
छोड़ि नासूत मलकूत जबरूत को
और लाहूत हाहूत बाजी ।
और साहूत राहूत ह्याँ डारि दै
कूदि आहूत जाहूत जाजी ॥
जाय जाहूत में खुद खाविंद जहँ
वहीं मकान साकेत साजी ।
कहै कब्बीर ह्वाँ भिस्त दोजख थके
वेद कीताब काहूत काजी ॥ १८ ॥
जहँ सतगुरु खेलैं ऋतु बसंत ।
तहँ परम पुरुप सब साधु संत ॥
वह तीन लोक ते भिन्न राज ।
तहँ अनहद धुनि चहुँ पास बाज ॥
दीपकैं बरैं जहँ निराधार ।
विरला जन कोई पाब पार ॥
जहँ कोटि कृश्न जोरे दु हाथ ।
जहँ कोटि विश्नु नावैं सुमाथ ॥

जहँ कोटिन ब्रह्मा पढ़ पुरान।
जहँ कोटि महादेव धरैं ध्यान॥
जहँ कोटि सरस्वति करैं राग।
जहँ कोटि इंद्र गावने लाग॥
जहँ गण गंधर्व मुनि गनि न जाहिं।
सो तहँवा परगट आपु आहिं॥
तहँ चोवा चांदन अरु अवीर।
तहँ पुहुप वास भरि अति गँभीर॥
जहँ सुरति सुरंग सुगंध लीन।
सब वहीं लोक में वास कीन॥
मैं अजर दीप पहुँच्यों सुजाइ।
तहँ अजर पुरुष के दरस पाइ॥
सो कह कवीर हृदया लगाइ।
यह नरक उधारन नाम जाइ॥ १९॥
सदा वसंत होत तेहि ठाऊँ।
संशय रहित अमरपुर गाऊँ॥
जहँवा रोग सोग नहिं कोई।
सदा अनंद करै सब कोई॥
सूरज चांद दिवस नहिं राती।
वरन भेद नहिं जाति अजाती॥
तहँवा जरा मरन नहिं होई।
कर विनोद क्रीड़ा सब कोई॥
पुहुप विमान सदा उँजियारा।
अमृत भोजन करै अहारा॥
काया सुंदर को परवाना।
उदित भए जिमि खोड़स भाना॥

पता एक हंसा उँजियारा।
शोभित चिकुर उदय जनु तारा॥
विमल वास जहवाँ पौढ़ाहीं।
जोजन चार घ्रान जो जाहीं॥
स्वेत मनोहर छत्र सिर छाजा।
बूझि न परै रंक अरु राजा॥
नहिं तहँ नरक स्वर्ग की खानी।
अमृत वचन बोलै भल बानी॥
अस सुख हमरे घरन महँ कहैं कबीर बुझाय।
सत्य सब्द को जानि कै अस्थिर बैठे आय॥ २०॥

तू सूरत नैन निहार अंड के पारा है।
तू हिरदे सोच विचार यह देस हमारा है॥

पहले ध्यान गुरन का धारो, सुरत निरत मन पवन चितारो।
सुहेलना धुन नाम उचारो, लहु सतगुरु दीदारा है॥
सतगुरु दरस होय जब भाई, वह दें तुमको नाम चिताई।
सुरत सब्द दोउ भेद बताई, देख संख के पारा है॥
सतगुरु कृपा दृष्टि पहिचाना, अंड सिखर बेहद मैदाना।
सहज दास तहँ रोपा थाना, अग्र दीप सरदारा है॥
सात सुन्न बेहद के माहीं, सात संख तिनकी ऊँचाई।
तीन सुन्न लौं काल कहाई, आगे सत्त पसारा है॥
परथम अभय सुन्न है भाई, कन्या कढ़ यहँ बाहर आई।
जोग सँतायन पूछो बाई, दारा वह भरतारा है॥
दूजे सकल सुन्न कर गाई, माया सहित निरंजन राई।
अमर कोट के नकल बनाई, अँड मध रच्यो पसारा है॥
तीजे है मह सुन्न सु खासी, महा काल यहँ कन्या ग्रासी।
जोग सँतायन आ अविनासी, गल नख छेद निकारा है॥

चौथे सुन्न अजोख कहाई, सुद्ध ब्रह्म के ध्यान समाई।
आद्या यहाँ बीजा ले आई, देखो द्रष्टि पसारा है॥

पंचम सुन्न अकेल कहाई, तहँ अदली बँदिवान रहाई।
जिनका सतगुरु न्याव चुकाई, गादा अदली सारा है॥

षष्ठे सार सुन्न कहलाई, सार भँडार यांहि के माँहीं।
नीचे रचना जाहि रचाई, जाका सकल पसारा है॥

सतवें सत्त सुन्न कहलाई, सत्त भँडार याहि के माँहीं।
निःतत रचना ताहि रचाई, जो सबहिन ते न्यारा है॥

सत सुन ऊपर सत की नगरी, बाट बिहंगम बाँकी डगरी।
सो पहुँचे चाले बिन पगरी, ऐसा खेल अपारा है॥

पहली चकरि समाध कहाई, निज हंसन सतगुरु मति पाई।
वेद भरम सब दिए उड़ाई, तज तिरगुन भए न्यारा है॥

दूजी चकरि अगाध कहाई, जिन सतगुरु सँग द्रोह कराई।
पीछे आन गहे सरनाई, सो यहँ आन पधारा है॥

तीजी चकरी मुनि कर नामा, निज मुनियन सतगुरु मम जाना।
सो मुनियम यहँ आय रहाना, करम भरम तज डारा है॥

चौथी चकरी धुन है भाई, जिन हंसन धुन ध्यान लगाई।
धुन सँग पहुँचे हमरे पाहीं, यह धुन सब्द मँझारा है॥

पंचम चकरी रास जो भाखी, अलमीना है तहँ मध झाँकी।
लीला कोट अनंत वहाँ की, रास बिलास अपारा है॥

पष्ठम चकरि बिलास कहाई, निज सतगुरु सँग प्रीति निवाही।
छुटते देह जगह यह पाई, फिर नहिं भव अवतारा है॥

सतवीं चकरि विनोद कहानो, कोटिन वंस गुरन तहँ जानो।
कलि में बोध किया ज्यों मानो, अंधकार उँजियारा है॥

अठवीं चकरि अनुरोध बखाना, तहाँ जुलहटी ताना ताना।
जा का नाम कबार बखाना, जो संतन सिर धारा है॥

कोटिन भानु हंसको रूपा, धुन है वहँ की अजब अनूपा।
हंसा करत चँवर सिर भूपा, विन कर चँवर दुलारा है।
हंसा केल सुनो मन लाई, एक हंस के जो चित आई।
दूजा हंस समुझ पुनि जाई, विन मुख वैन उचारा है॥
तेहि आगे निःलोक है भाई, पुरुख अनामी अकह कहाई।
जा पहुँचे जानेंगे वाही, कहन सुनन ते न्यारा है॥
रूप सरूप कछू वहँ नाहीं, ठौर ठाँव कुछ दीसै नाहीं।
अरज तूल कुछ दृष्टि न आई, कैसे कहूँ सुमारा है॥
जा पर किरपा करिहै साईं, गगनी मारग पावै ताहीं।
सत्तर परलय मारग माँहीं, जव पावै दीदारा है॥
कह कवीर मुख कहा न जाई, ना कागद पर अंक चढ़ाई।
मानों गूँगे सम गुड़ खाई, सैनिन वैन उचारा है॥२१॥

चुवत अमीरस भरत ताल जहँ सब्द उठै असमानी हो।
सरिता उमड़ सिंधु को सोखै नहिं कछु जात वखानी हो॥
चाँद सुरज तारागण नहिं वहँ नहिं वहँ रैन विहानी हो।
वाजे वजें सितार वाँसुरी ररंकार मृदु वानी हो॥
कोट झिलमिली जहँ वह झलकै विन जल वरसत पानी हो।
शिव अज विष्णु सुरेस सारदा निज निज मति अनुमानी हो॥
दस अवतार एक तत राजैं असतुति सहज सयानी हो।
कहैं कवीर भेद की वातें विरला कोई पहिचानी हो॥
कर पहिचान फेर नहि आवै जम की जुलमी खानी हो॥२२॥
सखिया वा घर सव से न्यारा जहँ पूरन पुरुख हमारा।
जहँ नहिं सुख दुख साँच झूठ नहि पाप न पुन्न पसारा॥
नहि दिन रैन चंद नहिं सूरज विना जोति उँजियारा।
नहिं तहँ ज्ञान ध्यान नहिं जप तप वेद कितेव न वानी॥
करनी धरनी रहनी गहनी ये सव उहाँ हेरानी।

घर नहिं अधर न बाहर भीतर पिंड ब्रह्मँड कछु नाहीं।
पाँच तत्व गुन तीन नहीं तहँ साखी सब्द न ताहीं॥
मूल न फूल वेल नहिं बीजा विना बृच्छ फल सोहै।
ओहं सोहं अरध उरध नहिं स्वासा लेखन को है॥
नहि निरगुन नहिं सरगुन भाई नहिं सूछम अस्थूल।
नहिं अच्छर नहिं अबगत भाई ये सब जग के भूल॥
जहाँ पुरुख तहँवा कछु नाहीं कह कबीर हम जाना।
हमरी सैन लखै जो कोई पावै पद निरवाना॥२३॥

सुरत सरोवर न्हाइ के मंगल गाइए।
दरपन सब्द निहार तिलक सिर लाइए॥
चल हंसा सतलोक बहुत सुख पाइए।
परसि पुरुख के चरन बहुरि नहिं आइए॥
अमृत भोजन तहाँ अमी अँचवाइए।
मुख में सेत तँबूल सब्द लौ लाइए॥
पुहुप अनूपम वास हंस घर चलि जिए।
अमृत कपड़े ओढ़ि मुकुट सिर दीजिए॥
वह घर बहुत अनंद हंसा सुख लीजिए।
बदन मनोहर गात निरख के जीजिए॥
दुति विन मसि बिन अंक सो पुस्तक बाँचिए।
बिन करताल बजाय चरन बिन नाचिए॥
बिन दीपक उँजियार आगम घर देखिए।
खुल गए सब्द किवाड़ पुरुख सों भेटिए॥
साहब सन्मुख होय भक्ति चित लाइए।
मन मानिक सँग हंस दरस तहँ पाइए॥
कह कबीर यह मंगल भाग न पाइए।
गुरु संगत लौ लाय हंस चल जाइए॥२४॥

कर्त्ता-स्थान

संतो योग अध्यातम सोई ।
एक ब्रह्म सकल घट व्यापै दुतिया और न कोई ॥
प्रथम कमल जहँ ज्ञान चारि दल तहँ गणेश को वासा ।
रिधि सिधि जाकी शक्ति उपासी जप ते होत प्रकासा ॥
षट दल कमल ब्रह्म को वासा सावित्री सँग सेवा ।
षट सहस्र जहँ जाप जपत हैं इंद्र सहित सब देवा ॥
अष्ट कमल जहँ हरि सँग लछमी तीजो सेवक पवना ।
षट सहस्र जहँ जाप जपत हैं मिटिगो आवा गवना ॥
द्वादस कमल में शिव को वासा गिरिजा शक्ती सारँग ।
षट सहस्र जहँ जाप जपत हैं ज्ञान सुरति लै पारँग ॥
खोड़स कमल में जीव को वासा शक्ति अविद्या जानै ।
एक सहस जहँ जाप जपत हैं ऐसा भेद बखान ॥
भँवर गुफा जहँ दुइ दल कमला परम हंस कर वासा ।
एक सहस जाके जाप जपत हैं करम भरम को नासा ॥
सहस कमल में झिलमिल दरसो आपुइ बसत अपारा ।
जोति सरूप सकल जग व्यापी अछय पुरुष है प्यारा ॥
सुरति कमल पर सतगुरु बोले सहज जाप जप सोई ।
छः सै इकइस सहसहिं जपि ले बूझै अजपा कोई ॥
यही ज्ञान को कोई बूझै भेद अगोचर भाई ।
जो बूझै सो मन का पेखै कह कबीर समझाई ॥ २५ ॥

रस गगन गुफा में अजर झरै ।
बिन बाजा झनकार उठे जहँ समुझि परै जब ध्यान धरै ॥
बिना ताल जहँ कवल फुलाने तेहि चढ़ि हंसा केलि करै ।
बिन चंदा उँजियारी दरसै जहँ तहँ हंसा नजर परै ॥

दसवें द्वारे ताड़ी लागी अलख पुरुष जाको ध्यान धरै।
काल कराल निकट नहिं आवै काम क्रोध मद लोभ जरै॥
जुगुन जुगुन की तृषा बुझानी करम भरम अघ व्याधि टरै।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो अमर होय कबहूँ न मरै॥२६॥

मोको कहाँ ढूँढ़ो बंदे मैं तो तेरे पास में।
ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी ना मैं छुरी गँड़ास में।
नहीं खाल में नहीं पोंछ में ना हड्डी ना मास में॥
ना मैं देवल ना मैं मसजिद ना कावे कैलास में॥
ना तो कौनो क्रिया कर्म में नहीं जोग वैराग में।
खोजी होय तुरतै मिलिहौं पल भर की तलास में॥
मैं तो रहौं सहर के बाहर मेरी पुरी मवास में।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सब साँसों की साँस में॥२७॥

कर्त्ता-प्राप्ति-साधन

ज्ञान का गेंद कर सुरति का दंड कर
खेल चौगान मैदान माहीं।
जगत का भरमना छोड़ दे बालके
आय जा भेख भगवंत पाहीं॥
भेख भगवंत की सेस महिमा करै
सेस के सीस पर चरन डारैं।
कामदल जीति कै कँवल दल सोधि कै
ब्रह्म को बेधि कै क्रोध मारैं॥
पद्म आसन करैं पवन परिचै करैं
गगन के महल पर मदन जारैं।
कहत कब्बीर कोइ संतजन जौहरी
करम की रेख पर मेख मारैं॥२८॥

दो सुर चले सुभाव सेती
नाभी से उलटा आवता है।
विच इंगला पिंगला तीन नाड़ी
सुषमन से भोजन पावता है ॥
पूरक करै कुंभक करै
रेचक करै झरि जावता है।
क़ायम कवीरा या भूलना जा
दया भूल परे पछितावता है ॥२९॥

मुरशिद नैनों वीच नवी है।
स्याह सपेद तिलों विच तारा अविगत अलख रवी है ॥
आँखी मद्धे पाँखी चमकै पाँखी मद्धे द्वारा।
तेहि द्वारे दुरवीन लगावे उतरे भौ-जल पारा ॥
सुन्न सहर में वास हमारा तहँ सरवंगी जावै।
साहव कविर सदा के संगी सव्द महल लै आवै ॥३०॥

कर नैनों दीदार महल में प्यारा है।
काम क्रोध मद लोभ विसारो, सील सँतोख छमा सत धारो।
मद्यमांस मिथ्या तजिडारो हो ज्ञानघोड़ेअसवार भरमसे न्यारा है
धोती नेती वस्ती पाओ, आसन पदम जुगुत से लाओ।
कुंभक कर रेचक करवाओ पहले मूल सुधार कार्य्य हो सारा है
मूल कँवल दल चतुर वखानो, जाप कलिंग लाल रँग मानो।
देव गनेश तहँ रोपा थानो, ऋधि सिधि चँवर ढुलारा है ॥
स्वाद चक्र षट दल विस्तारो, व्रह्म सवित्री रूप निहारो।
उलटि नागिनी का सिर मारो, तहाँ शव्द ओंकारा है ॥
नाभी अष्ट कँवल दल साजा, सेत सिंहासन विष्णु विराजा।
जाप हिरिंग तासु सुख गाजा, लछमी शिव आधारा है ॥
द्वादश कँवल हृदय के माँहीं, संग गौरि शिव ध्यान लगाई।
सोहं शव्द तहाँ धुन छाई, गन करैं जैजैकारा है ॥

दो दल कँवल कंठ के माँहीं, तेहि मध बसे अविद्या वाई।
हरि हर ब्रह्मा चावर डुलाई, श्रृंग नाम उच्चारा है॥
तापर कंज कँवल है भाई, वग भौंरा दुइ रूप लखाई।
निज मन करत तहाँ ठकुराई, सो नैनन पिछवारा है॥

कँवल भेद किया निरवारा, यह सब रचना पिंड मँझारा।
सतसंग कर सतगुरु सिर धारा, वह सत नाम उचारा है॥
आँख कान मुख वंद कराओ, अनहद झिंगा शब्द सुनाओ।
दोनों तिल इक तार मिलाओ, तव देखो गुलजारा है॥

चांद सूर एकै घर लाओ, सुषमन सेती ध्यान लगाओ।
तिरवेनी के संध समाओ, भोर उतर चल पारा है॥
घंटा संख सुनो धुन दोई, सहस कँवल दल जगमग होई।
ता मध करता निरखो सोई, वंक नाल धँस पारा है॥

डाकिनि साकिनि वहु किलकारे जम किंकर धम दूत हकारे।
सत्त नाम सुन भागें सारे, सतगुरु नाम उचारा है॥
गगन मँडल विच उर्ध मुख कुइयाँ, गुरुमुख साधू भर भर पीया।
निगुरें प्यास मरे विन कीया, जाके हिय अँधियारा है॥

त्रिकुटि महल में विद्या सारा, घनहर गरजें वजे नगारा।
लाल वरन सूरज उँजियारा, चतुर कँवर मँझार ओंकारा है॥
साध सोई जिन यह गढ़ लीन्हा, नौ दरवाजे परगट चीन्हा।
दसवाँ जाय खोल जिन दीन्हा, जहाँ कुलुफ रहा मारा है॥

आगे सेत सुन्न है भाई, मान सरोवर पैटि अन्हाई।
हंसन मिलि हंसा होइ जाई, मिलै जो अमी आहारा है॥
किंगरी सारँग वजैं सितारा, अच्छर ब्रह्म सुन्न दरवारा।
द्वादस भानु हंस उँजियारा, षटदल कँवल मँझार सब्द ररंकारा है॥
महा सुन्न सिंध विषमी घाटी, विन सतगुरु पावै नहिं वाटी।
व्याघर सिंध सरप वहु काटी, सहज अचिंत पसारा है॥

अठ-दल कँवल पार ब्रह्म भाई, दहिने द्वादस अचिंत रहाई॥
बाएँ दस दल सहज समाई, यों कँवलन निरवारा है॥
पाँच ब्रह्म पाँचों अंड बीनो, पाच ब्रह्म निःअच्छर चीनी॥
चार मुकाम गुप्त तहँ कीना, जा मध वंदीवान पुरुष दरवारा है॥

दो परवत के संघ निहारो, भँवर गुफा में संत पुकारो॥
हंसा करते केल अपारो, तहाँ गुरन दरवारा है॥
सहस अठासी दीप रचाए, हीरे पन्ने महल जड़ाए॥
मुरली वजत अखंड सदाए, तहँ सोहं झनकारा है॥

सोहं हद्द तजीं तव भाई, सत्त लोक की हद पुनि आई॥
उठत सुगंध महा अधिकाई, जाको वार न पारा है॥
खोड़स भानु हंस को रूपा, वीना सत धुन वजै अनूपा॥
हंसा करे चँवर सिर भूपा, सत्त पुरुष दरवारा है॥

कोटिन भानु उदय जो होई, एते ही पुन चंद्र लखोई॥
पुरुष रोम सम एक न होई, ऐसो पुरुष दीदारा है॥
आगे अलख लोक है भाई, अलख पुरुष की तहँ ठकुराई॥
अरवन सूर रोम सम नाँहीं, ऐसा अलख निहारा है॥

तापर अगम महल इक साजा, अगम पुरुष ताही को राजा॥
खरवन सूर रोम इक लाजा, ऐसा अगम अपारा है॥
तापर अकह लोक है भाई, पुरुष अनामी तहाँ रहाई॥
जो पहुँचा जानेगा वाही, कहन सुनन ते न्यारा है॥

काया भेद किया निरवारा, यह सव रचना पिंड मँझारा॥
माया अवगति जाल पसारा, सो कारीगर भारा है॥
आदि माया कीन्ही चतुराई, झूठी वाजी पिंड दिखाई॥
अवगति रचन रची अँड माहीं, ताका प्रतिविंव डारा है॥
सब्द विहंगम चाल हमारी, कह कवीर सतगुरु दइ तारी॥
खुले कपाट शब्द झनकारी, पिंड अंड के पार सो देस हमारा है॥

कर नैनों दीदार पिंड से न्यारा है।
हिरदे सोच विचार सो अंड मँझारा है॥

चोरी जारी निंदा चारो, मिथ्या तज सतगुरु सिर धारो।
सतसँग कर सत नाम उचारो, सनमुख लहु दीदारा है॥
जो जन ऐसी करी कमाई, तिनकी जग फैली रोसनाई।
अष्ट प्रमान जगह सुख पाई, देखा अंड मँझारा है॥

सोहं अंड को अवगत राई, अकह अमरपुर नकल वनाई।
सुद्ध ब्रह्म पद तहँ ठहराई, नाम अनामी धारा है॥
सतवीं सुन्न अंड के माहीं, झिलमिलहट की नकल वनाई।
महा काल तहँ आन रहाई, अगम पुरुष उचारा है॥

छठवीं सुन्न जो अंड मँझारा, अगम महल की नकल सुधारा।
निरगुन काल तहाँ यह धारा, अलख पुरुष कहु न्यारा है॥
पंचम सुन्न अंड के माहीं, सत्त लोक की नकल वनाई।
माया सहित निरंजन राई, सत्त पुरुष दीदारा है॥

चौथी सुन्न अंड के माहीं, पद निर्वान की नकल वनाई।
अविगत कला है सतगुरु आई, सो सोहं यह सारा है॥
तीजी सुन्न की सुनो वड़ाई, एक सुन्न के दोय वनाई।
ऊपर महा सुन्न अधिकाई नीचे सुन्न पसारा है॥

सतवीं सुन्न महाकाल रहाई, तासु कला महा सुन्न समाई।
पारब्रह्म कर थाप्यो ताही, सो निःअच्छर सारा है॥
छठवीं सुन्न जो निरगुन राई, तासु कला आ सुन्न समाई।
अच्छर ब्रह्म कहैं पुनि ताहीं, सोई सब्द ररंकारा है॥

पंचम सुन्न निरंजन राई, तासु कला दूजी सुन छाई।
पुरुष प्रकिरती पदवी पाई, सरगुन सुद्ध पसारा है॥
पुरुष प्रकृति दूजी सुन माहीं, तासु कला परथम सुन आई।
जोत निरंजन नाम धराई, सरगुन थूल पसारा है॥

परिथम सुन्न जो जोत रहाई, ताकी कला अविद्या वाई।
पुत्रन सँग पुत्री उपजाई, सिंध वैराट पसारा है॥
सतवें अकास उतर पुनि आई, ब्रह्मा विष्णु समाधि जगाई।
पुत्रन सँग पुत्री परनाई, स्त्रिग नाम उच्चारा है॥
छठे अकास शिव अवगति भैांरा, गंग गैार रिधि करतीं चैारा।
गिरि कैलास गन करते सोरा, तहँ सोहं सिरमैारा है॥
पंचम अकास में विष्णु विराजे, लछमी सहित सिंहासन साजे।
हिरिंग वैकुंठ भक्त समाजे, भक्तन कारज सारा है॥
चउथ अकास ब्रह्म विस्तारा, सावित्री संग करत विहारा।
ब्रह्म ऋद्धि में ओम पद सारा, यह जग सिरजनहारा है॥
तिसर अकास रहे धर्मराई, नरक सुरग जिन लीन्ह वनाई।
करमन फल जीवन भुगताई, ऐसा अदल पसारा है॥
दुसर अकास में इंद्र रहाई, देव मुनी वासा तहँ पाई।
रंभा करती निरत सदाई, कलिंग सब्द उच्चारा है॥
प्रथम अकास मृत्यु है लोका, जनम मरन का जहँ नित धोका।
सो हंसा पहुँचे सतलोका, सतगुरु नाम उचारा है॥
चैादह तवक किया निरवारा, अव नीचे का सुनो विचारा।
सात तवक में छः रखवारा, भिन भिन सुनो पसारा है॥
सेस धवल वाराह कहाई, मीन कच्छ और कुरम रहाई।
सो छ रहे सात के माहीं, यह पाताल पसारा है॥३२॥

राम नाम महिमा

राम के नाम ते पिंड ब्रह्मंड सव राम का नाम सुनि भरम मानी।
निरगुन निरंकार के पार परब्रह्म है तासु को नाम रंकार जानी॥
विष्णु पूजा करै ध्यान शंकर धरै
मनहिं सुविरंचि, वहु विविध वानी।

कहै कब्बीर कोउ पार पावै नहीं
राम को नाम है अकह कहानी ॥३३॥

रसना राम गुण रमि रमि पीजै । गुणातीत निर्मूलक लीजै ।
निरगुन ब्रह्म जपो रे भाई । जेहि सुमिरत सुधिबुधि सब पाई ॥

विख तजि राम न जपसि अभागे । का बूड़े लालच के आगे ।
ते सब तरे राम रसस्वादी । कह कवीर बूड़े बकवादी ॥३४॥

मन रे जब ते राम कह्यो रे । फिरि कहिबे को कछु न रह्यो रे ।
का भो जोग जज्ञ जप दाना । जो तैं राम नाम नहिं जाना ॥

काम क्रोध दोउ भारे । गुरु प्रसाद सब तारे ।
कह कवीर भ्रमनाशी । राम मिले अविनाशी ॥३५॥

राम का नाम संसार में सार है
राम का नाम अमृत बानी ।
राम के नाम ते कोटि पातक टरै
राम का नाम विस्वास मानी ॥
राम का नाम लै साधु सुमिरन करै
राम का नाम लै भक्ति ठानी ।
राम का नाम लै सूर सनमुख लरै
पैठि संग्राम में युद्ध ठानी ॥
राम का नाम लै नारि सत्ती भई
गेह बनि कंत सँग जरि उड़ानी ।
राम का नाम लै तीर्थ सब भरमिया
करत अस्नान भकोर पानी ॥
राम का नाम लै मूर्तिपूजा करै
राम का नाम लै देत दानी ।
राम का नाम लै विप्र भिक्षुक बनै
राम का नाम दुर्लभ जानी ॥

राम का नाम चैावेद का मूल है
निगम निचोर करतत्व ज्ञानी।
राम का नाम षट सासतर मथिए
चली षटदरसनों में कहानी॥
राम का नाम अग्गाध लीला बड़ी
खोजत खोज नहिं हार मानी।
राम का नाम लै विष्णु सुमिरन करै
राम का नाम शिवजोग ध्यानी॥

राम का नाम लै सिद्ध साधक बने
संभु सनकादि नारद गिआनी।
राम का नाम लै दृष्टि लइ रामचंद
भए वासिष्ठ गुरु मंत्र दानी॥

कहाँ लौं कहों अग्गाध लीला रची
राम का नाम काहू न जानी।
राम का नाम लै कृष्ण गीता कथी
बाँधिया सेत तव मर्म जानी॥

है परम जोति औ गुन निराकार है
तासु को नाम निरंकार मानी।
रूप बिन रेख बिन निगम अस्तुति करै
सत्त की राह अनकथ कहानी॥

विष्णु सुमिरन करै जोग शिव जेहि धरै
भनै सब ब्रह्म वेदांत गाया।
ब्रह्म सनकादि कोइ पार पावै नहीं
तासु का नाम कह रामराया।
कहैं कबीर वह शख्श तहकीक कर
राम का नाम जो पृथी लाया॥

नाम अमल उतरै ना भाई ।
औ अमल छिन छिन चढ़ि उतरै नाम अमल दिन बढ़ै सवाई ॥
देखत चढ़ै सुनत हिय लागै सुरत किए तन देत घुमाई ।
पियत पियाला भए मतवाला पायो नाम मिटी दुचिताई ॥
जो जन नाम अमल रस चाखा तर गइ गनिका सदन कसाई ।
कह कबीर गूँगे गुड़ खाया बिन रसना का करै बड़ाई ॥३७॥

शब्द-महिमा

साधो शब्द साधना कीजै ।
जासु शब्द ते प्रगट भए सब सब्द सोई गहि लीजै ॥
शब्दहिं गुरू शब्द सुनि सिख भे शब्द सो विरला बूझै ।
सोइ सिष्य और गुरू महातम जेहि अंतरगत सूझै ॥
शब्दै बेद पुरान कहत है शब्दै सब ठहरावै ।
शब्दै सुर मुनि संत कहत हैं शब्द भेद नहिं पावै ॥
शब्दै सुनि सुनि भेख धरत हैं शब्द कहै अनुरागी ।
षट दरशन सब शब्द कहत हैं शब्द कहै बैरागी ॥
शब्दै माया जग उतपानी शब्दै केर पसारा ।
कह कबीर जहँ शब्द होत है तवन भेद है न्यारा ॥३८॥
साधो शब्द सबन से न्यारा, जानेगा कोइ जानन हारा ॥
जोगी जती तपी संन्यासी, अंग लगावै छारा ।
मूल मंत्र सतगुरु दाया बिन, कैसे उतरै पारा ॥
जोग जग्य व्रत नेम साधना, कर्म धर्म ब्योपारा ।
सो तो मुक्ति सबन ते न्यारी, कस छूटै जम द्वारा ॥
निगम नेति जाके गुन गावैं, शंकर जोग अधारा ।
ध्यान धरत जेहि ब्रह्मा-बिष्णू, सो प्रभु अगम अपारा ॥

लागा रहै चरन सतगुरु के चंद चकोर की धारा।
कहैं कवीर सुनो भाइ साधो, नख शिख शब्द हमारा ॥३९॥
शब्द को खोजि ले शब्द को बूझि ले शब्द ही शब्द तू चलो भाई।
शब्द अकास है शब्द पाताल है शब्द ते पिंड ब्रह्मांड छाई ॥
शब्द वयना वसै शब्द सरवन वसै शब्द के ख्याल मूरति वनाई।
शब्द ही वेद है शब्द ही नाद है शब्द ही शास्त्र वहु भाँति गाई ॥
शब्द ही यंत्र है शब्द ही मंत्र है शब्द ही गुरू सिख को सुनाई।
शब्द ही तत्व है शब्द निःतत्व है शब्द आकार निराकार भाई ॥
शब्द ही पुरुख है शब्द ही नारि है शब्द ही तीन देवा थपाई।
शब्द ही दृष्ट अनदृष्ट ओंकार है शब्द ही सकल ब्रह्मांड जाई ॥
कहैं कवीर तैं शब्द को परिख ले शब्द ही आप करतार भाई॥४०॥

माया-प्रपंच

राम तेरी माया दुंद मचावै।
गति मति वाकी समझि परै नहिं सुर नर मुनिहिं नचावै ॥
का सेमर के साख वढ़े ये फूल अनूपम वानी।
केतिक चातक लागि रहे हैं चाखत रुवा उड़ानी।
कहा खजूर वड़ाई तेरी फल कोई नहिं पावै।
ग्रीपम ऋतु जव आइ तुलानी छाया काम न आवै ॥
अपना चतुर और को सिखवै कामिनि कनक सयानी।
कहै कवीर सुनो हो संतो राम-चरण रति मानि ॥४१॥

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फाँस लिए कर डोलै वोलै मधुरी वानी ॥
केशव के कमला ह्वै वैठी शिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरति ह्वै वैठी तीरथ में भइ पानी ॥

योगी के योगिनि है बैठी राजा के घर रानी।
काहू के हीरा है बैठी काहु के कौड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिनि है बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो हो संतो यह सब अकथ कहानी॥४२॥

सबही मदमाते कोइ न जाय। सँगहिं चोर घर मूसन लाग॥
योगी मदमाते योग ध्यान। पंडित मदमाते पढ़ि पुरान॥
तपसी मदमाते तप के भेव। संन्यासी मदमाते करि हमेव॥
मौलना मदमाते पढ़ि मोसाफ। काजी मदमाते कै निसाफ॥
शुकदेव मते ऊधो अक्रूर। हनुमत मदमाते ले लँगूर॥
संसार मत्यो माया के धार। राजा मदमाते कहि हँकार॥
शिव माति रहे हरि चरण सेव। कलि माते नामा जयदेव॥
वह सत्य सत्य कह सुम्रित वेद। जस रावण मारे घर के भेद॥
एहि चंचल मन के अधम काम। कह कबीर भज राम नाम॥४३॥
आँधर गुष्टि सृष्टि भै बैरी। तीनि लोक महँ लागि ठगौरी॥
ब्रह्महि ठग्यो नाम संहारी। देवन सहित ठग्यो त्रिपुरारी॥
राज ठगौरी विश्नुहि परी। चौदह भुवन केर चौधरी॥
आदि अंत जेहि काहु न जानी। ताके डर तुम काहे मानी॥
ऊ उतंग तुम जाति पतंगा। यम घर किहेहु जीव कै संगा॥
नीम कीट जस नीम पियारा। विष को अमृत कहैं गँवारा॥
विष के संग कवन गुण होई। किंचित लाभ मूल गो खोई॥
विष अमृत गो एकहि सानी। जिन जाना तिन विष कै मानी॥
कहा भए नर सुध वे सूझा। विन परचै जग मूढ़ न बूझा॥
मति के हीन कौन गुण कहई। लालच लागे आशा रहई॥

मुआ अहै मरि जाहुगे, मुए कि बाजी ढोल।
स्वप्न सनेही जग भया, सहि दानी रहे बोल॥४४॥

जरासिंधु शिशुपाल सँहारा। सहस्र अर्जुनें छल सों मारा॥

चड़ छल रावण से गए वीती । लंका रह कंचन की भीती ।
दुर्योधन अभिमानहिं गयऊ । पंडव केर मरम नहिं पयऊ ।।
माया के डिंभ गे सब राजा । उत्तम मध्यम बाजन बाजा ।।
छाँच करै चित धरनि समाना । याकौ जीव परतीत न आना ।।
कहँ लौं कहौं अचेते गयऊ । चेत अचेत झगर एक भयऊ ।।

ई माया जंग मोहिनी मोहिसि सब जग धाय ।
हरिचंद सत के कारने घर घर गयो विकाय ।।४५।।

या माया रघुनाथ कि वौरी खेलन चली अहेरा हो ।
चतुर चिकनिया चुनि चुनि मारै काहु न राखै नेरा हो ॥
मौनी वीर लिगंवर मारे ध्यान धरे ते जोगी हो ।
जंगल में के जंगम मारे माया किनहुँ न भोगी हो ॥
वेद पढ़ंता पाँड़े मारे पुजा करंते स्वामी हो ।
अर्थ विचारत पंडित मारे वाँध्यो सकल लगामी हो ।।
शृंगी ऋषि वन भीतर मारे सिर ब्रह्मा कै फोरी हो ।
नाथ मछंदर चले पीठ दै सिंहलहूँ में वोरी हो ।।
साकत के घर कर्त्ता धर्ता हरि-भक्तन की चेरी हो ।
कहै कवीर सुनौ संतो ज्यों आवै त्यों फेरी हो ।।४६।।

नागिन ने पैदा किया नागिन डँसि खाया ।
कोइ कोइ जन भगत भए गुरु सरन तकाया ।।
शृंगी ऋषि भागत भए वन माँ वसे जाई ।
आगे नागिनि गाँसि के वोही डँसि खाई ।।
नेजा धारी शिव वड़े भागे कैलासा ।
जोति रूप परगट भई परवत परकासा ।।
सुर नर मुनि जोगी जती कोइ वचन न पाया ।
नोन तेल ढूँढ़ै नहीं कच्चै धरि खाया ।।
नागिन डरपै संत से उहवाँ नहिं जावै ।
कह कवीर गुरु-मंत्र से आपै मरि जावै ।। ४७ ।।

बूझहु पंडित करहु विचारी पुरुप अहै की नारी ।
ब्राह्मण के घर ब्राह्मणि होती योगी के घर चेली ।
कलमा पढ़ि पढ़ि भई तुरकिनी कवि में रहै अकेली ॥
वर नहिं वरै व्याह नहिं करई पुत्र जन्म होनिहारी ।
कारे मँडे एक नहिं छाँड़ै अवहीं आदि कुँवारी ॥
रहै न मैके जाय न ससुरे साईं संग न सोवै ।
कह कबीर वह युग युग जीवै जाति पाँति कुल खोवै ।४८।

तुम बूझहु पंडित कौन नारि ।
कोइ नाहिं बिआहल रह कुमारि ॥
येहि सब देवन मिलि हरिहि दीन्ह ।
तेहि चारो युग हरि संग लीन्ह ॥
यह प्रथमहिं पद्मिनी रूप आय ।
है साँपिनि सब जग देखि खाय ॥
या वर युवती वे वर नाह ।
अति तेज तिया है रैनि ताह ॥
कह कबीर सब जग पियारि ।
यह अपने बलकवै रहै मारि ॥४९॥
कर पल्लव के बल खेल नारि ।
पंडित जो होय सो ले विचारि ॥
कपरा नहिं पहिरे रहे उघारि ।
निरजीवै सो धन अति पियारि ॥
उलटी पलटी बाजै सो तार ।
काहुहि मारै काहुहि उबार ॥
कह कबीर दासन के दास ।
काहुहि सुख दे काहुहि उदास ॥५०॥

संतो यक अचरज भो भाई । कहौं तो को पतिआई ॥
एक पुरुख एक है नारी ताकर करहु विचारा ।
एकै अंड सकल चौरासी भर्म भुला संसारा ॥
एकै नारी जाल पसारा जग में भया अँदेसा ।
खोजत काहू अंत न पाया ब्रह्मा विष्णु महेसा ॥
नाग-फाँस लीन्हे घट भीतर मूसि सकल जग खाई ।
ज्ञान खड्ग विन सब जग जूझै पकरि काहु नहिं पाई ॥
आपुहि मूल फूल फुलवारी आपुहि चुनि चुनि खाई ।
कह कबीर तेई जन उवरे जेहिं गुरु लियो जगाई ॥५१॥

जगत-उत्पत्ति

जीव रूप यक अंतर वासा । अंतर ज्योति कीन परगासा ॥
इच्छा रूप नारि अवतरी । तासु नाम गायत्री धरी ॥
तेहि नारी के पुत तिन भयऊ । ब्रह्मा विष्णु शंभु नाम धरेऊ ॥
तव ब्रह्मा पूछत महतारी । को तोर पुरुख काकर तुम नारी ॥
तुम हम हम तुम और न कोई । तुम मोर पुरुप हमैं तोर जोई ॥
वाप पूत की नारि एक एकै माय विआय ।
दिख्यो न पूत सपूत अस वापै चीन्है धाय ॥५२॥
अंतर ज्योति शब्द यक नारी । हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी ॥
वखरी एक विधातै कीन्हा । चौदह ठहर पाटि सो लीन्हा ॥
हरि हर ब्रह्म महँ ता नाऊँ । ते पुनि तीन वसावल गाँऊँ ॥
ते पुन रचिनि खंड ब्रह्मंडा । छ दरशन छानवे पखंडा ॥
पेटहिं काहु न वेद पढ़ाया । सुनति कराय तुरुक नहि आया ॥
नारी गोचित गर्भ प्रसूती । स्वाँग धरे वहुतै करतूती ॥
तहिया हम तुम एकै लोहू । एकै प्राण वियायल मोहू ॥
एकै जनी जना संसारा । कौन ज्ञान ते भयो निनारा ॥

अवगति की गति काहु न जानी । एक जीभ कित कहों बखानी ॥
जो मुख होय जीभ दस लाखा । तौ कोइ आइ महंतो भाखा ॥

कहँहिं कबीर पुकारि कै ई लेऊ व्यवहार ।
राम राम जाने बिना बूड़ि मुआ संसार ॥५३॥

प्रथम आरंभ कौन के भाऊ । दूसर प्रगट कीन सो ठाऊँ ॥
प्रगटे ब्रह्म विष्णु शिव शक्ती । प्रथमे भक्ति कीन्ह जिव उक्ती ॥
प्रगटि पवन पानी औ छाया । बहु विस्तर है प्रगटी माया ॥
प्रगटे अंड पिंड ब्रह्मंडा । पृथवी प्रगट कीन नव खंडा ॥
प्रगटे सिध साधक संन्यासी । ये सब लागि रहे अविनासी ॥
प्रगटे सुर नर मुनि सब भारी । तेऊ खोजि परे सब हारी ॥

जीउ सीउ सब प्रगटे वै ठाकुर सब दास ।
कविर और जानै नहीं राम नाम की आस ॥५४॥

प्रथम एक जो आपै आप । निराकार निरगुन निरजाप ॥
नहिं तब भूमि पवन आकासा । नहिं तब पावक नीर निवासा ॥
नहिं तब पाँच तत्व गुन तीनी । नहिं तब सृष्टी माया कीनी ॥
नहिं तब आदि अंत मध तारा । नहिं तब अंध धुंध उँजियारा ॥
नहिं तब ब्रह्मा विष्णु महेसा । नहिं तब सूरज चाँद गनेसा ॥
नहिं तब मच्छ कच्छ बाराहा । नहिं तब भादों फागुन माहा ॥
नहिं तब कंस कृष्ण बलिबावन । नहिं तब रघुपति नहिं तब रावन ॥
नहिं तब सरगुन सकल पसारा । नहिं तब धारे दस अवतारा ॥
नहिं तब सरसुति जमुना गंगा । नहिं तब सागर समुँद तरंगा ॥
नहिं तब तीरथ ब्रत तप पूजा । नहिं तब देव दैत अरु दूजा ॥
नहिं तब पाप पुन्न गुन लेखा । नहिं तब पढ़ना गुनना रेखा ॥
नहिं तब विद्या वेद पुराना । नहिं तब भए कतेब कुराना ॥

कहैं कबीर विचारि कै तब कुछ किरतिम नाहिं ।
परम पुरुष नाहँ आपही अगम अगोचर माहिं ॥५५॥

दूसरा एक अगम है आप । जाके कोई माय न बाप ॥

करता के नहिं बंधु औ नारी । सदा अखंडित अगम अपारी ॥
करता कछु खावै नहिं पीवै । करता कबहूँ मरै न जीवै ॥
करता के कुछ रूप न रेखा । करता के कुछ वरन न भेखा ॥
जाके जात गोत कछु नाहीं । महिमा वरनि न जाय मो पाहीं ॥
रूप अरूप नहीं तेहि नाऊँ । वर्न अवर्न नहीं तेहि ठाऊँ ॥
कहैं कबीर विचारि कै जाके वर्न न गाँव ।
निराकार औ निर्गुना है पूरन सब ठाँव ॥५६॥
करता किरतिम बाजी लाई । ओंकार ते सृष्टि उपाई ॥
पाँच तत्त तीनों गुन साजा । ताते सब किरतिम उपराजा ॥
किरतिम धरती और अकास । किरतिम चांद सूर परकास ॥
किरतिम पाँच तत्त गुन तीनी । किरतिम सृष्टि जुमाया कीनी ॥
किरतिम आदि अंत मध तारा । किरतिम अंध कूप उँजियारा ॥
किरतिम सरगुन सकल पसारा । किरतिम कहिए दस औतारा ॥
किरतिम कंस और बलि बावन । किरतिम रघुपति किरतिम रावन ॥
किरतिम कच्छ मच्छ बाराहा । किरतिम भादो फागुन माहा ॥
किरतिम सहर समुद्र तरंगा । किरतिम सरसुति जमुना गंगा ॥
किरतिम इसमृत वेद पुराना । किरतिम काजि कतेब कुराना ॥
किरतिम जोग जो पावत पूजा । किरतिम देवी देव जो दूजा ॥
किरतिम पाप पुन्न गुरु सीखा । किरतिम पढ़ना गुनना सीखा ॥
कहै कबीर विचारि कै कृतिम न करता होय ।
यह सब बाजी कृतिम है साँच सुनो सब कोय ॥५७॥
करता एक और सब बाज़ी । ना कोई पीर मसायख काजी ॥
बाजी ब्रह्मा विष्णु महेसा । बाजी इंदर चांद गनेसा ॥
बाजी जल थल सकल जहाना । बाजी जान जमीं असमाना ॥
बाजी वरनों इसमृति वेदा । बाजीगर का लखै न भेदा ।
बाजी सिध साधक गुरु सीखा । जहाँ तहाँ यह बाजी दीखा ॥
बाजी जोग जज्ञ ब्रत पूजा । बाजी देवी देवल दूजा ॥

बाजी तीरथ व्रत आचारा। बाजी जोग जग्य व्यवहारा॥
बाजी जल थल सकल किवाई। बाजी सों बाजी लिपटाई॥
बाजी का यह सकल पसारा। बाजी माहिं रहै संसारा॥
कहै कबीर सब बाजी माहीं। बाजीगर को चीन्हैं नाहीं॥५८॥

मन-महिमा

संतो यह मन है बड़ जालिम।
जासों मन सों काम परो है तिसही है है मालुम॥
मन कारण की इनकी छाया तेहि छाया में अटके।
निरगुन सरगुन मन की बाजी खरे सयाने भटके॥
मनहीं चौदह लोक बनाया पाँच तत्व गुण कीन्हे।
तीन लोक जीवन बस कीन्हे परै न काहु चीन्हे॥
जो कोउ कहै हम मन को मारा जाके रूप न रेखा।
छिन छिन में कितनो रँग लावै जे सपनेहुँ नहिं देखा॥
रामानल बकहस ब्रह्मंडा सब पर अदल चलावै।
षट रस में भोगी मन राजा सो कैसे के पावै॥
सब के ऊपर नाम निरच्छर तहँ लै मन को राखै।
तब मन की गति जानि परै यह सत कबीर मुख भाखै॥५९॥

निर्वाण पद

पंडित मोहि कहहु समुझाई। जाते आवागमन नसाई।
अर्थ धर्म औ काम मोक्ष फल कौन दिशा बस भाई॥
उत्तर दक्षिण पूरब पश्चिम स्वर्ग पतालहि माहें।
बिन गोपाल ठौर नहि कतहूँ नरक जात धौं काहे॥

अनजाने को नरक सरग है हरि जाने को नाहीं।
जेहि डर को सब लोग डरत हैं सो डर हमरे नहीं॥
पाप पुन्न को संका नाहीं नरक सरग नहिं जाहीं।
कहै कबीर सुनो हो संतो जहँ पद तहाँ समाहीं॥६०॥

चलो सखी वैकुंठ विष्णु माया जहाँ।
चारिउ मुक्ति निदान परम पद ले तहाँ॥
आगे शून्य स्वरूप अलख नहिं लखि परै।
तत्व निरंजन जान भरम जनि चित धरै॥
आगे है भगवंत निरच्छर नाँव है।
तीन मिटावै कोटि बनावै ठाँव है॥
आगे सिंधु वलंद महा गहिरो जहाँ।
को नैया लै जाय उतारै को तहाँ॥
कर अजया की नाव तो सुरति उतारिहै।
लेइहैं अच्छर नाउ तो हंस उबारिहै॥
पार उतर पुरुषोत्तम परख्यो जान है।
तहँवा धाम अखंड तो पद निर्वान है॥
तहँ नहिं चाहत मुक्ति तो पद डारे फिरै।
सुनत सनेही हंस निरंतर उच्चरै॥
बारह मास वसंत अमरलीला जहाँ।
कहैं कबीर विचार अटल ह्वै रहु तहाँ॥६१॥
सत्त सुकृत सत नाम जगत जानै नहीं।
बिना प्रेम परतीत कहा मानै नहीं॥
जिव अनंत संसार न चीन्हत पीव को।
कितना कह समझाय चौरासिक जीव को॥
आगे धाम अखंड सो पद निरवान है।
भूख नींद ना वहाँ निःअच्छर नाम है॥

कहैं कबीर पुकारि सुना मनभावना।
हंसा चल।[सत लोक बहुरि नहिं आवना ॥८२॥

हँसा लोक हमारे अइहौ, ताते अमृत फल तुम पइहौ॥
लोक हमारा अगम दूर है, पार न पावै कोई।
अति आधीन होय जो कोई, ताको देउँ लखाई॥
मिरत लोक से हंसा आए, पुहुप दीप चलि जाई।
अंबु दीप में सुमिरन करिहो, तब वह लोक दिखाई॥
माटी का पिंड छूट जायगा, औ यह सकल विकारा।
ज्यों जल माहिं रहत है पुरइन, ऐसे हंस हमारा॥
लोक हमारे अइहौ हंसा, तब सुख पइहौ भाई।
सुखसागर असनान करोगे, अजर अमर है जाई॥
कहैं कबीर सुनो धरमदासा, हंसन करी बधाई।
सेत सिंहासन बैठक देहौं, जुग जुग राज कराई॥८३॥

सतगुरु महिमा और लक्षण

चल सतगुरु की हाट ज्ञान बुध लाइए।
कर साहब सों हेत परम पद पाइए॥
सतगुरु सब कछु दीन देन कछु नहिं रह्यो।
हमहिं अभागिन नारि छोड़ि सुख दुख लह्यो॥

गई पिया के महल पिया अँग ना रची।
रहो कपट हिय आय मान लज्जा भरी॥

जहँ गैल सिलहिली चढ़ौं गिरि गिरि परौं।
उठौं सम्हारि सम्हारि चरन आगे धरौं॥

पिया मिलन की चाह कौन तेरे लाज है।
सरन मिलो किन जाय भला दिन आज है॥

भला बना संजोग प्रेम का चोलना ।
तन मन अरपौं सीस साहब हँस बोलना ॥
जो गुरु रूठे होंय तो तुरत मनाइए ।
हुइए दीन अधीन चूकि बकसाइए ॥
जो गुरु होंय दयाल दया दिल हेरिहैं ।
कोटि करम कटि जायँ पलक छिन फेरिहैं ॥
कह कबीर समुझाय समुझ हिरदै धरो ।
जुगन जुगन कर राज कुमति अस परिहरो ॥६४॥

भाई कोइ सतगुरु संत कहावै, नैनन अलख लखावै ।
डोलत डिगै न बोलत बिसरै जब उपदेस दृढ़ावै ॥
प्रान पूज्य किरिया ते न्यारा सहज समाधि सिखावै ।
द्वार न रूँधै पवन न रोकै नहिं अनहद अरुझावै ॥
यह मन जाय जहाँ लग जबहीं परमातम दरसावै ।
करम करै निहकरम रहै जो ऐसी जुगुत लखावै ॥
सदा बिलास त्रास नहिं मन में भोग में जोग जगावै ।
धरती त्यागि अकासहुँ त्यागै अधर मँड़इया छावै ॥
सुन्न सिखर के सार सिला पर आसन अचल जमावै ॥
भीतर रहा सो बाहर देखै दूजा दृष्टि न आवै ।
कहत कबीर बसा है हंसा आवागमन मिटावै ॥६५॥

साधो सो सतगुरु मोहिं भावै ।
सत्त नाम का भर भर प्याला आप पिवै मोहिं प्यावै ॥
मेले जाय न महँत कहावै पूजा भेंट न लावै ।
परदा दूर करै आँखिन का निज दरसन दिखलावै ॥
जाके दरसन साहब दरसैं अनहद शब्द सुनावै ।
माया के सुख दुख कर जानै संग न सुपन चलावै ॥
निसि दिन सत-सँगति में राचै शब्द में सुरत समावै ।
कह कबीर ताको भय नाहीं, निरभय पद परसावै ॥

सील सँतोख ते सब्द जा मुख बसे, संतजन जौहरी साँच गानी।
बदन विकसित रहै ख्याल आनंद में, अधर में मधुर मुसकात बानी॥
साँच डोलै नहीं झूठ बोलै नहीं, सुरत में सुमति सोइ श्रेष्ठ ज्ञानी।
कहत हैं ज्ञान पुकारि के सबन सों, देत उपदेस दिल दर्द जानी।
ज्ञान को पूर है रहनि को सूर है, दया की भक्ति दिल माहिं ठानी।
ओर ते छोर लौं एक रस रहत है, ऐस जन जगत में विरले प्रानी।
ठग्ग बट-पार संसार में भरि रहे, हंस की चाल कहँ काग जानी।
चपलता चतुर हैं बने बहु चीकने, बात में ठीक पै कपट ठानी।
कहा तिनसों कहों दया जिनके नहीं, घात बहुतै करैं बकुल ध्यानी।
दुर्मती जीव की दुबिध छूटै नहीं, जन्म जन्मात्र पड़ नर्क खानी।
काग कुबुद्धि सुबुद्धि पावैं कहाँ, कठिन कठोर विकराल बानी।
अगिन के पुंज हैं सीतलता तन नहीं, अमृत और विष दोउ एक सानी।
कहा साखी कहें सुमति जाकी नहीं, साँच की चाल बिन धूर धानी।
सुकृति और सत्त की चाल साँची सही, काग बक अधम की कौन खानी।
कहै कब्बीर कोउ सुघर जन जौहरी, सदा सब धान पय नीर छानी॥७०॥

है साधू संसार में कँवला जल माहीं।
सदा सरबदा संग रहै परसत जल नाहीं॥
जल केरी ज्यों कूकही जल माहिं रहानी।
पंख पानी बेधै नहीं कछु असर न जानी॥
मीन तरै जल ऊपरै जल लगै न भारा।
आड़ अटक मानैं नहीं पैरे जल धारा॥
जैसे सीप समुद्र में चित देत अकासा।
कुंभ कला है खेलही तस साहेब दासा॥

जुगति जमूरा पाइकै सरपे लपटाना।
विख वाके वेधे नहीं गुरु गंम समाना॥
दूध भात घृत भोजना वहु पाक मिठाई।
जिभ्या लेस लगैं नहीं उनके रोसनाई॥
वामी में विखधर वसैं कोइ पकरि न पावै।
कह कवीर गुरु-मंत्र से सहजै चलि आवै॥७१॥
दरस दिवाना वावरा अलमस्त फकीरा।
एक अकेला ह्वै रहा असमत का धीरा॥
हिरदे में महवूव है हर दम का प्यारा।
पीएगा कोइ जौहरी गुरु-मुख मतवाला॥
पियत पियाला प्रेम का सुघरे सव साथी।
आठ पहर झूमत रहै जस मैगल हाथी॥
वंधन काटे मोह के वैठा निरसंका।
वाके नजर न आवता क्या राजा रंका॥
धरती तो आसन किया तंवू असमाना।
चोला पहिरा खाक का रह पाक समाना॥
सेवक को सतगुरु मिले कछु रहि न तवाही।
कह कवीर निज घर चलो जहँ काल न जाही॥७२॥

जेहि कुल भगत भाग वड़ होई।
अवरन वरन न गनिय रंक धनि विमल वास निज सोई॥
वाम्हन छत्री वैस सूद्र सव भगत समान न कोई।
धन वह गाँव ठाँव असथाना ह्वै पुनीत सँग लोई॥
होत पुनीत जपै सतनामा आपु तरै तारै कुल दोई॥
जैसे पुरइन रह जल भीतर कह कवीर जग में जन सोई॥७३॥

वेदांतवाद

साधो सतगुरु अलख लखाया आप आप दरसाया।
बीज मध्य ज्यों वृच्छा दरसै वृच्छा मद्धे छाया।
परमातम में आतम तैसे आतम मद्धे माया॥
ज्यों नभ में सुन्न देखिए सुन्न अंड आकारा।
निह अच्छर तें अच्छर तैसे अच्छर छर विस्तारा॥
ज्यों रवि मद्धे किरिन देखिए किरिन मध्य परकासा॥
परमातम में जीव ब्रह्म इमि जीव मध्य तिमि स्वाँसा।
स्वाँसा मद्धे शब्द देखिए अर्थ शब्द के माहीं।
ब्रह्म ते जीव जीव ते मन इमि न्यारा मिला सदाहीं॥
आपहि बीज वृच्छ अंकूरा आप फूल फल छाया।
आपहि सूर किरिन परकासा आप ब्रह्म जिव माया॥
अंडाकार सुन्न नभ आपै स्वाँस शब्द अरथाया।
निह अच्छर अच्छर छर आपै मन जिव ब्रह्म समाया॥
आतम में परमातम दरसै परमातम में झाँईं।
झाँईं में परिछाँईं दरसै लखै कबीरा साईं॥
पानी बिच मीन पियासी, मोहिं सुन सुन आवत हाँसी।
आतम ज्ञान बिना सब सूना, क्या मथुरा क्या कासी॥
घर में वस्तु धरी नहिं सूझै, बाहर खोजत जासी।
मृग का नाभि माहिं कस्तूरी, बन बन खोजत जासी।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सहज मिलै अविनासी।७५।

चांदा झलकै येहि घट माँहीं। अंधी आँखिन सूझै नाहीं॥
येहि घट चांदा येहि घट सूर। येहि घट गाजै अनहद तूर॥
येहि घट बाजै तबल निसान। बहिरा शब्द सुनै नहिं कान॥
जब लग मेरी मेरी करै। तब लग काज न एको सरै॥
जब मेरी ममता मरि जाय। तब प्रभु काज सँवारे आय॥

जब लग सिंह रहै वन माहिं । तब लग वह वन फूलै नाहिं ॥
उलटा स्यार सिंह को खाय । उकठा वन फूलै हरिआय ॥
ज्ञान के कारन करम कमाय । होय ज्ञान तब करम नसाय ॥
फल कारन फूलै वन राय । फल लागे पर फूल सुखाय ॥
मिरग पास कस्तूरी वास । आप न खोजै खोजै घास ॥
पारै पिंड मीन लै खाई । कहैं कबीर लोग बौराई ॥७६॥

अवधू अंध कूप अँधियारा ।
या घट भीतर सात समुंदर याहि में नदी नारा ।
या घट भीतर काशि द्वारिका याहि में ठाकुरद्वारा ॥
या घट भीतर चंद सूर है याहि में नौ लख तारा ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो याहि में सत करतारा ॥७७॥

साधो एक आपु जग माहीं ।
दूजा करम भरम है किरतिम ज्यों दरपन में छाहीं ।
जल तरंग जिमि जलते उपजै फिर जल माहिं रहाई ॥
काया झाँई पाँच तत्त की बिनसे कहाँ समाई ।
या बिधि सदा देहगति सबकी या विधि मनहिं बिचारो ।
आया होय न्याव करि न्यारो परम तत्व निरवारो ॥
सहजै रहै समाय सहज में ना कहुँ आया न जावै ।
धरै न ध्यान करै नहिं जप तप राम रहीम न गावै ॥
तीरथ बरत सकल परित्यागै सुन्न डोर नहिं लावै ॥
यह धोखा जब समुझि परै तब पूजै काहि पुजावै ।
जोग जुगत में भरम न छूटै जब लग आप न सूझै ॥
कह कबीर सोइ सतगुरु पूरा जो कोइ समुझै बूझै ॥७८॥

साधो सहजै काया सोधो ।
करता आपु आप में करता लख मन को परमोधो ॥
जैसे बट का बीज ताहि में पत्र फूल फल छाया ।
आया मद्धे बुंद बिराजै बुंदै मद्धे काया ॥

अग्नि पवन पानी पिरथी नभ ता विन मेला नाहीं ।
काजी पंडित करो निवेरा काके माहिं न साँई ॥
साँचे नाम अगम की आसा है वाही में साँचा ।
करता वीज लिए है खेतै त्रिगुन तीन तत पाँचा ॥
जल भरि कुंभ जलै विच धरिया वाहर भीतर सोई ।
उनको नाम कहन को नाँही दूजा धोखा होई ॥
कठिन पंथ सतगुरु को मिलना खोजत खोजत पाया ।
इक लग खोज मिटी जव दुविधा ना कहुँ गया न आया ॥
कहैं कवीर सुनो भाइ साधो सत्त शव्द निज सारा ।
आपा मद्धे आपै वोलै आपै सिरजनहारा ॥७९॥

दरियाव की लहर दरियाव है जी दरियाव औ लहर भिन्न कोयम ।
उठे तो नीर है वैठता नीर है कहो किस तरह दूसरा होयम ॥
उसी नाम को फेर के लहर धारो लहर के कहे क्या नीर खोयम ।
जक्त ही फेर सव जक्त है ब्रह्ममें ज्ञान करि देख कव्वीर गोयम ॥८०॥

मन तू मानत क्यों न मना रे ।
कौन कहन को कौन सुनन को दूजा कौन जना रे ॥
दरपन में प्रतिविंव जो भासे आप चहूँ दिसि साई ।
दुविधा मिटै एक जव होवै तौ लख पावै कोई ॥
जैसे जल ते हेम वनत है हेम धूम जल होई ।
तैसे या तत वाहू तत सों फिर यह अरु वह सोई ॥
जो समझै तो खरी कहन है ना समझै तो खोटी ।
कह कवीर दोऊ पख त्यागै ताकी मति है मोटी ॥८१॥

ना मैं धरमी नाहिं अधरमी ना मैं जती न कामी हो ।
ना मैं कहता ना मैं सुनता ना मैं सेवक स्वामी हो ॥
ना मैं वंधा ना मैं मुक्ता ना निरवंध सरवंगी हो ।
ना काहू से न्यारा हुआ ना काहू को संगी हो ॥

ना हम नरक लोक को जाते ना हम सरग सिधारे हो।
सब ही कर्म हमारा कीया हम कर्म्मन ते न्यारे हो ॥
या मत को कोइ विरला बूझै सो सतगुरु हो बैठे हो।
मत कवीर काहू को थापे मत काहू को मेटे हो ॥८२॥

फहम करु फहम करु फहम करु मान यह फहम विनु फिकिर नहि मिटै तेरी। सकल उँजियार दीदार दिल बीच है जौक औ शौक सब मौज तेरी ॥ वोलता मस्त मस्ताने महवूव है इना सा अदल कहु कौन केरी। एक ही नूर दरियाव वह देखिए फैल वह रहा सब सृष्टि में री। आप ही गन्नी गरीव है आप ही आप गन्नीम हो आप घेरी। आप ही चोर पुनि साहु है आप ही ज्ञान कथि आप ही आप सुने री। आप ही हरी हरिनाकुसा आप ही आप नरसिंह हो आप गेरी। आप ही रावना आप रघुनाथ जी आप को आप ही आप दले री। आप वलि होइकै दान वसुधा किया आप हो वावना आप छले री। आप ही कृष्ण है कंस है आप ही आप को आप आपहि हते री। आप ही भक्त भगवंत है आप ही और नहिं दूसरा अर्ज सुने री ॥८३॥

मुक्त होवै छुटै बँधन सेती तब कौन मरै तिसै कौन मारै।
अहंकार तजै भय रहित होवै तब कौन तरे तिसे कौन तारै ॥
मरना जीना है ताहि को जी जो आपु को आपु विसारि डारै।
चैतन्य होवै उठि जागि देखे दया देखि कै जोति कबीर धारै ॥८४॥

यह तो एक हुवाव है जी साकिन दरियाव के वीच सदा।
हुब्बाव तो ऐन दरियाव जी देखो नहिं वह से मौज जुदा ॥
हुब्बाव तो है उठनेहि में जी है बैठने में मतलब्ब खुदा।
होवाव दरियाव कवीर है जो दुजा नाम बोले सो वुदवुदा ॥८५॥

घट घट में रटना लागि रही परगट हुआ अलेख है जी।
कहुँ चोर हुआ कहुँ साह हुआ कहुँ वाम्हन है कहुँ सेख है जी ॥

बहुरंगी प्यारा सब से न्यारा सब ही में एक भेख है जी।
कब्बीर मिला मुरशिद उसमें हम तुम नाहीं वह एक है जी॥८६॥
असमान का आसरा छोड़ प्यारे उलटि देखो घट अपना जी।
तुम आप में आप तहकीक करो तुम छोड़ो मन की कल्पना जी॥
बिन देखे जो निज नाम जपे सो कहिए रैन का सपना जी।
कबीर दीदार परगट देखा तब जाप कौन का जपना जी॥८७॥

अपनपो आप ही बिसरो।
जैसे सोनहा काँच मँदिर में भरमत भूँकि मरो।
ज्यों केहरि बपु निरखि कूप जल प्रतिमा देखि परो।
ऐसेहि मदगज फटिक शिला पर दसननि आनि अरो।
मरकट मुठी स्वाद ना बिसरे घर घर नटत फिरो।
कह कबीर ललनी के सुवना तोहि कौने पकरो॥८८॥

साम्यवाद

आपुहिं करता भे करतारा। बहु विधि बासन गढ़ै कुम्हारा॥
बिधना सबै कीन यक ठाऊँ। अनिक जतन कै बनक बनाऊँ॥
जठर अग्नि महँ दिय परजाली। तामें आप भए प्रतिपाली॥
बहुत जतन कै बाहर आया। तब शिव शक्ती नाम धराया॥
घर को सुत जो होय अयाना। ताके संग न जाय सयाना॥
साँची बात कहौं मैं अपनी। भया दिवाना और कि सपनी॥
गुप्त प्रगट है एकै मुद्रा। काको कहिए ब्राह्मन शुद्रा॥
झूठ गरब भूले मति कोई। हिंदू तुरुक झूठ कुल दोई॥
जिन यह चित्र बनाइया साँची सूरत ढारि।
कह कबीर ते जन भले जे तेहि लेहि विचारि॥८९॥
जो तोहि कर्ता वर्ण विचारा। जन्मत तीन दंड अनुसारा॥
जन्मत शूद्र भए पुनि शूद्रा। कृत्रिम जनेउ घालि जगदुंद्रा॥

जो तुम बाम्हन बाम्हनि जाए। और राह तुम काहे न आए ॥
जो तू तुरुक तुरुकिनी जाया। पेटै काहे न सुनति कराया ॥
कारी पीरी दूहौ गाई। ताकर दूध देहु बिलगाई ॥
छाँडु कपट नर अधिक सयानी। कह कबीर भजु सारंगपानी॥९०॥

दुइ जगदीश कहाँ ते आए कहुँ कौने भरमाया।
अल्ला राम करिम केशव हरि हजरत नाम धराया ॥
गहना एक कनक ते गहना तामें भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुइ कर थाते एक नेवाज एक पूजा ॥
वही महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिए।
कोइ हिंदू कोइ तुरुक कहावै एक जमीं पर रहिए ॥
वेद किताब पढ़ै वे कुतबा वे मौलना वे पाँड़े।
बिगत बिगत कै नाम धरायो एक माटी के भाँड़े ॥
कह कबीर ते दोनों भूलें रामहि किनहु न पाया।
वे खसिया वे गाय कटावैं वादै जन्म गँवाया ॥९१॥

ऐसो भरम बिगुरचन भारी।
बेद किताब दीन औ दोजख को पुरुषा को नारी ॥
माटी के घर साज बनाया नादे बिंदु समाना।
घट बिनसे क्या नाम धरहुगे अहमक खोज भुलाना ॥
एकै हाड़ त्वचा मल मूत्रा रुधिर गुदा एक मुद्रा।
एक बिंदु ते सृष्टि रच्यो है को ब्राह्मण को शूद्रा ॥
रजगुण ब्रह्म तमोगुण शंकर सतोगुणी हरि सोई।
कहै कबीर राम रमि रहिया हिंदू तुरुक न कोई ॥९२॥

——

भक्ति-उद्रेक

ओढ़न मेरो राम नाम मैं रामहिं को बनिजारा हो।
राम नाम को करौं बनिज मैं हरि मोरा हटवारा हो ॥

सहस नाम को करौं पसारा दिन दिन होत सवाई हो।
कान तराजू सेर तिनपौवा डहकिन ढोल वजाई हो॥
सेर पसेरी पूरा कर ले पासँग कतहुँ न जाई हो।
कहैं कबीर सुनो हो संतो जोरि चले जहँड़ाई हो॥९३॥

तोको पीव मिलैंगे घूँघट को पट खोल रे।
घट घट में वह साँई रमता कटुक वचन मत बोल रे॥
धन जोवन के गरव न कीजै झूठा पँचरँग चोल रे।
सुन्न महल में दियना वारि ले आसा सों मत डोल रे॥
जाग जुगुत सों रंग-महल में पिय पायो अनमोल रे।
कहैं, कबीर अनंद भयो है वाजत अनहद ढोल रे॥९४॥

पायो सतनाम गरै कै हरवा।
साँकर खटोलना रहनि हमारी दुवरे दुवरे पाँच कँहरवा।
ताला कुंजी हमें गुरु दीन्ही जब चाहौं तब खोलौं किवरवा॥
प्रेम प्रीति की चुनरी हमारी जब चाहौं तब नाचौं सहरवा।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो बहुर न ऐबै एही नगरवा॥९५॥

मिलना कठिन है, कैसे मिलौंगी पिय जाय।
समुझि सोच पग धरौं जतन से बार बार डिग जाय॥
ऊँची गैल राह रपटीली पाँव नहीं ठहराय।
लोक-लाज कुल की मरजादा देखत मन सकुचाय॥
नैहर वास वसा पीहर में लाज तजी नहिं जाय।
अधर भूमि जहँ महल पिया का हम पै चढ़ो न जाय॥
धन भई वारी पुरुख भए भोला सुरत झकोरा खाय।
दूती सतगुरु मिले बीच में दीन्हों भेद बताय।
साहब कबिरा पिया सों भेंट्यो सीतल कंठ लगाय॥९६॥

दुलहिन गावो मंगलचार। हमरे घर आए राम भतार।
तन रति कर मैं मन रति करिहौं पाँचो तत्त्व बराती।
रामदेव मोहिं व्याहन आए मैं जोवन मदमाती।

सरिर सरोवर वेदी करिहैं ब्रह्मा वेद उचारा।
रामदेव सँग भाँवर लैहों धन धन भाग हमारा।
सुर तैंतीसो कौतुक आए मुनिवर सहस अठासी।
कह कबीर मोहिं ब्याहि चले हैं पुरुष एक अविनासी ॥९७॥

हरि मोर पीव मैं राम की वहुरिया।
राम मोर वड़ा मैं तन की लहुरिया॥
हरि मोर रहँटा मैं रतन पिउरिया।
हरि को नाम लै कातल वहुरिया॥
छ मास ताग बरस दिन ककुरी।
लोग बोले भल कातल वपुरा॥
कहै कबीर सूत भल काता।
रहँटा न होय मुक्ति कर दाता ॥९८॥

साँईं के सँग सासुर आई।
संग न सूती स्वाद न जानी जोबन गो सपने की नाईं।
जना चारि मिलि लगन सोधाई जना पाँच मिलि मंडप छाई।
सखा सहेली मंगल गावैं दुख सुख माथे हरदि चढ़ाई।
नाना रूप परी मन भाँवरि गाँठी जोरि भई पति आई॥
अरघ देइ देइ चली सुवासिनि चौकहिं राँड़ भई सँग साईं।
भयो वियाह चली विन दूलह वाट जात समधी समुझाई।
कहै कवीर हम गौने जैवै तरब कंत ले तूर बजाई॥९९॥

विरह-निवेदन

वालम आओ हमारे गेह रे। तुम विन दुखिया देह रे।
सब कोइ कहै तुमारी नारी मोको यह संदेह रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै तव लग कैसे नेह रे॥

अन्न न भावे नींद न आवे गृह वन धरे न धीर रे।
ज्यों कामी को कामिनि प्यारी ज्यों प्यासे को नीर रे॥
है कोइ ऐसा पर-उपकारी पिय से कहै सुनाय रे।
अवं तो वेहाल कवीर भए हैं विन देखे जिउ जाय रे ॥१००॥

सतगुरु हो महाराज, मोपै साईं रँग डारा।
शब्द की चोट लगी मेरे मन में वेध गया तन सारा॥
औषध मूल कछू नहिं लागे क्या करे वैद विचारा।
सुर नर मुनि जन पीर औलिया कोइ न पावै पारा।
साहव कविर सर्व रँग रँगिया सव रँग से रँग न्यारा ॥१०१॥

कैसे दिन कटिहै जतन वताए जइयो।
एहि पार गंगा वोही पार जमुना
विचवाँ मँड़इया हमका छवाए जइयो॥
अँचरा फारि के कागद वनाइन
अपनी सुरतिया हियरे लिखाए जइयो।
कहत कवीर सुनो भाई साधो
वहियाँ पकरि के रहिया वताए जइयो ॥१०२॥

प्रीत लगी तुश्र नाम की पल विसरै नाहीं।
नजर करो अव मेहर की मोहिं मिलो गुसाईं॥
विरह सतावे मोहिं को जिव तड़पै मेरा।
तुम देखन को चाव है प्रभु मिलो सवेरा॥
नैन तरसे दरस को पल पलक न लागै।
दरद वंद दीदार का निस वासर जागै॥
जो अव प्रीतम मिलै करूँ निमिख न न्यारा।
अव कवीर गुरु पाइयां मिला प्रान पियारा ॥१०३॥

हूँ वारी मुख फेरि पियारे। करवट दे मोहिं काहे को मारे॥
करवत भला न करवट तेरी। लाग गरे सुन विनती मेरी॥
हम तुम वीच भया नहिं कोई। तुमहि सो कंत नारि हम सोई॥

कहत कबीर सुनो नर लोई। अब तुम्हरी परतीत न होई ॥१०४॥

शब्द की चोट लगी तन में। घर नहिं चैन चैन नहिं वन में ॥
ढूँढ़त फिरौं पीव नहिं पावौं। औषध मूल खाय गुजरावौं ॥
तुम से वैद न हम से रोगी। विन दिदार क्यों जिए वियोगी ॥
एकै रँग रँगी सब नारी। ना जानों को पिय की प्यारी ॥
कह कबीर कोइ गुरमुख पावै। विन नैनन दीदार दिखावै ।१०५।

चली मैं खोज में पिय की। मिटी नहिं सोच यह जिय की ॥
रहै नित पास ही मेरे। न पाऊँ यार को हेरे ॥
विकल चहुँ ओर को धाऊँ। तबहुँ नहिं कंत को पाऊँ ॥
धरों केहि भाँति से धीरा। गयो गिर हाथ से हीरा ॥
कटी जब नैन की झाँईं। लख्यो तब गगन में साँईं ॥
कबीरा शब्द कहि भासा। नयन में यार को बासा ॥१०६॥

अविनासी दुलहा कब मिलिहौ, भक्तन के रछपाल।
जल उपजी जल ही सों नेहा, रटत पियास पियास।
मैं ठाढ़ी बिरहिन मग जोऊँ, प्रियतम तुमरी आस ॥
छोड़े गेह नेह लगि तुम सों, भइ चरनन लवलीन।
तालावेलि होत घट भीतर, जैसे जल बिनु मीन ॥
दिवस रैन भूख नहिं निद्रा, घर अँगना न सुहाय।
सेजरिया वैरिन भइ हम को, जागत रैन विहाय ॥
हम तो तुमरी दासी सजना, तुम हमरे भरतार।
दीन दयाल दया करि आओ, समरथ सिरजनहार ॥
कै हम प्रान तजत हैं प्यारे, कै अपना कर लेव।
दास कबीर विरह अति वाढ़ेउ, हमकै दरसन देव ॥१०७॥

सुन सतगुरु की तान नींद नहिं आती।
विरहा में सूरत गई पछाड़े खाती ॥

तेरे घर में हुआ अँधेर भरम की राती।
नहिं भई पिया से भेंट रही पछताती॥
सिख नैन सैन सो खोज ढूँढ़ ले आती।
मेरे पिया मिले सुख चैन नाम गुन गाती॥
तेरि आवागमन की त्रास सबै मिट जाती।
छवि देखत भई है निहाल काल मुरझाती॥
सखि मान सबोवर चलो हंस जहँ पाती।
यह कहैं कबीर विचार सीप मिलि स्वाती॥१०८॥
तलफै बिन बालम मोर जिया।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया तलफ तलफ के भोर किया॥
तन मन मोर रहँठ अस डोलै सून सेज पर जनम छिया।
नैन थकित भए पंथ न सूझै साँईं बेदरदी सुध न लिया॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो हरो पीर दुख जोर किया१०९॥
पिया मिलन की आस रहौं कब लौं खरी।
ऊँचे नहिं चढ़ि जाय मने लज्जा भरी॥
पाँव नहीं ठहराय चढूँ गिर गिर परूँ।
फिरि फिरि चढ़हुँ सँम्हारि चरन आगे धरूँ॥
अंग अंग थहराय ते बहु विधि डरि रहूँ।
करम कपट मग घेरि ते भ्रम में परि रहूँ॥
बारी निपट अनारि ते झीनी गैल है।
अटपट चाल तुम्हार मिलन कस होइहै॥
छोरो कुमति विकार सुमति गहि लीजिए।
सतगुरु शब्द सम्हारि चरन चित दीजिए॥
अंतर पट दे खोल सब्द उर लाव री।
दिल बिच दास कबीर मिलैं तोहि बावरी॥११०॥

गृह-वैराग्य

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हमको भावै।
घर में जोग भोग घर ही में, घर तजि बन नहिं जावै ॥
बन के गए कलपना उपजै, तब धों कहाँ समावै।
घर में मुक्ति मुक्ति घर ही में, जो गुरु अलख लखावै ॥
सहज सुन्न में रहै समाना, सहज समाधि लगावै।
उनमुनि रहै ब्रह्म को चीन्है, परम तत्त को ध्यावै ॥
सुरति निरत सों मेला करि कै, अनहद नाद बजावै।
घर में बस्तु बस्तु में घर है, घर ही वस्तु मिलावै ॥
कहैं कबीर सुनो हो अवधू ज्यों का त्यों ठहरावै ॥१११॥

दूर वे दूर वे दूर वे दूरमति
दूर की बात तोहि बहुत भावै।
अहै हज्जूर हाजीर साहब धनी
दूसरा कौन कहु काहि गावै ॥
छोड़ दे कल्पना दूर का धावना
राज तजि खाक मुख काहि लावै।
पेड़ के गहे ते डार पल्लव मिले
डार के गहे नहिं पेड़ पावै ॥
डार औ पेड़ औ फूल फल प्रगट है
मिले जब गुरु इतनो लखावै।
सँपति सुख साहबी छोड़ जोगी भए
सून्य की आस बनखंड जावै ॥
कहहि कब्बीर बनखंड में क्या मिले
दिलहि को खोज दीदार पावै ॥११२॥

अनप्रापत वस्तु को कहा तजे, प्रापत को तजै सो त्यागी है।
सु-असील तुरंग कहा फेरे, अफतर फेरे सो बागी है ॥

जगभव का गावना क्या गावै, अनुभव गावै सो रागी है।
वन गेह की वासना नास करे, कब्बीर सोई वैरागी है ॥११३॥

कर्म्मगति

करमगति टारे नाहिं टरी।
मुनि वसिष्ठ से पंडित ज्ञानी सोध के लगन धरी ॥
सीता हरन मरन दसरथ को वन में विपति परी।
कहँ वह फंद कहाँ वह पारधि कहँ वह मिरग चरी ॥
सीया को हरि लैगो रावन सुवरन लंक जरी।
नीच हाथ हरिचंद विकाने वलि पाताल धरी ॥
कोटि गाय नित पुन्न करंत नृप गिरिगिट जोन परी।
पाँडव जिनके आपु सारथी तिनपर विपति परी ॥
दुरजोधन को गरव घटायो जदुकुल नास करी।
राहु केतु औ भानु चंद्रमा विधी सँजोग परी ॥
कहत कवीर सुनो भाई साधो होनी हो के रही ॥११४॥

अपने करम न मेटो जाई।
कर्म के लिखा मिटे धौं कैसे जो युग कोटि सिराई ॥
गुरु वसिष्ठ मिलि लगन सोधाई सूर्य्य मंत्र एक दीन्हा।
जो सीता रघुनाथ बिआही पल एक संच न कीन्हा ॥
नारद मुनि को वदन छुपायो कीन्हों कपि से रूपा।
सिसुपालहुँ की भुजा उपारी आपुन वौध सरूपा ॥
तीन लोक के करता कहिए वालि वध्यो वरिआई।
एक समय ऐसी वनि आई उनहूँ अवसर पाई ॥
पारवती को वाँझ न कहिए ईस न कहिय भिखारी।
कह कवीर करता की बातैं करम की बात निआरी ॥११५॥

मोहमहिमा

बुढ़िया हँसि कह मैं नितहिं बारि।
मोहिं ऐसि तरुन कहु कौन नारि॥
ये दाँत गए मोर पान खात।
औ केस गयल मोर गँग नहात॥
औ नयन गयल मोर कजल देत।
औ बैस गयल पर पुरुष लेत॥
औ जान पुरुखवा मोर अहार।
मैं अनजाने को कर सिंगार॥
कह कबीर बुढ़ि आनँद गाय।
नित पूत भतारहिं बैठि खाय॥११६॥

मोर मनुख है अति सुजान। धंधा कुटि कुटि कर बिहान॥
उठि बड़े भोर आँगन बुहार। ले बड़ी खाँच गोबरहिं डार॥
बासी भात मनुख ले खाय। बड़ घैला लै पानी जाय॥
अपने सैयाँ बाँधी पाट। लै रे बेचौं हाटै हाट॥
कह कबीर ये हरि के काज। जोइया के ढिंगर कौन काज॥११७॥

डर लागै हाँसी आवे अजब जमाना आया रे।
धन दौलत ले माल खजाना बेस्या नाच नचाया रे॥
मुट्ठी अन्न साध कोइ माँगै कहैं नाज नहिं आया रे।
कथा होय तहँ स्रोता सोवैं वक्ता मूँड़ पचाया रे॥
होय जहाँ कहि स्वाँग तमासा तनिक न नींद सताया रे।
भंग तमाखू सुलफा गाँजा सूखा खूब उड़ाया रे।
गुरु चरनामृत नेम न धारै, मधुवा चाखन आया रे।
उलटी चलन चली दुनियाँ में, तातें जिय घबराया रे।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, फिर पाछे पछताया रे॥११८॥

ऐसी दुनिया भई दिवानी, भक्ति भाव नहिं बूझै जी।
कोई आवे तो बेटा माँगे, यही गुसाईं दीजै जी॥
कोई आवै दुख का मारा, हम पर किरपा कीजै जी।
कोई आवे तो दौलत माँगै, भेंट रुपैया लीजै जी।
कोई करावै व्याह सगाई, सुनत गुसाईं रीझै जी॥
साँचे का कोइ गाहक नाहीं, झूठे जगत पतीज जी।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, अंधों को क्या कीजै जी॥११९॥

या जग अंधा, मैं केहि समझावों।
इक दुइ होय उन्हैं समाझावों, सब ही भुलाना पेट के धंधा॥
पानी कै घोड़ा पवन असवरवा, ढरकि परै जस ओस कै बुंदा।
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा, खेवनहारा पड़िगा फंदा॥
घर की वस्तु निकट नहिं आवत, दियना बारिके ढूँढत अंधा।
लागी आग सकल बन जरिगा, बिन गुर ज्ञान भटकिगा बंदा॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, इक दिन जाय लँगोटी झार बंदा॥१२०॥

चली है कुलबोरनी गंगा नहाय।
सतुवा कराइन बहुरी भुँजाइन घूँघट ओटे भसकत जाय॥
गठरी बाँधिन मोटरी बाँधिन, खसम के मूँड़े दिहिन धराय।
बिछुवा पहिरिन औंठा पहिरिन, लात खसम के मारिन जाय।
गंगा न्हाइन जमुना न्हाइन, नौ मन मैल हैं लिहिन चढ़ाय॥
पाँच पचीस कै धक्का खाइन, घरहुँ की पूँजी आईं गँवाय।
कहत कबीर हेत करुगुरु सौं नहिं तोर मुकती जाइ नसाय॥१२१॥

उद्‌बोधन

पंडित बाद बदौ सो झूठा।
राम के कहे जगत गति पावै खाँड़ कहे मुख मीठा॥

पावक कहे पाँव जो दाहै जल कहे तृखा बुझाई ।
भोजन कहे भूख जो भागै तो दुनिया तरि जाई ॥
नर के संग सुवा हरि बोलै, हरि प्रताप नहिं जानै ।
जो कबहूँ उड़ि जाय जंगल को तौ हरि सुरति न आनै॥
बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु नाम लिए का होई ।
धन के कहे धनिक जो होतो निरधन रहत न कोई ॥
साँची प्रीति विषय माया सों हरि भगतन की हाँसी ।
कह कबीर एक राम भजे बिन बाँधे जमपुर जासी ॥१२२॥

पंडित देखा मन मों जानी ।
कहु धौं छूत कहाँ ते उपजी तबहिं छूत तुम मानी ॥
नादरु विंद रुधिर एक संगै घटही में घट सज्जै ।
अष्ट कमल को पुहुमी आई कहँ यह छूत उपज्जै ।
लख चौरासी वहुत वासना सो सब सरि भो माटी ।
एकै पाट सकल वैठारे सींचि लेत धौं काटी ॥
छूतहि जेवन छूतहि अचवन छूतहि जग उपजाया ।
कह कवीर ते छूत विवर्जित जाके संग न माया ॥१२३॥
पंडित देखो हृदय बिचारो । कौन पुरुष को नारी ॥
सहज समाना घट घट वोलै वाको चरित अनूपा ।
वाको नाम कहा कहि लीजै ना ओहि वरन न रूपा ॥
तैं मैं काह करे नर बौरे क्या तेरा क्या मेरा ।
राम खोदाय शक्ति शिव एकै कहुवौं काहि निवेरा ॥
वेद पुरान कुरान कितेवा नाना भाँति वखानी ।
हिंदू तुरुक जैन औ जोगी एकल काहु न जानी ॥
छ दरसन में जो परवाना तासु नाम मनमाना ।
कह कवीर हमहीं हैं वौरे ई सब खलक सयाना ॥१२४॥
मांया मोहहिं मोहित कीन्हा । ताते ज्ञान रतन हरि लीन्हा ॥

जीवन ऐसो सपना जैसो जीवन सपन समाना ।
शब्द गुरू उपदेश दियो, तैं छाँड्यो परम निधाना ॥
जोतिहि देख पतंग हुलसै, पसु नहिं पेखै आगी ।
काम क्रोध नर मुगुध परे हैं, कनक कामिनी लागी ॥
सय्यद शेख किताव नीरखै, पंडित शास्त्र विचारै ।
सतगुरु के उपदेश विना, तुम जानि कै जीवहिं मारै ॥
करो चिचार विकार परिहरौ, तरन तारनै सोई ।
कह कवीर भगवंत भजन करु द्वितीया और न कोई ॥१२५॥
आपन आस किए वहुतेरा । काहु न मर्म पाव हरि केरा ॥
इंद्री कहा करै विश्राम । सो कहँ गए जो कहते राम ॥
सो कहँ गए होत अज्ञान । होय मृतक ओहि पदहिं समान॥
रामानंद रामरस छाके। कह कवीर हम कहि कहि थाके॥१२६॥
कहो हो अंवर कासौं लागा । चेतनहारे चेतु सुभागा ॥
अंवर मध्ये दीसै तारा । एक चेतै दूजे चेतवनहारा ॥
जेहि खोजै सो उहवाँ नाहीं । सोतो आहि अमर पद माहीं॥
कह कवीर पद वूझै सोई । मुख हृदया जाकर एक होई॥१२७॥
वावू ऐसो है संसार तिहारो, है यह कलि व्यवहारा ।
को अव अनख सहै प्रति दिनको नाहिंन रहन हमारा ॥
सुमृत सुभाव सवै कोइ जानै हृदया तत्त न वूझै ।
निरजिव आगे सरजिव थापै लोचन कछुव न सूझै ॥
तजि अमृत विख काहें अचवो गाँठी वाँधो खोटा ।
चोरन को दिन पाट सिंहासन साहुहिं कीन्हो ओटा ॥
कह कवीर झूठो मिलि झूठा ठगही ठग व्यवहारा ।
तीन लोक भरपूर रह्यो है नाहीं है पतियारा ॥१२८॥
नैनन आगे ख्याल घनेरा ।
अरध उरध विच लगन लगी है क्या संध्या रैन सवेरा ।
जेहि कारन जग भरमत डोलैं सो साहव घट लियो वसेरा ॥

पूरि रह्यो असमान धरनि में जित देखो तित साहब मेरा ।
तसवी एक दिया मेरे साहब कह कबीर दिलही विच फेरा॥१२९॥
जागु रे जिव जागु रे अब क्या सोवै जिय जागु रे ।
चोरन को डर बहुत रहत है ,उठि उठि पहिरे लागु रे ॥
ररौ खोलि ममो करि भीतर ज्ञान रतन करि जागु रे ।
ऐसे जो अजरायल मारै मस्तक आवै भागु रे ॥
ऐसी जागनि जो कोइ जागै तो हरि देह सोहागु रे ।
कह कबीर जागोई चहिए क्या गिरही बैरागु रे ॥१३०॥

उपदेश और चेतावनी

ोलना कासों बोलिए भाई । बोलत ही सब तत्व नसाई ॥
ोलत बोलत बाढु विकारा । सो बोलिए जो परे बिचारा ॥
मेले जो संत वचन दुइ कहिए । मिले असंत मौन ह्वै रहिए ॥
ंडित सों बोलिय हितकारी । मूरख सों रहिए झख मारी ॥
नह कबीर आधा घट डोलै । पूरा होय विचार लै बोलै ॥१३१॥
नरिहो रे तन का ले करि हो । प्रान छुटे बाहर लै धरिहो ॥
नाय बिगुरचन अनबन बाटी । कोइ जारै कोइ गाड़ै माटी ॥
नारै हिंदु तुरुक लै गाड़ै । ई परपंच दुनो घर 'छाँड़ै ॥
नर्म फाँस जग जाल पसारा । ज्यों धीमर मछरी गहि मारा ॥
राम बिना नर ह्वै हो कैसा । बाट माँझ गोबरौरा जैसा ॥
नह कबीर पाछे पछतैहो । या घर सों जब वा घर जैहो॥१३२॥

चलत का टेढ़े टेढ़े टेढ़े ।

दसो द्वार नरक में बूड़े दुरगंधों के बेढ़े ॥
फूटे नैन हृदय नहिं सूझै मति एकौ नहिं जानी ।
काम क्रोध तृष्णा के मारे बूड़ि मुए बिनु पानी ॥

जारे देह भसम ह्वै जाई गाड़े माटी खाई।
सूकर स्वान काग के भोजन तन की यहै वड़ाई॥
चेति न देखु मुगुध नर वौरे तोते काल न दूरी।
कोटिन जतन करै वहुतेरे तन कि अवस्था धूरी॥
वालू के घरवा में वैठे चेतत नाहिं अयाना।
कह कवीर एक राम भजे विन वूड़े वहुत सयाना॥१३३॥

फिरहु का फूले फूले फूले।
जो दस मास उरध मुख भूले सो दिन काहें भूले।
ज्यों माखी स्वादै लहि विहरै सोचि सोचि धन कीन्हा।
त्यौं ही पीछे लेहु लेहु करि भूत रहनि कछु दीन्हा॥
देहरी लौं वर नार संग है आगे संग सहेला।
मृतक थान संग दियो खटोला फिरि पुनि हंस अकेला॥
जारे देह भसम ह्वै जाई गाड़े माटी खाई।
काँचे कुंभ उदक ज्यों भरिया तन की इहै वड़ाई॥
राम न रमसि मोह में माते परयो काल वस कूवा।
कह कवीर नर आप वँधायो ज्यों नलिनी भ्रम सूवा॥१३४॥

अल्लह राम जीव तेरी नाईं। जन पर मेहर करहु तुम साईं॥
क्या मूँड़ो भीमहिं सिर नाए क्या जल देह नहाए।
खून करै मसकीन कहावै गुन को रहै छिपाए॥
क्या भो उज्जू मज्जन कीने क्या मसजिद सिर नाए।
हृदये कपट नेवाज गुजारै का भो मक्का जाए॥
हिंदू एकादशि चौविस रोजा मुसलिम तीस वनाए।
वारह मास कहो क्यों टारो ये केहि माहँ समाए॥
पूरव दिसि में हरि को वासा पच्छिम अलह मुकामा।
दिल में खोज दिले में देखो यहै करीमा रामा॥
जो खोदाय मसजिद में वसतु है और मुलुक केहि केरा।
तीरथ मूरत राम निवासी दुइ महँ किनहुँ न हेरा॥

वेद किताव कौन किन भूठा भूठा जो न विचारै।
सव घट माहिं एक करि लेखै भै दूजा करि मारै॥
जेते औरत मर्द उपाने सो सव रूप तुम्हारा।
कविर पोंगड़ा अलह राम का सो गुरु पीर हमारा॥१३५॥
भँवर उड़े वक वैठे आय। रैनि गई दिवसौ चलि जाय॥
हल हल काँपै वाला जीव। ना जानै का करिहै पीव॥
काँचे वासन टिकै न पानी। उड़िगे हंस काय कुम्हिलानी॥
काग उड़ावत भुजा पिरानी। कह कवीर यह कथा सिरानी॥१३६
राम नाम का सेवहु वीरा दूर नहीं दुरआसा हो।
और देव का पूजहु वौरे ई सव भूठी आसा हो॥
ऊपर के उजरे कह भो वौरे भीतर अजहूँ कारो हो।
तन के वृद्ध कहा भौ वौरे ई मन अजहूँ वारो हो॥
मुख के दाँत गए का वौरे अंदर दाँत लोहे के हो।
फिर फिर चना चवाउ विपय के काम क्रोध मद लोभ हो॥
तन की सक्ति सकल घट गयऊ मनहिं दिलासा दूनी हो।
कहै कवीर सुनो हो संतो सकल सयानप ऊनी हो॥१३७॥
राम नाम विनु राम नाम विनु मिथ्या जन्म गँवाई हो।
सेमर सेइ सुवा जो जहुँड़े ऊन परे पछिताई हो॥
जैसे महिप गाँठि अरथ दे घरहुँ कि अकिल गँवाई हो।
स्वादे उदर भरत धौं कैसे ओसै प्यास न जाई हो॥
द्रव्य क हीन कौन पुरुपारथ मनहीं माहिं तवाई हो।
गाँठी रतन मरम नहिं जानेहु पारख लीन्हीं छोरी हो॥
कह कवीर एहि अवसर वीते रतन न मिलै वहोरी हो॥१३८॥
जो तैं रसना राम न कहि है। उपजत विनसत भरमत रहि है॥
जस देखी तरुवर की छाया। प्रान गए कहु काकी माया॥
जीवत कछु न किए परमाना। मुए कर्म कहु काकर जाना॥
अंत काल सुख कोउ न सोवै। राजा रंक दोऊ मिल रोवै॥

हंस सरोवर कमल सरीरा । राम रसायन पिवै कबीरा ॥१३९॥

सोच समझ अभिमानी, चादर भई है पुरानी ।
टुकड़े टुकड़े जोड़ि जुगत सों, सी के अँग लपटानी ।
कर डारी मैली पापन सों, लोभ मोह में सानी ।
ना एहि लग्यो ज्ञान कै साबुन, ना धोई मल पानी ।
सारी उमिर ओढ़त बीती, भली बुरी नहिं जानी ॥
संका मान जान जिय अपने, यह है चीज बिरानी ।
कह कबीर धरि राखु जतन से, फेर हाथ नहीं आनी ॥१४०॥

बहुर नहिं आवना या देस ।
जो जो गए बहुर नहिं आए, पठवत नाहिं सँदेस ॥
सुर नर मुनि औ पीर औलिया देवी देव गनेस ।
धरि धरि जनम सबै भरमे हैं ब्रह्मा विष्णु महेस ॥
जोगी जंगम और संन्यासी दीगंबर दरवेस ।
चुंडित मुंडित पंडित लोई सरग रसातल सेस ॥
ज्ञानी गुनी चतुर औ कविता राजा रंक नरेस ।
कोइ रहीम कोइ राम बखानै कोइ कहै आदेस ॥
नाना भेख बनाया सबै मिलि ढूँढि फिरे चहुँ देस ।
कहैं कबीर अंत ना पैहो बिन सतगुरु उपदेस ॥१४१॥

वा दिन की कछु सुध कर मन माँ ।
जा दिन लै चलु लै चलु होई, ता दिन संग चलै नहिं कोई ॥
तात मात सुत नारी रोई, माटी के संग दियो समोई ।
सो माटी काटेगी तन माँ ।
उलफत नेहा कुलफत नारी । किसकी बीबी किसकी बाँदी ।
किसका सोना किसकी चाँदी । जा दिन जम ले चलिहै बाँदी ॥
डेरा जाय परै वहि बन माँ ।
टाँड़ा तुमने लादा भारी । बनिज किया पूरा व्योपारी ।
जूआ खेला पूँजा हारी । अब चलने की भई तयारी ॥

वेद किताव कौन किन झूठा झूठा जो न विचारै।
सव घट माहिं एक करि लेखै भै दूजा करि मारै॥
जेते औरत मर्द उपाने सो सव रूप तुम्हारा।
कविर पोंगड़ा अलह राम का सो गुरु पीर हमारा॥१३५॥
भँवर उड़े वक वैठे आय। रैनि गई दिवसौ चलि जाय॥
हल हल काँपै वाला जीव। ना जानै का करिहै पीव॥
काँचे वासन टिकै न पानी। उड़िगे हंस काय कुम्हिलानी॥
काग उड़ावत भुजा पिरानी। कह कवीर यह कथा सिरानी॥१३६
राम नाम का सेवहु वीरा दूर नहीं दुरआसा हो।
और देव का पूजहु वैारे ई सव झूठी आसा हो॥
ऊपर के उजरे कह भो वोरे भीतर अजहूँ कारो हो।
तन के वृद्ध कहा भै वैारे ई मन अजहूँ वारो हो॥
मुख के दाँत गए का वैारे अंदर दाँत लोहे के हो।
फिर फिर चना चवाउ विपय के काम क्रोध मद लोभ हो॥
तन की सक्ति सकल घट गयऊ मनहिं दिलासा दूनी हो।
कहै कवीर सुनो हो संतो सकल सयानप ऊनी हो॥१३७॥
राम नाम विनु राम नाम विनु मिथ्या जन्म गँवाई हो।
सेमर सेइ सुवा जो जहुँड़े ऊन परे पछिताई हो॥
जैसे महिप गाँठि अरथ दे घरहुँ कि अकिल गँवाई हो।
स्वादे उदर भरत धैां कैसे ओसै प्यास न जाई हो॥
द्रव्य क हीन कौन पुरुपारथ मनहीं माहिं तवाई हो।
गाँठी रतन भरम नहिं जानेहु पारख लीन्हीं छोरी हो॥
कह कवीर यहि अवसर वीते रतन न मिलै वहोरी हो॥१३८॥
जो तैं रसना राम न कहि है। उपजत विनसत भरमत रहि है॥
जस देखी तरुवर की छाया। प्रान गए कहु काकी माया॥
जीवत कछु न किए परमाना। मुए कर्म कहु काकर जाना॥
अंत काल सुख कोउ न सोवै। राजा रंक दोऊ मिल रोवैं॥

हंस सरोवर कमल सरीरा। राम रसायन पिवै कबीरा ॥१३९॥

सोच समझ अभिमानी, चादर भई है पुरानी।
टुकड़े टुकड़े जोड़ि जुगत सों, सी के अँग लपटानी।
कर डारी मैली पापन सों, लोभ मोह में सानी।
ना एहि लग्यो ज्ञान कै साबुन, ना धोई मल पानी।
सारी उमिर ओढ़त बीती, भली बुरी नहिं जानी॥
संका मान जान जिय अपने, यह है चीज विरानी।
कह कबीर धरि राखु जतन से, फेर हाथ नहीं आनी ॥१४०॥

बहुर नहिं आवना या देस।
जो जो गए बहुर नहिं आए, पठवत नाहिं सँदेस॥
सुर नर मुनि औ पीर औलिया देवी देव गनेस।
धरि धरि जनम सबै भरमे हैं ब्रह्मा विष्णु महेस॥
जोगी जंगम और संन्यासी दीगंबर दरवेस।
चुंडित मुंडित पंडित लोई सरग रसातल सेस॥
ज्ञानी गुनी चतुर औ कविता राजा रंक नरेस।
कोइ रहीम कोइ राम बखानै कोइ कहै आदेस॥
नाना भेख बनाया सबै मिलि ढूँढि फिरे चहुँ देस।
कहैं कबीर अंत ना पैहो बिन सतगुरु उपदेस ॥१४१॥

वा दिन की कछु सुध कर मन माँ।
जा दिन लै चलु लै चलु होई, ता दिन संग चलै नहिं कोई॥
तात मात सुत नारी रोई, माटी के संग दियो समोई।
सो माटी काटेगी तन माँ।
उलफत नेहा कुलफत नारी। किसकी बीबी किसकी बाँदी।
किसका सोना किसकी चाँदी। जा दिन जम ले चलिहै बाँदी॥
डेरा जाय परै वहि बन माँ।
टाँड़ा तुमने लादा भारी। बनिज किया पूरा ब्योपारी।
जूआ खेला पूँजा हारी। अब चलने की भई तयारी॥

जा कोइ गुरु से नेह लगाई। बहुत भाँति सोई सुख पाई।
माटी में काया मिलि जाई। कह कवीर आगे गोहराई॥
साँच नाम साहेब को सँग माँ॥१४२॥

ना जानें तेरा साहेव कैसा।
महजिद भीतर मुल्ला पुकारै क्या साहेव तेरा बहिरा है।
चिउँटी के पग नेवर बाजै सो भी साहव सुनता है॥
पंडित होय के आसन मारै लंबी माला जपता है।
अंतर तेरे कपट कतरनी सो भी साहव लखता है॥
ऊँचा नीचा महल बनाया गहरी नेव जमाता है।
चलने का मनसूवा नाहीं रहने को मन करता है॥
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी गाड़ि जमीं में धरता है।
जेहि लहना है सो लै जैहै पापी वहि वहि मरता है॥
सतवंती को गजी मिलै नहिं वेश्या पहिरे खासा है।
जेहि घर साधू भीख न पावै भँडुवा खात बतासा है॥
हीरा पाय परख नहिं जानै कौड़ी परखन करता है।
कहत कवीर सुनो भाइ साधो हरि जैसे को तैसा है॥१४३॥
मुखड़ा क्या देखै दरपन में, तेरे दया धरम नहिं तन में।
आम की डार कोइलिया बोलै सुवना बोलै बन में॥
घरवारी तो घर में राजी फक्कड़ राजी बन में।
ऐंठी धोती पाग लपेटी तेल चुआ जुलफन में॥
गली गली की सखी रिझाई दाग लगाया तन में।
पाथर की इक नाव बनाई उतरा चाहै छिन में।
कहत कवीर सुनो भाई साधो वे क्या चढ़िहैं रन में॥१४४
मोरे जियरा बड़ा अँदेसवा, मुसाफिर जैहो कौनी ओर।
मोह का सहर कहर नर नारी दुइ फाटक घन घोर॥
कुमती नायक फाटक रोकै, परिहो कठिन झँझोर।
संसय नदी अगाड़ी बहती, विषम धार जल जोर॥

क्या मनुवाँ तू गाफिल सोवै, इहाँ मोर और तोर।
निसि दिन प्रीति करो साहब से, नाहिन कठिन कठोर॥
काम दिवाना क्रोध है राजा, बसै पचीसो चोर।
सत्त पुरुख इक बसै पच्छिम दिसि, तासों करो निहोर॥
आवै दरद राह तोहि लावै तब पैहो निज ओर॥
उलटि पाछिलो पैंड़ा पकड़ो पसरा मना बटोर।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो तब पैहो निज ठोर॥१४५॥
पीले प्याला हो मतवाला प्याला नाम अमी-रस का रे।
बालापन सब खेल गँवाया तरुन भया नारी बस का रे॥
बिरध भया कफ बाय ने घेरा खाट पड़ा न जाय खसका रे।
नाभि कँवल बिच है कस्तूरी जैसे मिरग फिरै बन का रे॥
बिन सतगुरु इतना दुख पाया वैद मिला नहिं इस तन का रे।
माता पिता बंधु सुत तिरिया संग नहीं कोइ जाय सका रे॥
जब लग जीवै गुरु गुन गाले धन जोबन है दिन दस का रे॥
चौरासी जो उबरा चाहै छोड़ कामिनी का चसका रे॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो नख सिख पूर रहा बिसका रे।१४६।

नाम सुमिर, पछतायगा।

पापी जियरा लोभ करत है आज काल उठि जायगा॥
लालच लागी जनम गँवाया काया भरम भुलायगा।
धन जोबन का गरब न कीजै कागद ज्यों गलि जायगा॥
जब जम आइ केस गहि पटकै ता दिन कछु न बसायगा।
सुमिरन भजन दया नहिं कीन्ही तो मुख चोटा खायगा॥
धरम राय जब लेखा माँगे क्या मुख लेके जायगा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो साध संग तरि जायगा॥१४७॥

मेरा तेरा मनुआँ कैसे इक होइ रे।

मैं कहता हौं आँखिन देखी, तू कागद की लेखी।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राख्यो अरुझाई रे॥

मैं कहता तू जागत रहियो तू रहता है सोइ रे।
मैं कहता निरमोही रहियो तू जाता है मोहि रे॥
जुगन जुगन समझावत हारा कहा न मानत कोइ रे।
तू तो रंडी फिरे बिहंडी सब धन डारे खोइ रे॥
सतगुरु धारा निरमल बाहै वामें काया धोइ रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो तबही वैसा होइ रे॥१४८॥

समझ देख मन मीत पियरवा आसिक होकर सोना क्या रे।
रूखा सूखा गम का टुकड़ा फीका और सलोना क्या रे॥
पाया हो तो दे ले प्यारे पाय पाय फिर खोना क्या रे।
जिन आँखिन में नींद घनेरी तकिया और बिछौना क्या रे।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सीस दिया तब रोना क्या रे।१४९।

जाके नाम न आवत हिए।
काह भए नर कासि बसे से का गंगा-जल पिए॥
काह भए नर जटा बढ़ाए का गुदरी के लिए।
काह भयो कंठी के बाँधे काह तिलक के दिए॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो नाहक ऐसे जिए॥१५०॥

गुरु से कर मेल गँवारा। का सोचत बारंबारा॥
जब पार उतरना चाहिए। तब केवट से मिल रहिए॥
जब उतरि जाय भव पारा। तब छूटै यह संसारा॥
जब दरसन देखा चहिए। तब दरपन माँजत रहिए॥
जब दरपन लागत काई। तब दरसन कहाँ ते पाई॥
जब गढ़ पर बजी बधाई। तब देखि तमासे जाई॥
जब गढ़ बिच होत सकेला। तब हंसा चलत अकेला।
कहैं कबीर देख मन करनी। वाके अंतर बीच कतरनी॥
कतरनी कै गाँठ न छूटै। तब पकरि पकरि जम लूटै।१५१।

चल चल रे भौंरा कँवल पासा।
तेरी भौंरी बोलै अति उदास॥

वह करत चोज वारही वार।
तन वन फूल्यौ कस डार डार ॥
है लियो वनस्पति केर भोग।
कुछ सुख न भयो तन चढ्यो रोग ॥
दिवस चार के सुरंग फूल।
तेहि लखि भारा रह्यो भूल ॥
वनस्पति जव लागै आग।
तव भौंरा कहँ जैहो भाग ॥
पुहुप पुराने गए सूख।
लगी भँवर को अधिक भूख ॥
उड़ न सकत वल गयो छूट।
तव भौंरा रोवै सीस कूट ॥
चहुँ दिसि चितवै मुँह पराय।
ले चल भौंरी सिर चढ़ाय ॥
कहैं कवीर ये मन के भाव।
नाम विना सव जम के दाँव ॥१५२॥

भजु मन जीवन नाम सवेरा।
सुंदर देह देख निज भूलो झपट लेत जस वाज,वटेरा।
यह देही को गरव न कीजै उड़ पंछी जस लेत वसेरा ॥
या नगरी में रहन न पैहो कोइ रह जाग न दूख वनेरा।
कहैं कवीर सुनो भाई साधो मानुख जनम न पैहो फेरा ॥१५३॥

ऐसी नगरिया में केहि विध रहना।
नित उठ कलंक लगावै सहना ॥
एकै कुआँ पाँच पनिहारी।
एकै लेजुर भरै नौ नारी ॥
कट गया कुआँ विनस गई वारी।
विलग भईं पाँचो पनिहारी ॥

कहैं कबीर नाम बिनु बेरा ।
उठ गया हाकिम लुट गया डेरा ॥१५४॥

का नर सोवत मोह निसा में जागत नाहिं कूच नियराना ।
पहिल नगारा सेत के समये दूजे बैन सुनत नहिं काना ॥
तीजे नैन दृष्टि नहिं सूझै चौथे आन गिरा परवाना ।
मात पिता कहना नहिं मानै विप्रन सों कीन्हा अभिमाना ॥
धरम की नाव चढ़न नहि जानै अब जमराज ने भेद बखाना ।
होत पुकार नगर कसबे में रैयत लोग सबै अकुलाना ॥
पूरन ब्रह्म की होत तयारी अंत भवन बिच प्रान लुकाना ।
प्रेम नगर में हाट लगतु है जहँ रँगरेजवा है सत वाना ।
कह कबीर कोइ काम न ऐहै माटी के देहिया माटि मिल जाना १५५॥

रे दिल गाफिल गफलत मत कर एक दिन जम आवेगा ।
सौदा करने या जग आया, पूँजी लाया मूल गँवाया ॥
प्रेम-नगर का अंत न पाया, ज्यों आया त्यों जावेगा ।
सुन मेरे साजन सुन मेरे मीता, या जीवन में क्या क्या कीता ॥
सिर पाहन का बोझा लीता, आगे कौन छुड़ावेगा ।
परलि पार मेरा मीता खड़िया, उस मिलने का ध्यान न धरिया ॥
टूटी नाव ऊपर जा बैठा, गाफिल गोता खावेगा ।
दास कबीर कहैं समुझाई, अंतकाल तेरो कौन सहाई ॥
चला अकेला संग न कोई, कीया अपना पावेगा ॥१५६॥

सुमिरो सिरजनहार, मनुख तन पाय के ।
काहे रहो अचेत कहा यह अवसर पैहो ।
फिर नहि मानुख जनम बहुरि पीछे पछतैहो ॥
लख चौरासी जीव जंतु में मानुख परम अनूप ।
सो तन पाय न चेतहू कहा रंक का भूप ॥
गरभ वास में रहो कहो मैं भजिहौं तोहीं ।
निसि दिन सुमिरौं नाम कष्ट से काढ़ो मोहीं ॥

इक मन इक चित ह्वै रहों रहों नाम लव लाय।
पलक न तुमें विसारिहौं यह तन रहै कि जाय॥
इतना कियो करार तवै प्रभु वाहर कीना।
विसर गयो वह ठाँव भयो माया आधीना॥
भूली वात उदर की यहाँ तो मत भइ आन।
वारह वरस ऐसही वीते डोलत फिरत अजान॥
विखया पवन समान तवै ज्वानी मदमाते।
चलत निहारै छाँह तमक के वोलै वातें॥
चोवा चंदन लाइ के पहिरे वसन वनाय।
गलियों में डोलत फिरै परतिय लख मुसुकाय॥
गा तरुनापा वीत वुढ़ाया आइ तुलाना।
कंपन लागे सीस चलत दोउ पाँव पिराना॥
नैन नासिका चूवन लागे करन सुनै नहिं वात।
कंठ माहिं कफ घेरि लियो है विसर गए सव नात॥
मात पिता सुत नारि कहौ काके सँग लागी।
तन मन भजि लो नाम काम सव होयँ सुभागी॥
नहिं तो काल गरासिहै परिहौ जम के जार।
विन सतगुरु नहिं वाँचिहौ हिरदय करहु विचार॥
सुफल होय यह देह नेह सतगुरु से कीजै।
मुक्ती मारग यही संत चरनन चित दीज॥
नाम जपो निरभय रहो अंग न व्यापै पीर।
जरा मरन वहु संसय मेटै गावैं दास कवीर॥१५८॥
तेरी गठरी में लागे चोर, वटोहिया का रे सोवै।
पाँच पचीस तीन हैं चोरवा, यह सव कीन्हा सोर॥
जाग सवेरा वाट अनेरा, फिर नहिं लागै जोर।
भव सागर एक नदी वहत है, विन उतरे जीव वोर॥
कहैं कवीर सुनो भाइ साधो, जागत कीजै भोर॥१५८॥

का सोवो सुमिरन की वेरिया।
जिन सिरजा तिन की सुधि नाहीं,
भकत फिरो भकभलनि भलरिया।
गुरु उपदेस सँदेस कहत हैं,
भजन करो चढ़ि गगन अटरिया।
नित उठि पाँच पचिसकै भगरा,
व्याकुल मोरी सुरति सुँदरिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
भजन विना तोरी सूनी नगरिया॥१५९॥

वागों ना जा रे तेरे काया में गुलजार। करनी क्यारी बोइ के रहनी करु रखवार। दुरमति काग उड़ाइ के देखै अजब वहार। मन माली परवोधिए करि संजम की बार। दया पौद सूखै नहीं छमा सींचि जल ढार। गुल और चमन के वीच में फूला अजब गुलाब। मुक्ति कली सतमाल की पहिरूँ गूँथि गलहार। अष्ट कमल से ऊपजे लीला अगम अपार। कह कबीर चित चेत के आवागवन निवार॥१६०॥

सुमिरन विन गोता खाओगे।
मुट्ठी बाँधि गर्भ से आए हाथ पसारे जाओगे।
जैसे मोती भरत ओस के वेर भए भर जाओगे॥
जैसे हाट लगावै हटवा सौदा विन पछताओगे।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सौदा लेकर जाओगे॥१६१॥

अरे मन समभ के लादु लदनियाँ।
काहे क टट्टुवा काहे क पाखर काहे क भरी गौनियाँ।
मन कै टट्टुवा सुरति कै पाखर भर पुन पाप गौनियाँ॥
घर के लोग जगाती लागे छीन लेयँ करधनियाँ।
सौदा करु तो यहि करु भाई आगे हाट न बनियाँ॥

पानी पी तो यहीं पी भाई आगे देस निपनियाँ ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो सत्त नाम का बनियाँ ॥१६२॥

दिवाने मन भजन बिना दुख पैहो ।
पहिले जनम भूत का पैहो सात जनम पछितैहो ।
काँटा पर के पानी पैहो प्यासन ही मरि जैहो ॥
दूजा जनम सुवा का पैहो बाग बसेरा लइहो ।
टूटे पंख बाज मँड़राने अधफड़ प्रान गँवइहो ॥
बाजीगर के बानर होइहो लकड़िन नाच नचैहो ।
ऊँच नीच से हाथ पसरिहो माँगे भीख न पैहो ॥
तेली के घर बैला होइहो आँखिन ढाँप ढँपैहो ।
कोस पचास घरै में चलिहो बाहर होन न पैहो ॥
पँचवाँ जनम ऊँट कै पैहो बिन तौले बोझ लदैहो ।
बैठे से तो उठै न पैहो घुरच घुरच मरि जैहो ॥
धोबी घर के गदहा होइहौ कटी घास ना पैहो ।
लादी लादि आपु चढ़ि बैठै लै घाटे पहुँचैहो ॥
पच्छी माँ तो कौवा होइहो करर करर गुहरैहो ।
उड़ि के जाइ बैठि मैले थल गहिरे चोंच लगैहो ॥
सत्त नाम की टेर न करिहौ मन ही मन पछितैहो ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो नरक निसाही पैहो ॥१६३॥

साधो यह तन ठाठ तँबूरे का ।
ऐंचत तार मरोरत खूँटी निकसत राग हजूरे का ।
टूटे तार बिखर गई खूँटी हो गया धूरम धूरे का ॥
या देही का गरब न कीजै उड़ि गया हंस तँबूरे का ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो अगम पंथ कोइ सूरे का॥१६३॥

गगन घटा घहरानी, साधो गगन घटा घहरानी ।
पूरब दिसि से उठी बदरिया रिमझिम बरसत पानी ।
आपन आपन मेंड़ सम्हारो बह्यो जात यह पानी ॥

मन के बैल सुरत हरवाहा जोत खेत निरवानी।
दुविधा दूब छोल करु बाहर बोव नाम की धानी॥
जोग जुगुत करि करु रखवारी चरन जाय मृगधानी।
बाली झार कूट घर लावै सोई कुसल किसानी॥
पाँच सखी मिल कीन रसोइया एक से एक सयानी।
दूनों थार बराबर परसे जेवैं मुनि अरु ज्ञानी॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो यह पद है निरबानी।
जो या पद को परिचै पावे ताको नाम बिज्ञानी॥१६५॥

सकुच और शिक्षा

नैहर में दाग लगाय आई चुनरी। ऊ रँगरेजवा के मरम न जानै नहिं मिलै धोबिया कवन करै उजरी। तन कै कूँड़ी ज्ञान कै सउँदन साबुन महँग बिकाय या नगरी। पहिरि ओढ़ि के चली ससुररिया गाँवाँ के लोग कहैं बड़ी फुहरी। कहत कबीर सुनो भाई साधो बिन सतगुरु कबहूँ नहिं सुधरी॥ १६६॥

मोरी चुनरी में परि गयो दाग पिया।
पाँच तत्त कै बनी चुनरिया सोरह सै बँद लागे जिया।
यह चुनरी मोरे मैके ते आई ससुरे में मनुआ खोय दिया॥
मलि मलि धोई दाग न छूटै ज्ञान को साबुन लाय पिया।
कहत कबीर दाग तब छुटि है जब साहब अपनाय लिया।१६७।

पिया ऊँची रे अटरिया, तोरी देखन चली।
ऊँची अटरिया जरद किनरिया लगी नाम की डोरिया।
चाँद सुरज सम दियना बरतु है ता बिच भूली डगरिया॥
पाँच पचीस तीन घर बनिया मनुआँ है चौधरिया।
मुंशी है कोतवाल ज्ञान को चहुँ दिसि लगी बजरिया॥

आठ मरातिव दस दरवाजा नौ में लगी किवरिया।
खिरकि वैठ गोरी चितवन लागी उपराँ झाँप झापरिया॥
कहत कवीर सुनो भाई साधो गुरु चरनन वलिहरिया।
साध संत मिलि सौदा करिहैं झीखैं मुरुख अनरिया॥१६८॥

रतन जतन करु प्रेम कै तत धरु सतगुरु इमरित नाम जुगत कै राखव रे। वावा घर रहलौं ववुई कहौलों सैंयाँ घरं चतुर सयान चेतव घरवा आपन रे। खेलत रहलौं मैं सुपली मउनिया औचक आए लेनिहार चलव केसिया झार रे। यह तो अँधेरी रात मुसल चोरवा थाती सैयाँ के वान कुवान सुतैलैं गोड़वा तान रे। चुन चुन कलिया मैं सेजिया विछौलौं विना रे पुरुखवा कै नारि झँखेले दिनवाँ रात रे। ताल झुराय गैलैं फूल कुम्हिलाय गैलैं हंसा उड़त अकेल कोई नहिं देखल रे। अव का झंखेलू नारि हिए वैठलू मन मारि एहि वाटे मोतिया हेराइल रे। दास कवीर इहै गावैं निरगुनवाँ अव की उहवाँ जाव तो फिर नहिं आउव रे॥१६९॥

का लै जैवो ससुर घर ऐवो।
गाँव के लोग जव पूछन लगिहैं तव हम कारे वतैवो॥
खोल घुँघट जव देखन लगि हैं तव हम वहुत लजैवो।
कहत कवीर सुनो भाई साधो फिर सासुर नहिं पैवो॥१७०॥

साँईं मोर वसत अगम पुरवाँ जहँ गमन हमार।
आठ कुआँ नव वावड़ी सोरह पनिहार॥
भरल वयलवा ढरकि गए रे धन ठाढ़ी मन मार।
छोट मोट डँड़िया चँदन कै हो, छोट चार कहार॥
जाय उतरिहैं वाही देसवाँ हो, जहँ कोइ न हमार।
ऊँची महलिया साहव कै हो लगी विखमी वजार॥
पाप पुन्न दोउ वनियाँ हो, हीरा लाल अपार।

कह कबीर सुन साइयाँ मोर साहिब देस ॥
जो गए सो बहुरे ना, को कहत सँदेस ॥१७१॥

कौन रँगरेजवा रँगै मोर चुँदरी । पाँच तत्त कै बनी चुँदरिया चुँदरी पहिरि के लगै बड़ी सुँदरी । टेकुआ तागा करम कै धागा गरे बिच हरवा हाथ बिच मुँदरी । सोरहो सिंगार बतीसो अभरन पिय पिय रटत पिया सँग घुमरी । कहत कबीर सुनो भाइ साधो बिन सतसंग कवन बिधि सुधरी ।१७२।

ये अँखियाँ अलसानी, पिय हो सेज चलो ।
खंभा पकरि पतंग अस डोलै बोलै मधुरी बानी ।
फूलन सेज बिछाइ जो राख्यो पिया बिना कुम्हलानी ॥
धीरे पाँव धरो पलँगा पर जागत ननद जिठानी ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो लोक लाज बिछलानी ॥१७३॥

जागु पियारी अब का सोवै । रैन गई दिन काहे को खोवै ॥
जिन जागा तिन मानिक पाया । तैं बौरी सब सोय गँवाया ॥
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी । कबहुँ न पिय की सेज सँवारी ॥
तैं बौरी बौरापन कीन्हो । भर जोबन पिय अपन न चीन्हो ॥
जाग देख पिय सेज न तेरे । तोहि छाँड़ि उठ गए सबेरे ॥
कह कबीर सोई धुन जागे । शब्द बान उर अंतर लागे ॥१७४॥

आयो दिन गौने कै हो मन होत हुलास ।
पाँच भीट के पोखरा हो जामें दस द्वार ॥
पाँच सखी बैरिन भई हो, कस उतरब पार ।
छोट मोट डोलिया चँदन कै हो लागे चार कहार ॥
डोलिया उतारैं बीच बनवाँ हो, जहँ कोइ न हमार ।
पइयाँ तोरी लागौं कहरवा हो, डोली धर छिन बार ॥
मिल लेउँ सखिया सहेलर हो, मिलौं कुल परिवार ।
दास कबीर गावैं निरगुन हो, साधो करि लो विचार ॥
नरम गरम सौदा करि लो हो, आगे हाट न बजार ॥१७५॥

खेल ले नैहरवाँ दिन चारि।
पहिली पठौनी तीन जन आए नौवा वाम्हन वारि॥
वावुल जी मैं पैयाँ तोरी लागों अव की गवन दे टारि।
दुसरी पठानी आपै आप लेके डोलिया कहार॥
धरि वहियाँ डोलिया वैठारिन कोउ न लागै गोहार।
ले डोलिया जाइ वन उतारिन कोइ नहिं संगी हमार॥
कहैं कवीर सुनो भाइ साधो इक घर हैं दस द्वार॥१७६॥

डँड़िया फँदाय धन चालु रे, मिलि लेहु सहेली।
दिना चारि को संग है फिर अंत अकेली॥
दिन दस नैहर खेलिए सासुर निज भरना।
वहियाँ पकरि पिया ले चले तव उजुर न करना॥
इक अँधियारी कोठरी, दूजे दिया न वाती।
दें उतारि तेही धरा जहँ संग न साथी॥
इक अँधियारी कुइयाँ दूजे लेजुर टूटी।
नैन हमारे अस ढुर, मानों गागर फूटी॥
दास कवीरा यों कहै, जग नाहिन रहना।
संगी हमारे चलि गए हमहूँ को चलना॥१७७॥

करो जतन सखी साँईं मिलन की।
गुड़िया गुड़वा सूप सुपेलिया, तज दे वुध लरिकैयाँ खेलन की॥
देवता पित्तर भुइयाँ भवानी, यह मारग चौरासी चलन की।
ऊँचा महल अजव रँग रँगला साँईं सेज वहाँ लागी फुलन की॥
तन मन धन सव अरपन कर वहाँ सुरत सम्हारु परु पैयाँ सजन की।
कह कवीर निरभय होय हंसा कुंजी वता देउँ ताला खुलन की॥१७८॥

मिथ्याचार

दूर की बात कहौ दरवेसा । बादशाह है कौने भेसा ॥
कहाँ कूच कहँ करै मुकामा । कौन सुरति को करौं सलामा ॥
मैं मोहिं पूछौं मुसलमाना । लाल जरद का ताना बाना ॥
काजी काज करो तुम कैसा । घर घर जबै करावो वैसा ॥
बकरी मुरगी किन फुरमाया । किसके हुकुम तुम छुरी चलाया ॥
दरद न जानै पीर कहावै । बैता पढ़ि पढ़ि जग समुझावै ॥
कहै कबीर एक सय्यद कहावै । आप सरीखा जग कबुलावै ॥

दिन भर रोजा धरत हो रात हनत हो गाय ।
यह तो खून वह बंदगी क्योंकर खुसी खोदाय ॥१७९॥

ऐसा जोग न देखा भाई । भूला फिरै लिए गफिलाई ॥
महादेव का पंथ चलावै । ऐसो बड़ो महंत कहावै ॥
हाट बाट में लावै तारी । कच्चे सिद्धन माया प्यारी ॥
कब दत्तै मावासी तोरी । कब शुकदेव तोपची जोरी ॥
कब नारद बंदूक चलाया । व्यास देव कब बंब बजाया ॥
करहिं लड़ाई मति के मंदा । ई हैं अतिथि कि तरकस बंदा ॥
भए विरक्त लोभ मन ठाना । सोना पहिरि लजावैं बाना ॥
घोरा घोरी कीन्ह बटोरा । गाँव पाय जस चलै करोरा ॥

तिय सुंदरी न सोहई सनकादिक के साथ ।
कबहुँक दाग लगावई कारी हाँडी हाथ ॥१८०॥

जोग दत्ता सम करि जाना । ताको बान इंद्र नहिं जाना ॥
जटा तोरि पहिरावै सेली । योग युक्ति के गरब दुहेली ॥
आसन उड़ए कौन बड़ाई । जैसे काग चील्ह मँडराई ॥
जैसी भिस्त तैसी है नारी । राज पाट सब गिनै उजारी ॥
जैसे नरक तस चंदन माना । जस बाउर तस रहै सयाना ॥
लपसी लौंग गनै एक सारा । खाँड़े परिहरि फाँकै छारा ॥

एहि विचार ते वहि गयो गयो बुद्धि बल चित्त ।
दुइ मिलि एकै है रह्यो काहि बताऊँ हित्त ॥१८१॥

संतो देखउ जग बौराना ।
साँच कहो तो मारन धावै झूठे जग पतियाना ॥
नेमी देखे धरमी देखे प्रात करहिं असनाना ।
आतम मारि पखानहिं पूजैं उनमें कछू न ज्ञाना ॥
बहुतक देखे पीर औलिया पढ़ैं किताब कुराना ।
कै मुरीद तदबीर बतावै उनमें उहै गिआना ॥
आसन मारि डिंभ धरि बैठे मन में बहुत गुमाना ।
पीतर पाथर पूजन लागे तीरथ गरब भुलाना ॥
माला पहिरे टोपी दीन्हें छाप तिलक अनुमाना ।
साखी सबदै गावत भूले आतम खबरि न जाना ॥
कह हिंदू मोहिं राम पियारा तुरुक कहै रहिमाना ।
आपस में दोउ लरि लरि मूए मरम न काहू जाना ॥
घर घर मंत्र जे देत फिरत हैं महिमा के अभिमाना ।
गुरुवा सहित शिष्य सब बूड़े अंतकाल पछताना ॥
कहत कबीर सुनो हो संतो ई सब भरम भुलाना ।
केतिक कहैं कहा नहिं मानै आपहिं आप समाना ॥१८२॥

संतो राह दोऊ हम डीठा ।
हिंदू तुरुक हटा नहि माने स्वाद सबन को मीठा ॥
हिंदू बरत एकादसि साधै दूध सिंघाड़ा सेती ।
अन्न को त्यागै मन नहिं हटकै पारन करै सगोती ॥
रोजा तुरुक नमाज गुजारै बिसमिल बाँग पुकारै ।
उनको भिस्त कहाँ ते होइहै साँझे मुरगा मारै ॥
हिंदू दया मेहर को तुरुकन दोनों घट सों त्यागी ।
वै हलाल वै झटका मारैं आगि दुनों घर लागी ॥

मिथ्याचार

दर की वात कहो दरवेसा। वादशाह है कौने भेसा॥
कहाँ कूच कहँ करे मुकामा। कौन सुरति को करों सलामा॥
मैं मोहिं पूछों मुसलमाना। लाल जरद का ताना वाना॥
काजी काज करो तुम कैसा। घर घर जबै करावो वैसा॥
वकरी मुरगी किन फ़ुरमाया। किसके हुकुम तुम छुरी चलाया॥
दरद न जानै पीर कहावै। वैता पढ़ि पढ़ि जग समुझावै॥
कह कवीर एक सय्यद कहावै। आप सरीखा जग कवुलावै॥

दिन भर रोजा धरत हो रात हतत हो गाय।
यह तो खून वह वंदगी क्योंकर खुसी खोदाय॥१७९॥

ऐसा जोग न देखा भाई। भूला फिरै लिए गफिलाई॥
महादेव का पंथ चलावै। ऐसो वड़ो महंत कहावै॥
हाट वाट में लावै तारी। कच्चे सिद्धन माया प्यारी॥
कव दत्तै मावासी तोरी। कव शुकदेव तोपची जोरी॥
कव नारद वंदूक चलाया। व्यास देव कव वंव वजाया॥
करहिं लड़ाई मति के मंदा। ई हैं अतिथि कि तरकस वंदा॥
भए विरक्त लोभ मन ठाना। सोना पहिरि लजावैं वाना॥
घोरा घोरी कीन्ह वटोरा। गाँव पाय जस चले करोरा॥

तिय सुंदरी न सोहाई सनकादिक के साथ।
कवहुँक दाग लगावई कारी हाँडी हाथ॥१८०॥

सोग वधावा सम करि जाना। ताकी वात इंद्र नहिं जाना॥
जटा तोरि पहिरावै सेली। योग युक्ति कै गरभ दुहेली॥
आसन उड़ए कौन वड़ाई। जैसे काग चील्ह मँड़राई॥
जैसी भिस्त तैसी है नारी। राज पाट सव गिनै उजारी॥
जैसे नरक तस चंदन माना। जस वाउर तस रहै सयाना॥
लपसी लौंग गनै एक सारा। खाँड़ै परिहरि फाँकै छारा॥

एहि विचार ते वहि गयो गयो बुद्धि वल चित्त ।
दुइ मिलि एकै ह्वै रह्यो काहि वताऊँ हित्त ॥१८१॥

संतो देखउ जग बौराना ।
साँच कहो तो मारन धावै झूठे जग पतियाना ॥
नेमी देखे धरमी देखे प्रात करहिं असनाना ।
आतम मारि पखानहिं पूजैं उनमें कछू न ज्ञाना ॥
वहुतक देखे पीर औलिया पढ़ैं किताव कुराना ।
कै मुरीद तदवीर वतावै उनमें उहै गिआना ॥
आसन मारि डिंभ धरि वैठे मन में वहुत गुमाना ।
पीतर पाथर पूजन लागे तीरथ गरव भुलाना ॥
माला पहिरे टोपी दीन्हें छाप तिलक अनुमाना ।
साखी सवदै गावत भूले आतम खवरि न जाना ॥
कह हिंदू मोहिं राम पियारा तुरुक कहै रहिमाना ।
आपस में दोउ लरि लरि मूए मरम न काहू जाना ॥
घर घर मंत्र जे देत फिरत हैं महिमा के अभिमाना ।
गुरुवा सहित शिष्य सव वूड़े अंतकाल पछुताना ॥
कहत कवीर सुनो हो संतो ई सव भरम भुलाना ।
केतिक कहैं कहा नहिं मानै आपहिं आप समाना ॥१८२॥

संतो राह दोऊ हम डीठा ।
हिंदू तुरुक हटा नहि माने स्वाद सवन को मीठा ॥
हिंदू वरत एकादसि साधै दूध सिंघाड़ा सेती ।
अन्न को त्यागै मन नहि हटकै पारन करै सगोती ॥
रोजा तुरुक नमाज गुजारै विसमिल वाँग पुकारै ।
उनको भिस्त कहाँ ते होइहै साँझे मुरगा मारै ॥
हिंदू दया मेहर को तुरुकन दोनों घट सों त्यागी ।
वै हलाल वै झटका मारैं आगि दुनों घर लागी ॥

हिंदू तुरक की एक राह है सतगुरु इहै बताई ।
कहहिं कबीर सुनो हो संतो राम न कहेउ खोदाई ॥१८३

राम नाइ अंतर समुझा । हरि जाने बिन बिकल फिरै ।
जा मुख वेद गायत्री उचरै जासु बचन संसार तरै ॥
जाके पाँय जगत उठि लागै सो ब्राह्मन जिउ बध करै ।
अपने ऊँच नीच घर भोजन घृणित करम करि उदर भरै ॥
ग्रहण अमावस ढुकि ढुकि माँगै कर दीपक लै कूप परै ।
एकादशी ब्रतौ नहिं जानै भूत प्रेत हठि हृदय धरै ॥
तजि कपूर गाँठी बिष बाँधै ज्ञान गमाए मुग्ध फिरै ।
छीजै साधु चोर प्रतिपालै संत जनन की कूट करै ।
कह कबीर जिह्वा के लंपट एहि बिधि प्रानी नरक परै ॥१८४॥

राम न रमसि कौन डंड लागा । मरि जैहो का करहि अभागा ॥
कोइ तीरथ कोइ मुंडित केसा । पाखंड भरम मंत्र उपदेसा ॥
विद्या वेद पढ़ि करै हँकारा । अंतकाल मुख फाँकै छारा ॥
दुखित सुखित सब कुटुँब जेंवइबे । मरन बेर अकसर दुख पइबे ॥
कह कबीर यह कलि है खोटी । जो रहै करवा निकसल टोटी १८५

हरि बिनु भरम बिगुर बिनु गंदा ।
जहँ जहँ गए अपनपौ खोए तेहि फंदे बहु फंदा ॥

योगी कहै योग है नीको दुतिया और न भाई ।
चुंडित मुंडित मौन जटा धरि तिनहुँ कहाँ सिध पाई ॥

ज्ञानी गुनी सूर कवि दाता ये जो कहहिं बड़ हमहीं ।
जहँ से उपजे तहँहिं समाने छुटि गए सब तबहीं ॥

बाएँ दहिने तजो बिकारैं निजु के हरि पद गहिए ।
कह कबीर गूँगे गुड़ खाया पूछे सों का कहिए ॥१८६॥

जस माँस नर का तस माँस पशु का रुधिर रुधिर एक सारा जी ।
पशु का माँस भखै सब कोई नरहिं न भखै सियारा जी ॥

ब्रह्म कुलाल मेदिनी भरिया उपजि विनस कित गइया जी।
माँस मछरिया जो पै खाते जो खेतन में बोइया जी॥
माटी को करि देवी देवा जीव काटि कटि देइया जी।
जो तेरा है साँचा देवा खेत चरत किन लेइया जी॥
कहत कवीर सुनो हो संतो राम नाम नित लैया जी।
जो कुछ किय जिह्वा के स्वारथ वदल परारा देया जी॥१८७॥
भूला वे अहमक नादाना तुम हरदम रामहिं ना जाना।
वरवस आनि कै गाय पछारा गला काटि जिउ आप लिया॥
जीता जिउ मुरदा करि डारै तिसको कहत हलाल किया।
जाहि माँस को पाक कहत हैं ताकी उत्पति सुनु भाई।
रज वीरज सो माँस उपानी माँस न पाक जो तुम खाई॥
अपनो दोख कहत नहिं अहमक कहत हमारे वड़न किया।
उन का खून तुम्हारी गरदन जिन तुम को उपदेस दिया॥
स्याही गई सफेदी आई दिल सफेद अजहूँ न हुआ।
रोजा नेवाज वाँग क्या कीजै हुजरे भीतर वैठ मुआ॥
पंडित वेद पुरान पढ़ै औ मौलाना पढ़े कुराना।
कह कवीर वे नरक गए जिन हर दम रामहिं ना जाना॥१८८॥
आओ वे मुझ हरि को नाम। और सकल तजु कौने काम॥
कहँ तव आदम कहँ तव हौआ। कहँ तव पीर पैगंवर हूआ॥
कहँ तव जमीं कहाँ असमाना। कहँ तव वेद किताव पुराना॥
जिन दुनिया में रची मसीद। झूठा रोजा झूठी ईद॥
साँच एक अल्ला को नाम। ताको नय नयं करो सलाम॥
कहुधौं भिस्त कहाँ ते आई। किसके हेतु तुम छुरी चलाई॥
करता किरतिम वाजी लाई। हिंदु तुरुक दुई राह चलाई॥
कहँ तव दिवस कहाँ तव राती। कहँ तव किरतिम की उतपाती॥
नहिं वाके जाति नहीं वाके पाँती। कह कवीर वाके दिवस न
राती॥१८९॥

आसन पवन किए दृढ़ रहु रे। मन को मैल छाड़ि दे बौरे ॥
क्या शृंगी मूड़ा चमकाए। क्या विभूति सब अंग लगाए ॥
क्या हिंदू क्या मूसलमान। जाको साबित रहै इमान ॥
क्या जो पढ़िया वेद पुरान। सो ब्राह्मण बूझै ब्रह्मज्ञान ॥
कह कबीर कछु आन न कीजै। राम नाम जपि लोहा लीजै।१९०।
क्या नाँगे क्या बाँधे चाम। जो नहिं चीन्हैं आतम राम ॥
नाँगे फिरे योग जो होई। वन को मृगा मुकुत गो कोई ॥
मूड़ मुड़ाए जो सिधि होई। मूँड़ी भेड़ मुक्त किन होई ॥
बिंद राखे जो खेलहिं भाई। खुसरै कौन परम गति पाई ॥
पढ़े गुने उपजै हंकारा। अध धर बूड़े वार न पारा ॥
कहे कबीर सुनो रे भाई। राम नाम बिन किन सिधि पाई ॥१९१॥
अस चरित देख मन भ्रमै मोर। ताते निस दिन गुन रमौं तोर ॥
एक पढ़हिं पाठ एक भ्रम उदास। एक नगम निरंतर रह निवास ॥
एक जोग जुगुत तन हानि खीन। एक राम नाम सँग रहत लीन ॥
एक होंहि दीन एक देहिं दान। एक कलपि कलपि कै हों हरान ॥
एक तंत्र मंत्र औखधी बान। एक सकल सिद्धि राखैं अपान ॥
एक तीरथ ब्रत करि काया जीति। एक राम नाम सों करत प्रीति ॥
एक धूम घोटि तन होहिं श्याम। तेरी मुक्ति नहीं बिन राम नाम ॥
सतगुरु शब्द तोहि कह पुकार। अब मूल गहो अनुभव विचार ॥
मैं जरा मरण ते भयउँ थीर। भै राम कृपा यह कह कबीर ॥१९२॥
संतो राम नाम जो पावैं। तौ वे बहुरि न भव जल आवैं ॥
जंगम तो सिद्धिहि को धावैं। निसि बासर शिव ध्यान लगावैं ॥
शिव शिव करत गए शिव द्वारा। राम रहे उनहूँ ते न्यारा ॥
जंगम जीव कबौं नहिं मारैं। पढ़ैं गुनैं नहिं नाम उचारैं ॥
कायहि को थापैं करतारा। राम रहै उनहूँ ते न्यारा ॥
पंडित चारो वेद बखानै। पढ़ैं गुनैं कछु भेद न जानैं ॥
संध्या तरपन नेम अचारा। राम रहै उनहूँ ते न्यारा ॥

सिद्ध एक जो दूध अधारा। काम क्रोध नहिं तजै विकारा ॥
खोजत फिरै राज को द्वारा। राम रहै उनहूँ ते न्यारा ॥
वैरागी वहु वेख वनावैं। करम धरम की जुगुत लगावैं ॥
घंट वजाय करैं झनकारा। राम रहै उनहूँ ते न्यारा ॥
जोगी एक जोग चित धरही। उलटे पवन साधना करही ॥
जोग जुगुत लै मन में धारा। राम रहै उनहूँ ते न्यारा ॥
तपसी एक जो तन को दहई। वस्ती त्यागि जँगल में रहई ॥
कंद मूल फल करे अहारा। राम रहै उनहूँ ते न्यारा ॥
मौनी एक जो मौन रहावैं। और गाँव में धुनी लगावैं ॥
दूध पूत दै चले लवारा। राम रहै उनहूँ ते न्यारा ॥
यती एक वहु जुगत वनावैं। पेट कारने जटा वढ़ावैं ॥
निसि वासर जो कर हंकारा। राम रहै उनहूँ ते न्यारा ॥
पकर लै जिउ जवह कराहीं। मुख ते सवतर खुदा कहाहीं ॥
लै कुतका कहैं दंम मदारा। राम रहै उनहूँ ते न्यारा ॥
कहै कवीर सुनो टकसारा। सार सव्द हम प्रगट पुकारा ॥
जो नहिं मानहिं कहा हमारा। राम रहै उनहूँ ते न्यारा ॥१९३॥

सुनता नहीं धुन की खवर, अनहद्द वाजा वाजता।
रसमंद मंदिर गाजता, वाहर सुने तो क्या हुआ ॥
गाँजा अफीमो पोस्ता, भाँग औ शरावें पीवता।
इक प्रेमरस चाखा नहीं, अमली हुआ तो क्या हुआ ॥
कासी गया और द्वारिका, तीरथ सकल भरमत फिरै ॥
गाँठी न खोली कपट की, तीरथ गया तो क्या हुआ ॥
पोथी किताबें वाँचता, औरों को नित समझावता।
त्रिकुटी महल खोजै नहीं, वक वक मरा तो क्या हुआ ॥
काजी किताबें खोजता, करता नसीहत और को।
महरम नहीं उस हाल से, काजी हुआ तो क्या हुआ ॥
सतरंज चौपड़ गंजिफा, इक नर्द है वदरंग की।

वाजो न लाई प्रेम की, खेला जुआ तो क्या हुआ ॥
जोगी दिगंवर से वड़ा, कपड़ा रँगे रँग लाल से ।
वाकिफ नहीं उस रंग से, कपड़ा रँगे से क्या हुआ ॥
मंदिर झरोखे रावटी, गुल चमन में रहते सदा ॥
कहते कवीरा हैं सही, घट घट में साहव रम रहा ॥१९४॥

जिन के नाम ना है हिये ।
क्या होवै गल माला डाले कहा सुमिरनी लिए ॥
क्या होवै पुस्तक के वाँचे कहा संख-धुनि किए ।
क्या होवै कासी में वसि कै क्या गंगाजल पिए ॥
होवै कहा वरत के राखे कहा तिलक सिर दिए ।
कहैं कवीर सुनो भाई साधो जाता है जम लिए ॥१९५॥

अरे इन दोउन राह न पाई ।
हिंदू अपनी करै वड़ाई गागर छुवन न देई ॥
वेस्या के पायन तर सोवै यह देखो हिंदुआई ।
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई ॥
खाला केरी वेटी व्याहैं घरहि में करैं सगाई ।
वाहर से इक मुर्दा लाए धोय धाय चढ़वाई ॥
सव सखियाँ मिल जेवन वैठीं घर भर करैं वड़ाई ।
हिंदुन की हिंदुआई देखी तुरकन की तुरकाई ॥
कहैं कवीर सुनो भाई साधो कौन राह है जाई ॥१९६॥

अवधू भजन भेद है न्यारा ।
क्या गाए क्या लिखि वतलाए क्या भरमे संसारा ।
क्या संध्या तरपन के कीन्हे जो नहिं तत्त विचारा ॥
मूड़ मुँड़ाए जटा रखाए क्या तन लाए छारा ।
क्या पूजा पाहन की कीन्हे क्या फल किए अहारा ॥
विन परचै साहव होइ वैठे करै विषय व्योपारा ।
ज्ञान ध्यान का मरम न जाने वाद करै हंकारा ॥

अगम अथाह महा अति गहिरा बीजन खेत निवारा ।
महा सो ध्यान मगन ह्वै बैठे काट करम की छारा ॥
जिनके सदा अहार अंतर में केवल तत्त विचारा ।
कहत कबीर सुनो हो गोरख तरैं सहित परिवारा ॥१९७॥

मन न रँगाए रँगाए जोगी कपरा । आसन मारि मँदिर में बैठे नाम छाँड़ि पूजन लगै पथरा । कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौलैं दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैलैं बकरा । जंगल जाय जोगी धुनिया रमौले काल जराय जोगी बनि गैलैं हिजरा । मथवा मुँड़ाय जोगी कपड़ा रँगौलैं गीता बाँच के होइ गैलें लबरा । कहत कबीर सुनो भाई साधो जम दरवजवाँ बाँधल जैबे पकरा ॥१९८॥

साधो भजन भेद है न्यारा ।
का माला मुद्रा के पहिरे चंदन घँसे लिलारा ।
मूँड़ मुँड़ाए जटा रखाए अंग लगाए छारा ॥
का पानी पाहन के पूजे कंदमूल फरहारा ।
कहा नेम तीरथ व्रत कीन्हे जो नहिं तत्त विचारा ॥
का गाए का पढ़ि दिखलाए का भरमे संसारा ।
का संध्या तरपन के कीन्हे का षट करम अचारा ॥
जैसे बधिक ओट टाटी के हाथ लिए बिख चारा ।
यों बक-ध्यान धरै घट भीतर अपने अंग विकारा ॥
दै परचै स्वामी होइ बैठैं करैं विषय व्यवहारा ।
ज्ञान ध्यान को मरम न जानैं वाद करैं निःकारा ॥
फूँके कान कुमति अपने से बोझ लिए सिर भारा ।
बिन सतगुरु गुरु के केतिक बहिगे लोभ लहर की धारा ॥
गहिर गँभीर पार नहि पावै खंड अखंड से न्यारा ।
दृष्टि अपार चलन को सहजै कटै भरम कै जारा ॥

निर्मल दृष्टि आतमा जाकी साहब नाम अनुराग ।
कहत कबीर यहाँ जन आगे मैं मैं रहै बिराग ॥१९९॥
भेख लिया देख के कोई भूलो मती। भेख पहिरे कोई सिद्ध नाहीं ।
काम औ क्रोध मद लोभ नाहीं गये सील औ साँच संतोष नाहीं॥
कपट के भेख ते काज सीझै नाहीं कपट के भेख नहिं राम राजी ।
कहत कबीर इक साँच करनी बिना काल की चोट सिर खायगा जी ॥२००॥

संसार-असारता

बिनसे नाग गरुड़ गलि जाई । बिनसे कपटी औ सतभाई ॥
बिनसे पाप पुन्न जिन कीन्हा । बिनसे गुन निरगुन जिन चीन्हा॥
बिनसे अग्नि पवन अरु पानी । बिनसे सृष्टि जहाँ लौं गानी ॥
बिस्नुलोक बिनसे छिन माँहीं । हौं देखा परलय की छाँहीं ॥
मच्छ रूप माया भई यमरा खेल अहेर ।
हरि हर ब्रह्म न ऊबरे सुर नर मुनि केहि केर ॥२०१॥
गए राम औ गे लछमना । संग न गै सीता अस धना ॥
जात कौरवन लाग न बारा । गए भोज जिन साजल धारा ॥
गे पाँडव कुंती सी रानी । गे सहदेव सुमति जिन ठानी ॥
सरब सोन कै लंक उठाई । चलत बार कछु संग न लाई ॥
कुरिया जासु अंतरिछ छाई । चलत बार कछु संग न लाई ॥
मूरख मानुख अधिक सँजोवै । अपना मुवल और लगि रोवै ॥
ई न जान अपनो मरि जैवे । टका दस बिढ़ै और ले खैवे ॥
अपनी अपनी करि गए लगी न केहु के साथ ।
अपनी करि गयो रावना अपनी दशरथ नाथ ॥ २०२ ॥
मानुख जन्म चुके जम माँझी । एहि तन केर बहुत हैं साँझी ॥

तात जननि कह हमरो बाला। स्वारथ लागि कीन्ह प्रतिपाला ॥
कामिनि कहै मोर पिय आही। बाघिनि रूप गरासै चाही ॥
पुत्र कलत्र रहैं लव लाए। जंबुक नाईं रहि मुँह बाए ॥
काक गीध दोउ मरन विचारैं। स्यार स्वान दोउ पंथ निहारैं ॥
धरती कहै मोहिं मिलि जाई। पवन कहै मैं लेव उड़ाई ॥
अग्नि कहै मैं ई तन जारों। स्वान कहै मैं जरत उवारों ॥
जेहि घर को घर कहै गँवारे। सो वैरी है गले तुम्हारे ॥
सो तन तुम आपन कै जानी। विषय स्वरूप भूलि अज्ञानी ॥

इतने तन के साँझिया जनमों भर दुख पाय।
चेतन नाहीं बावरे मोर मोर गोहराय ॥ २०३ ॥

भूला लोग कहै घर मेरा।
जा घरवा में फूला डोलै सो घर नाहीं तेरा ॥
हाथी घोड़ा वैल वाहना संग्रह कियो घनेरा ॥
वस्ती में से दियो खदेरा जंगल कियो वसेरा ॥
गाँठी बाँधी खरच न पठयो वहुरि कियो नहिं फेरा ॥
वीवी वाहर हरम महल में वीच मियाँ का डेरा ॥
नौ मन सूत अरुझि नहिं सूझै जनम जनम अरुझेरा।
कहत कवीर सुनो हो संतो यह पद करो निवेरा ॥२०४॥

जो देखा सो दुखिया देखा तनु धरि सुखी न देखा।
उदय अस्त की वात कहत हौं ताकर करहु विवेखा ॥
वाटे वाटे सव कोइ दुखिया क्या गिरही वैरागी।
शुक्राचार्य्य दुख ही के कारन गरभै माया त्यागी ॥
जोगी दुखिया जंगम दुखिया तापस को दुख दूना।
आशा तृष्णा सव घट व्यापै कोई महल नहिं सूना ॥
साँच कहो तो सव जग खीझै झूठ कह्यो नहिं जाई।
कह कवीर तेई भे दुखिया जिन यह राह चलाई ॥२०५॥

अब कहाँ चले अकेले मीता । उठि किन करहु घरहु की चिंता ॥
खीर खाँड़ घृत पिंड सँवारा । सो तन लै बाहर करि डारा ॥
जेहि सिर रचि रचि बाँध्यो पागा ।
सो सिर रतन बिडारहिं कागा ॥
हाड़ जरै जस लकड़ी झूरी । केस जरै जस तृन कै पूरी ॥
आवत संग न जात की साथी । काह भयो दल बाँधे हाथी ॥
माया को रस लेइ न पाया । अंतर जम बिलार ह्वै धाया ॥
कहै कबीर नर अजहुँ न जागा ।
यम को मोगरा भल सिर लागा ॥२०६॥
राम नाम भजु राम नाम भजु चेति देखु मन माहीं हो ।
बच्छ करोर जोरि धन गाड़े चले डोलावत बाँहीं हो ॥
दाऊ दादा औ परपाजा उह गाड़े भुइँ भाँड़े हो ।
अँधरे भए हियो की फूटी तिन काहे सब छाँड़े हो ॥
ई संसार असार को धंधा अंत काल कोइ नाहीं हो ।
उपजत बिनसत बार न लागै ज्यों बादर की छाँहीं हो ॥
नाता गोता कुल कुटुंब सब तिन की कवनि बड़ाई हो ।
कह कबीर एक राम भजे बिन बूड़ी सब चतुराई हो ॥२०७॥
ऐसन देह निरापन बौरे मुए छुवै नहिं कोई हो ।
डंडक डोरवा तोर ले आइन जो कटिक धन होई हो ॥
उरध स्वासा उपजत त्रासा हँकराइन परिवारा हो ।
जो कोई आवै बेग चलावै पल एक रहन न हारा हो ॥
चंदन चूर चतुर सब लेपैं गल गजमुकता हारा हो ।
चौंचन गीध मुए तन लूटै जंबुक ओदर फारा हो ॥
कहत कबीर सुनो हो संतो ज्ञान-हीन मति हीना हो ।
एक एक दिन यह गति सबही की कहा राव का दीना हो ।२०८।
फूला फूला फिरै जगत में रे मन कैसा नाता रे ।
माता कहै यह पुत्र हमारा बहिन कहै बिर मेरा ॥

कहै भाइ यह भुजा हमारी नारि कहै नर मेरा ॥
पेट पकरि कै माता रोवै बाँह पकरि कै भाई ।
लपटि झपटि कै तिरिया रोवै हंस अकेला जाई ॥
जब लग जीवै माता रोवै बहिन रोवै दस मासा ।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै फेर करै घर वासा ॥
चार गजी चरगजी मँगाया चढ़ा काठ की घोरी ।
चारों कोने आग लगाया फूँक दिया जस होरी ॥
हाड़ जरै जस लाकड़ी केस जरै जस घासा ।
सोना ऐसी काया जरि गइ कोई न आया पासा ॥
घर की तिरिया रोवन लागी ढूँढ़ फिरी चहुँ पासा ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो छाँड़ो जग की आसा ।२०९।

रहना नहिं देस विराना है ।
यह संसार कागद की पुड़िया बूँद पड़े घुल जाना है ।
यह संसार काँट की बाड़ी उलझ पुलझ मरि जाना है ॥
यह संसार झाड़ औ झाँखर आग लगे बरि जाना है ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो सतगुरु नाम ठिकाना है ।२१०।

जियरा जावगे हम जानी ।
पाँच तत्त को बनो पींजरा जामें वस्तु विरानी ।
आवत जावत कोइ न देखो डूबि गयो बिन पानी ॥
राजा जैहैं रानी जैहैं औ जैहैं अभिमानी ।
जोग करंते जोगी जइहैं कथा सुनंते ज्ञानी ॥
पाप पुन्न की हाट लगी है धरम दंड दरवानी ।
पाँच सखी मिलि देखन आईं एक से एक सयानी ॥
चंदा जइहैं सुरजौ जइहैं जइहैं पवनो पानी ।
कह कबीर इक भक्त न जैहैं जिनकी मति ठहरानी ॥२११॥
मन तू क्यों भूला रे भाई । सुध बुध तेरी कहाँ हेराई ।
जैसे पंछी रैन बसेरा बसै विरिछ पर आई ॥

भोर भए सव आपु आपु को जहाँ तहाँ उड़ि जाई
सुपने में तोहि राज मिल्यो है हाकिम हुकुम दोहाई।
जागि परयो तव लाव न लसकर पलक खुले सुधि पाई॥
मात पिता बंधू सुत तिरिया ना कोइ सगो सगाई।
यह तो सव स्वारथ के संगी झूठी लोक बड़ाई॥
सागर माँही लहर उठत है गनिता गनी न जाई।
कहत कवीर सुनो भाई साधो दरिया लहर समाई॥२१२॥
मानत नहिं मन मोरा साधो, मानत नहिं मन मोरा रे।
बार बार मैं कहि समुझावौं जग में जीवन थोरा रे॥
या काया को गरव न कीजै क्या साँवर क्या गोरा रे।
विना भक्ति तन काम न आवै कोटि सुगंध चभोरा रे॥
या माया लख के मत भूलो क्या हाथी क्या घोरा रे।
जोरि जोरि धन वहुत विगूचे लाखन कोटि करोरा रे॥
दुबिधा दुरमति औ चतुराई जनम गयो न वैारा रे।
अजहूँ आनि मिला सत संगति सतगुरु मान निहोरा रे॥
खेत उठाइ परत भुइँ गिरि गिरि ज्यों वालक विन कोरा रे।
कहत कवीर चरन चित राखो ज्यों सूई विच डोरा रे॥२१३॥
खल सव रैन का सपना। समझ मन कोइ नहिं अपना॥
कठिन यह मोह की धारा। वहा सव जात संसारा।
घड़ा जो नीर का फूटा। पता जो डार से टूटा॥
अइस नर जाति जिंदगानी। अबहुँ लग चेत अभिमानी॥
भुलो मत देख तन गोरा। जगत में जीवना थोरा॥
तजो मद लोभ चतुराई। रहो निहसंक जग माँहीं॥
निकस जब प्रान जावैंगे। कोई नहिं काम आवैंगे॥
सजन परिवार सुत दारा। उसी दिन होयँगे न्यारा॥
अइस नर जान यह देहा। लगा ले नाम से नेहा॥
कटै जम-जाल की फाँसी। कहै कब्बीर अविनासी॥२१४॥

का माँगों कछु थिर न रहाई। देखत नैन चलो जाई।
इक लख पूत सवा लख नाती। तेहि रावन घर दिया न वाती॥
लंका सी कोट समुद्र सी खाई। तेहि रावन की खबरि न पाई॥
सोने के महल रूपे के छाजा। छोड़ि चले नगरी के राजा॥
कोइ कर महल कोइ कर टाटी। उड़ि जाय हंस पड़ी रह माटी॥
आवत संग न जात सँगाती। कहा भए दल बाँधे हाथी॥
कहै कबीर अंत की बारी। हाथ झारि ज्यों चला जुआरी॥२१५॥

अंतिम दृश्य

सुगवा पिंजरवा छोरि भागा।
इस पिंजरे में दस दरवाजा दस दरवाजे किवरवा लागा॥
अँखियन सेती नीर बहन लाग्यो अब कस नाहिं तू बोलत अभागा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो उड़िगो हंस टूटि गयो तागा।२१६।
कौन ठगवा नगरिया लूटल हो।
चंदन काठ कै बनत खटोलना तापर दुलहिन सूतल हो॥
उठो सखी मोर माँग सँवारो दुलहा मोसे रूसल हो।
आए जमराज पलँग चढ़ि बैठे नैनन आँसू टूटल हो॥
चारि जने मिलि खाट उटाइन चहुँ दिसि धूधू ऊठल हो।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो जग से नाता छूटल हो॥२१७॥
हम काँ ओढ़ावे चदरिया, चलती बिरियाँ।
प्रान राम जब निकसन लागे उलट गई दोउ नैन पुतरिया।
भीतर से जब बाहर लाए छूट गई सब महल अटरिया॥
चार जने मिलि खाट उठाइन रोवत ले चले डगर डगरिया।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो संग चली वह सूखी लकरिया।२१८।

अहंभाव

रमैया की दुलहिन लूटा बजार ।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा तीन लोक मचा हाहाकारा ॥
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे नारद मुनि के परी पिछार ।
स्त्रिंगी की मिंगी करि डारी पारासर के उदर बिदार ॥
कनफूँका चिद्‌कासी लूटे लूटे जोगेसर करत बिचार ।
हम तो बचिगे साहब दया से सब्द डोर गहि उतरे पार ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो इन ठगनी से रहो हुसिआर।२१९।

जब हम रहल रहा नहिं कोई । हमरे माँह रहल सब कोई ।
कहहु सो राम कौन तोर सेवा । सो समुझाय कहो मोहिं देवा॥
फुर फुर कहो मारु सब कोई । झूठे झूठा संगति होई ॥
आँधर कहै सबै हम देखा । तहँ दिठियार पैठि मुँह पेखा॥
एहि विधि कहौ मानु सब कोई । जस मुख तस जो हृदया होई॥
कहत कबीर हंस मुकुताई । हमरे कहले छूटिहौ भाई ॥२२०॥

हम न मरैं मरिहैं संसारा । हमको मिला जिआवन-हारा ॥
अब ना मरों मोर मन माना । सोइ मुवा जिन राम न जाना ॥
साकत मरैं संत जन जीवैं । भरि भरि राम रसायन पीवैं ॥
हरि मरिहैं तो हमहूं मरिहैं । हरि न मरैं हम काहे को मरिहैं॥
कह कबीर मन मनहिं मिलावा।अमर भए सुख सागर पावा२२१

जहँवा से आयो अमर वह देसवा ।
पानी न पौन न धरति अकसवा ॥
चाँद न सूर न रैन दिवसवा ।
बाम्हन छत्रि न सूद्र बयसवा ॥
मुगल पठान अरु सैय्यद सेखवा ।
आदि जोति नहिं गौर गनेसवा ॥

ब्रह्मा विष्णु महेस न सेसवा ।
जोगिन जंगम मुनि दरवेसवा ॥
आदि न अंत न काल-कलेसवा ।
दास कबीर ले आए सँदेसवा ॥
सार शब्द नहिं चलु वोहि देसवा ॥२२२॥

झीनी झीनी बीनी चदरिया ।
काहे कै ताना काहे कै भरनी कौन तार से बीनी चदरिया ॥
इँगला पिंगला ताना भरनी सुषमन तार से बीनी चदरिया ।
आठ कँवल दल चरखा डोलै पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया ।
साँईं को सियत मास दस लागे ठोक ठोंक के बीनी चदरिया ॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया ।
दास कबीर जतन से ओढ़ी ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।२२३।

तोर हीरा हेराइल वा कचरे में ।
कोइ पूरब कोइ पच्छिम ढूँढ़ै कोई ढूँढ़ै पानी पथरे में ।
सुर नर मुनि अरु पीर औलिया सब भूलल वाड़ैं नखरे में ।
साहब कबीर हीरा यह परखैं बाँध लिहलैं लँगोटी के अँचरे में२२४

धुँधमई का मेला नाहीं नहीं गुरू नहिं चेला ।
सकल पसारा जेहि दिन माँहीं जेहि दिन पुरुख अकेला ॥
गोरख हम तब के बैरागी । हमरी सुरति नाम से लागी ।
ब्रह्मा नहिं जब टोपी दीन्हा, बिस्नु नहीं जब टीका ॥
शिव सक्ती के जनमौ नाँहीं, जबै जोग हम सीखा ।
सतजुग में हम पहिरि पाँवरी त्रेता झोरी झंडा ॥
द्वापर में हम अड़बँद पहिरा कलउ फिरौं नव खंडा ।
कासी में हम प्रगट भए हैं, रामानंद चेताए ॥
समरथ को परवाना लाए, हंस उवारन आए ।
सहजै सहजै मेला होइगा, जागी भक्ति उतंगा ।
कहैं कबीर सुनो हो गोरख चलो सब्द के संगा ॥२२५॥

पढ़ि पढ़ि पंडित करि चतुराई ।
निज मुक्ती मोहि कहहु बुझाई ॥
कहँ बसै पुरुष कवन सो गाऊँ ।
सो मोहि पंडित सुनावहु नाऊँ ॥
चार वेद ब्रह्मा निज ठाना ।
मुक्ति क मर्म उनहूँ नहिं जाना ॥
दान पुन्न उन बहुत बखाना ।
अपने मरन की खबर न जाना ॥
एक नाम है अगम गँभीरा ।
तहँवा अस्थिर दास कबीरा ॥२२६॥

षोड़शोपचार सात्विक पूजा

अगर चंदन घसि भोग धराया नाना सुकृत मन भाया ।
भर झारी गंगाजल लीन्हा चंदन को घसवाया ॥
पुहुप माल ओर चढ़ाया अगरु धूप लगाया ।
लौंग लायची नरियर आरति धोती चादर लेआया ॥
स्वेत सिंहासन अगम अपारा सो अति गद्द डसाया ।
छोड़े लोक अमृत की काया जग में सोलह कहाया ॥
चौरासी को बंदि छोड़ाया निर अच्छर कहलाया ।
साधु सबै मिलि आरति गावैं सुकृत भोग लगाया ।
कहैं कबीर सब्द टकसारा जम सों जीव छोड़ाया ॥२२७॥

पूरनमासी आदि जो मंगल गाइए ।
सत गुरु के पद परसि परम पद पाइए ॥
प्रथमै मँदिर झराइ के चँदन लिपाइए ।
नूतन वस्त्र अनेक चँदोवा तनाइए ॥

तव पूरन गुरु हेतु असन्न बिछाइए।
गुरू चरन परछालि तहाँ बइठाए॥
गज मोतिन की चौक सु तहाँ पुराइए।
तापर नरियर धोति मिठाइ धराइए॥
केरा और कपूर बहुत विध लाइए।
अष्ट सुगंध सुपारी पान मँगाइए॥
पल्लव कलस सँवारि सुज्योति बराइए।
लाल मृदंग बजाइ कै मंगल गाइए॥
साधु संग लै आरति तबहिं उतारिए।
आरति करि पुनि नरियर तबहिं भराइए॥
पुरुख को भोग लगाइ सखा मिलि खाइए।
युग युग छुधा बुझाइ तो पाइ अघाइए॥
परम अनंदित होइ तो गुरुहिं मनाइए।
कह कबीर सतभाय सो लोक सिधाइए॥२२८॥

कबीर साहब की जन्म-मरण तिथि का विवरणपत्र

संख्या	पुस्तक का नाम	विक्रम संवत्		ईस्वी सन्		विशेष
		जन्म	मरण	जन्म	मरण	
१	कबीर कसौटी	१४५५	१५७५	१३९८	१५१८	
	भक्ति सुधा विंदु स्वाद	१४५१	१५५२	१३९४	१४९५	डाक्टर हंटर ने जन्म सन् १३८० ई० (विक्रम संवत् १४३४) लिखा है; और विलसन साहब ने मृत्यु सन् १४४८ ई० (विक्रम संवत् १४०५) में बतलाई है। भक्तिसुधाविंदुस्वाद पृ० ७।४, ८४० ।
३	कबीर ऐंड दी कबीर पंथ	१४९७	१५७५	१४४०	१५१८	
४	संप्रदाय	१२०५	१५०५	११४९	१४४८	कबीरपंथी कबीर साहब की उम्र तीन सौ बरस की बतलाते हैं। उल्मा आखिरी सन् को कबूल करते हैं— संप्रदाय पृष्ठ ६० ।

कबीर साहब की जन्म-मरण तिथि का विवरणपत्र

पुस्तक का नाम	विक्रम संवत्		ईस्वी सन्		विशेष
	जन्म	मरण	जन्म	मरण	
कबीर कसौटी	१४५५	१५७५	१३९८	१५१८	
भक्ति सुधा बिंदु स्वाद	१४५१	१५५२	१३९४	१४९५	डाक्टर हंटर ने जन्म सन् १३८० ई० (विक्रम संवत् १४३४) लिखा है और विलसन साहब ने मृत्यु सन् १४४८ ई० (विक्रम संवत् १४०५) में बतलाई है। भक्तिसुधाबिंदुस्वाद पृ० ७१४, ८४० ।
कबीर ऐंड दी कबीर पंथ	१४९७	१५७५	१४४०	१५१८	
संप्रदाय	१२०५	१५०५	११४९	१४४८	कबीरपंथी कबीर साहब की उम्र तीन सौ बरस की बतलाते हैं। उलमा आखिरी सन् को कबूल करते हैं— संप्रदाय पृष्ठ ६० ।